आधुनिक भारत के चार निर्माता

- महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती
- स्वामी विवेकानन्द
- मोहनदास करम चन्द गाँधी
- बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर

– पुरुषोत्तम

आधुनिक भारत के चार निर्माता

- महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती
- स्वामी विवेकानन्द
- मोहनदास करम चन्द गाँधी
- बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर

– पुरुषोत्तम

© लेखक द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य – ६० रुपये

श्री पी०एस० योग, ध्यानगंगा, ५३८/६४ क, मौसमबाग सीतापुर रोड, लखनऊ-२२६ ०२० द्वारा प्रकाशित एवम् मुद्रित।

भूमिका

भारत अनेक राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संकटों से घिरा है। जब कोई राष्ट्र दुर्बल होता है तो उसकी समस्यायें भी बढ़ जाती हैं। शक्तिशाली राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर अपना स्थान स्वयं बना लेता है। घर में बसे विभीषण भी नियंत्रित रहते हैं। इसलिये राष्ट्र के शक्तिशाली हो जाने से सभी समस्यायें स्वयं ही कम हो जाती हैं।

भारत की जनसंख्या में ८० प्रतिशत हिन्दू हैं इसलिये हिन्दुओं की समस्या राष्ट्र की समस्या है। इन समस्याओं में निश्चय ही सम्प्रदायवाद, जातिवाद, भ्रष्टाचार और अनुशासनहीनता मुख्य हैं।

साम्प्रदायिक समस्या का मूल कारण यह है कि इस्लाम और ईसाई धर्म के अनुसार न केवल हिन्दुओं को अपने धर्म में प्रवर्तित करना उनके लिये एक पुण्य कार्य है अपितु वह प्रत्येक मुस्लिम तथा ईसाई का अनिवार्य धार्मिक कर्तव्य भी है। उसको वह अपना ईश्वर प्रदत्त दैवी अधिकार भी समझते हैं। इसके विपरीत 'प्रचलित हिन्दू धर्म' संगठित मत परिवर्तन में विश्वास नहीं करता न उसके पास इस कार्य के सम्पादन के लिये कोई संगठित प्रभावी तंत्र है न अर्थ और न हिन्दू समाज धर्म परिवर्तित लोगों को आसानी से स्वीकार करता है।

इस कठिनाई को भारतीय संविधान ने अनेकों गुना बढ़ा दिया है। उसने इन मतों को इस प्रकार की संवैधानिक छूट दे दी है कि १५ प्रतिशत अल्पसंख्यक ८० प्रतिशत हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन कर सकें। विश्व में १६ देशों में ६५ प्रतिशत से ऊपर संख्या मुसलमानों की है। १३ देशों में उनकी जनसंख्या ८५ प्रतिशत से ऊपर है। ११ देशों में वह ३० प्रतिशत से ८४ प्रतिशत तक है। ४ देशों में २० प्रतिशत से ऊपर हैं। विश्व के शेष देशों में ईसाई बहुसंख्यक हैं। कमोवेश मात्रा में मुसलमान और ईसाई सभी जगह प्रभावी अल्पसंख्यक हैं। सभी मुस्लिम बहुसंख्यक देशों में राष्ट्राध्यक्ष, प्रधानमंत्री, सेनापति, न्यायाधीश इत्यादि मुसलमान और ईसाई देशों में ईसाई होना अनिवार्य है। भारत में कोई पद नहीं जिस पर हिन्दू धर्म को अति निकृष्ट और नष्ट करने योग्य समझने वाले इन मतों का अनुयाई स्थापित न हो सकता हो। **इस प्रकार हिन्दू भारत ने अपने को नष्ट करने का मार्ग स्वयं ही प्रशस्त कर लिया है।**

उपरोक्त ४७ मुस्लिम देशों और सभी विकसित ईसाई देशों में से अनेक साधन सम्पन्न हैं और अपने अपने मत प्रचार प्रसार के लिए बड़ी मात्रा में मिशनरी और धन भारत भेजते हैं जिस पर किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं है। फलस्वरूप हिन्दू संख्या का अनुपात भारत में बराबर घटता जा रहा है और मुस्लिम और ईसाई जनसंख्या उसी अनुपात में बढ़ती जा रही है जैसा कि निम्न दो तालिकाओं से स्पष्ट हो जाता है:-

विभाजन से पहले

	१८८१	१९९१	१९०१	१९११	१९२१	१९३१	१९४१
हिन्दू	७५.०१	७४.२४	७२.८७	७१.६८	७०.७३	७०.०६	६९.४१
मुस्लिम	१९.६७	२०.४१	२१.८८	२२.३६	२३.२३	२३.४६	२४.२८
ईसाई	०.७१	०.७७	०.६८	१.२१	१.४७	१.७७	१.६१

विभाजन के पश्चात

	१९५१	१९६१	१९७१	१९८१	१९९१
हिन्दू	८४.६८	८३.६८	८२.७२	८२.६४	८२.४१
मुस्लिम	९.९१	१०.७०	११.२१	११.३५	११.६७
ईसाई	२.३५	२.४४	२.६० (विश्वसनीय आंकड़े उपलब्ध नहीं)*		

अब यह सर्वत्र ही स्वीकार किया जाने लगा है कि देर सबेर भारत से हिन्दू निर्मूल हो जायेगा। मधुलिमये पर साम्प्रदायिकता का आरोप किसी प्रकार भी नहीं लगाया जा सकता। मुस्लिम इण्डिया जनवरी १९८६ में पुनः प्रकाशित एक लेख के अनुसार उनका कहना है : "कदाचित जैसा कि श्रद्धानन्द ने अब से ५० वर्ष पहले चेतावनी दी थी हिन्दू समाज मरणासन्न है। कदाचित ३०० वर्ष में भारत में हिन्दू अल्पसंख्यक हो जायेंगे। उसके पश्चात उनकी संख्या का तीव्र गति से ह्रास होगा और शीघ्र ही वह हमारी इस पुरातन भूमि से निःशेष हो जायेंगे। हिन्दू समाज में अनेक बुराईयां हैं किन्तु उसमें कुछ ऐसा भी है जो अनमोल है। पिछले १००० वर्षों में हिन्दुओं की भयानक मूर्खता, सामाजिक अलगाववाद और कायरता के कारण वह भी जो अनमोल है और सम्पूर्ण मानव जाति की धरोहर है तिरोहित हो जायगा और मुझे इसी का दुख सालता है।"

कलकत्ता से प्रकाशित अंग्रेजी साप्ताहिक पत्रिका 'संडे' ७–१३ फरवरी १९९३ का अपने आवरण लेख में कहना है कि "मुसलमानों को संख्या की दौड़ में हिन्दुओं से आगे निकलने में ३१६ वर्ष लगेंगे।"

बलजीत राय अवकाश प्राप्त डाइरेक्टर जेनरल पुलिस अपनी पुस्तक "इज इंडिया गोइंग इस्लामिक" में लिखते हैं : "मधुलिमये का यह आकलन नितांत असत्य है कि मुसलमान २३०० ई० में प्रभुत्वता प्राप्त करेंगे। बिहार, पश्चिमी बंगाल और कुछ उत्तरी पूर्वी जनपदों में उनको प्रभुत्व प्राप्त हो चुका है। २३०० ई० तक कदाचित कुछ गिने चुने हिन्दू ही शेष रह जायेंगे।" वास्तव में पूरे भारत के ४०

* *इसका कारण यह लगता है कि धर्मान्तरित दलित ईसाई हिन्दू दलितों को उपलब्ध शासकीय सुविधाओं से वंचित हो जाने के भय से अपना हिन्दू नाम नहीं बदलते और मतगणना में अपने को ईसाई नहीं लिखवाते।*

जनपदों में मुस्लिम वर्चस्व हो चुका है। (विशेष सूचना के लिये पढ़े लेखक की पुस्तक "भारत के इस्लामीकरण के चार चरण" – **लेखक**)

इस विषय पर विचार करते समय डा० अम्बेडकर के इस कथन पर विचार करना अति आवश्यक है : "अपनी धार्मिक कट्टरता और एकता के कारण मुस्लिम समाज अल्पसंख्यक होते हुये भी राजनीतिक दृष्टि से अनेक जातियों, बिरादरियों, राजनीतिक पार्टियों में बंटे बहुसंख्यक हिन्दू समाज से अधिक बलशाली हैं। दूसरे शब्दों में जहां मुसलमानों में उनके सभी टुकड़ों को जोड़ने के लिये "इस्लाम" एक सुदृढ़ सीमेंट है हिन्दुओं के विभिन्न वर्गों को जोड़ने वाला ऐसा कोई सीमेन्ट नहीं है।"

इन सभी आकलनों में दोष यह है कि इनमें यह माना गया है कि पूरे भारत में मुस्लिम संख्या का पूर्ण बाहुल्य हो जाना "मुस्लिम सत्ता" के लिये आवश्क है। हम जानते हैं कि पूरे भारत में जब उनकी संख्या केवल २३ प्रतिशत थी तब मुस्लिम बहुल इलाकों में हिन्दुओं के कत्ले आम द्वारा उन्होंने गाँधी को भयभीत कर विभाजन के लिये तैयार कर लिया था। **'यदि राजनीतिक परिस्थितियाँ यही बनी रही तो मुस्लिम वर्चस्व के ४० जनपदों में विभाजन पूर्व की स्थिति लौट आने में ५०–१०० वर्ष से अधिक समय नहीं लगेगा** और भारत में २२ वीं शताब्दी में प्रवेश करने के समय शासन हिन्दुओं के हाथ में नहीं पूर्णरूपेण मुसलमानों के हाथ में होगा, जैसा कि १५ अगस्त १९४७ को पाकिस्तान बनने से पहले सिन्ध, बलूचिस्तान, पंजाब, बंगाल और उत्तर पश्चिमी प्रदेश में हो चुका था यद्यपि उन प्रदेशों में लगभग ४० प्रतिशत आबादी हिन्दुओं की थी।

वर्तमान राजनीतिक दलों में तो कांग्रेस जितना बल भी नहीं है। न गाँधी, नेहरू, पटेल जैसा नेतृत्व है। न सावरकर, श्रद्धानन्द, श्यामाप्रसाद मुखर्जी, इत्यादि जैसे प्राणों की बाज़ी लगाने वाले हिन्दू नेता हैं। अनेक सत्ता लोलुप दल मुस्लिम राज्य लाने को (केवल उसका नाम धर्मनिरपेक्ष बना रहे) आज भी तैयार हो जायेंगे।

बलजीत राय कहते हैं : "बलपूर्वक यह कहना आवश्यक है : भारत का भविष्य 'हिन्दू राष्ट्र' है अथवा 'दारुल इस्लाम', यह इन दोनों शक्तियों के तुलनात्मक बल पर निर्भर करता है। आज का धर्मनिरपेक्ष भारत तो ढोंग के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। और ढोंग अधिक दिन नहीं टिका करता"। दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न यह भी है कि 'क्या हिन्दू समाज के नष्ट हो जाने पर और भारत भूमि के इस्लाम और ईसाई टुकड़ों में बंट जाने पर भी यह पुरातन देश अपने गौरव–मय अतीत की भांति विकसित हो सकेगा या नहीं ? जिस प्रकार इस्लामी और ईसाई देशों में हिंसा और रक्तपात हो रहा है उसको देखकर लगता है कि यह दोनों मत कहीं भी शांति पूर्वक साथ साथ नहीं रह सकते।

भूतकाल में अनेक विचारकों ने इस प्रश्न पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। उन विचारों से पथ प्रदर्शन और प्रेरणा लेकर मुख्य मुख्य राजनीतिक दलों के चिन्तन की धाराओं का प्रवाह हुआ है। यदि मोटे तौर पर देखा जाय तो आधुनिक काल में चार महापुरुषों ने मुख्य रूप से हिन्दू भारत के सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक चिन्तन को प्रभावित किया है। यह चार महापुरुष हैं दयानन्द, विवेकानन्द, गाँधी और अम्बेडकर। इनमें एक अद्‌भुत सादृष्यता है। दयानन्द और विवेकानन्द नियमानुसार दीक्षा लिये हुये हिन्दू सन्यासी और अम्बेडकर दीक्षा लिये हुये बौद्ध श्रमण हैं। गाँधी ने यद्यपि नियमानुसार दीक्षा नहीं ली परन्तु उनका रहन सहन वेष भूषा सन्यासियों जैसा है और संसार उनको महात्मा के नाम से जानता है।

१६ वीं शताब्दी के अन्त में दयानन्द ने एक अपूर्व बौद्धिक क्रान्ति को जन्म दिया। दयानन्द के आर्य समाज ने जिन जानी मानी राजनीतिक हस्तियों को जन्म दिया उसमें जहां एक ओर लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानन्द जैसे लोगों का भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा किये गये कार्य में अपूर्व योगदान है वहीं दूसरी ओर श्याम जी कृष्ण वर्मा, वीर सावरकर, हरदयाल, भाई परमानन्द, रामप्रसाद विस्मिल और भगत सिंह इत्यादि जैसे क्रान्तिकारियों के नाम भी है, जिन्होंने सशस्त्र क्रान्ति का मार्ग अपना कर उसी ध्येय की प्राप्ति के लिये अपना प्राणोत्सर्ग किया जिसके लिये लाजपत राय और श्रद्धानन्द ने शान्तिपूर्ण उपायों से स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये। इसके अतिरिक्त भी कांग्रेस जनों में मुख्य रूप से आर्य समाजी ही थे। इसलिये स्वामी दयानन्द प्रत्येक उस चिन्तन के अधिकारी हैं जो यह जानने के लिये किया जाय कि देश की वर्तमान दशा में किस महापुरुष का बताया हुआ मार्ग किस सीमा तक इस देश के लिये, विशेष रूप से हिन्दुओं के लिए, उपयुक्त और कल्याणकारी हो सकता है।

दूसरा नाम जो सहज ही हमारे सामने आता है स्वामी विवेकानन्द का है। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में स्वामी विवेकानन्द ने विदेशों में जाकर वेदान्त के प्रचार द्वारा जो प्रसिद्धि प्राप्त की उससे अनेक पश्चिमी विद्वानों का ध्यान भारतीय दर्शन की ओर गया और उसने पश्चिमी जगत में उत्सुकता को जन्म दिया। इसके पूर्व पश्चिमी जगत को हिन्दुओं के विषय में जानकारी मुस्लिम लेखकों, पादरियों और अंग्रेज शासकों द्वारा ही मिलती रही थी। यह लोग भारत की बनवासी जातियों के चित्र दिखाकर हिन्दुओं को एक असभ्य और बर्बर जाति के रूप में पेश करते रहे थे जिनको ईसाई बनाना उनका दैवी कर्तव्य था। इस कार्य के लिये यह लोग पश्चिमी देशों से धन बटोरते रहे थे।

विवेकानन्द ने पादरियों के इन कृत्यों को जम कर कोसा और नंगा किया। शिकागो के धर्म संसद में अमरीकन नागरिकों ने खड़े होकर करतलध्वनि द्वारा उनका स्वागत भी किया। परन्तु पादरी कम चतुर नहीं थे, उन्होंने अपनी गतिविधियां

शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में बढ़ाकर विवेकानन्द के बौद्धिक आक्रमण को कुण्ठित कर दिया। वेदों को गड़रियों के गीत प्रचारित करने वाले मैक्समूलर को जब विवेकानन्द ने ऋषि मैक्समूलर कहकर उसकी प्रशंसा करनी प्रारम्भ की तो ईसाई देशों ने विवेकानन्द की प्रशंसा के पुल तो बांधे परन्तु भारत में हिन्दुओं के ईसाई बनाने के मिशनरी कार्य में दी जाने वाली आर्थिक सहायता को लगातार बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। जिसके दुष्परिणाम आज हमारे सामने हैं।

इसके विपरीत महर्षि दयानन्द ने भेड़ की खाल में छिपे इस्लाम और ईसाई धर्म प्रचारक भेड़ियों के वास्तविक रूप को उन्हीं के धर्म ग्रन्थों के व्यापक अध्ययन द्वारा भलीभांति समझ लिया था। इसलिये उन्होंने मैक्समूलर को इतना निर्वस्त्र किया कि अपने वास्तविक अभिप्राय को छिपाने के लिये उसको उन्हीं वेदों और वैदिक संस्कृति की प्रशंसा करनी पड़ी जिनको वह बर्बर गड़रियों के गीत बताया करता था। यही हाल थियोसोफिकल सोसायटी के प्रवर्तक ईसाई कर्नल 'ऑलकाट' और मैडम 'ब्लावस्टकी' का भी हुआ। उन्होंने प्रारम्भ में दयानन्द की खूब प्रशंसा की परन्तु वैयक्तिक यश अपयश के प्रति नितान्त उदासीन केवल सत्य के पुजारी दयानन्द को वह दिग्भ्रमित नहीं कर सके।

वर्तमान काल में हिन्दू समाज के प्रमुख संगठन राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और उससे सम्बन्धित अनेकानेक सांस्कृतिक और राजनीतिक संस्थाओं द्वारा स्वामी विवेकानन्द को एक सर्वांगीण पथप्रदर्शक के रूप में स्वीकार किया गया है और इन संस्थाओं द्वारा विवेकानन्द के विचारों को प्रमाण स्वरूप उद्धृत किया जाता है।

यद्यपि इन संस्थाओं से जुड़े नेता अपने गीतों में भारत के महापुरुषों में दयानन्द का नाम भी लेते हैं परन्तु अपने भाषणों और वक्तव्यों में, अथवा अपने कार्य के सम्पादन में वह दयानन्द की घोर उपेक्षा करते हैं। विवेकानन्द के बाद यदि वह किसी का नाम लेते हैं तो गाँधी का। इसका मुख्य कारण यह है कि दयानन्द द्वारा शुद्ध वैदिक धर्म में प्रचलित मूर्ति पूजा, व्यक्ति पूजा इत्यादि पौराणिक विकृतियों की आलोचना और उसको त्यागने की बात उनको रास नहीं आती। दिल्ली की भाजपा सरकार द्वारा दिये गये विज्ञापनों में भारत के मानचित्र में उसके महापुरुषों के चित्र दिये गये हैं। इनमें बहादुरशाह जफ़र जैसे निकम्मे मुग़ल सम्राट और घोर साम्प्रदायिक, हिन्दू नाशक टीपू सुल्तान तो हैं परन्तु दयानन्द नहीं हैं! इसी प्रकार भारत की कांग्रेस सरकार द्वारा प्रकाशित पुस्तक "ग्रेट मेन एंड वीमेन ऑफ इंडिया" में जो लाखों में छप चुकी है भारत के सपूतों में भारत से हिन्दू धर्म को मिटाने का संकल्प लेकर बुखारा से आये, मौहम्मद गोरी को भारत पर आक्रमण कर पृथ्वीराज चौहान का नाश करने वाले मुइनुद्दीन चिश्ती,* हिन्दू मृगों को तुर्की शेर का स्वाभाविक भोजन बताने वाले अमीर खुसरो, काश्मीर का इस्लामीकरण करने वाले नंद ऋषि (वास्तविक नाम शेख नूरुद्दीन)* सहस्रों हिन्दुओं का कत्ले आम

और बलात धर्मान्तरण करने वाले टीपू सुल्तान*, भारत में इस्लामी शासन को मुसलमानों का स्वाभाविक अधिकार बताने वाले सर सयद अहमद और मौलाना अबुल कलाम आजाद के नाम तो हैं, परन्तु दयानन्द और विवेकानन्द का नाम नहीं है।

गाँधी और गाँधीवाद की सौगंध खाने वाले तो (बहुजन समाज पार्टी को छोड़कर) लगभग सभी राजनीतिक दल हैं। इनमें मुस्लिम लीग और काम्युनिस्ट दल भी हैं जो ब्रिटिश काल में गाँधी का घोर विरोध करते रहे, उसे गाली देते रहे। समय–समय पर अपनी सुविधानुसार वे सभी गाँधी और गाँधीवाद के नाम का उपयोग करते हैं और दूसरे क्षण ही उसे भुला भी देते हैं। अथवा अपने स्वार्थानुसार उसे ढाल लेते हैं। गाँधी की स्व–स्वीकार्य घोर असफलताओं से उन्होंने कुछ नहीं सीखा। इसलिये कोई भी समस्या हो उसके निराकरण पर विचार करते समय गाँधी को भुलाया नहीं जा सकता।

बहुजन समाज पार्टी गाँधी, आर०एस०एस० और भाजपा इत्यादि को न केवल नकारती है अपितु उनको दलित वर्ग का शत्रु मानती है। उसकी राजनीति के मुख्य स्तम्भ हैं डा० अम्बेडकर। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है यह पार्टी उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करने का दावा करती है जिनके साथ, उसके अनुसार, किसी भी सवर्ण धर्म गुरु अथवा राजनीतिक नेता ने न्याय नहीं किया, जबकि यह वर्ग हिन्दू समाज में संख्या में सबसे अधिक हैं। इसलिये अम्बेडकर का अध्ययन आवश्यक है। भारत के भावी दिशा निर्देशन में अम्बेडकर की उपेक्षा नहीं की जा सकती। आश्चर्य यह है कि जहाँ शेष सभी राजनीतिक दल दयानन्द को छूना भी नहीं चाहते अकेले अम्बेडकर, दयानन्द के शिष्य श्रद्धानन्द की प्रशंसा करते हैं।

इस छोटी सी पुस्तक का उद्देश्य इन महापुरुषों के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन इस दृष्टि से करना है कि हमारी वर्तमान सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक समस्याओं का सफल समाधान किस महापुरुष द्वारा सुझाये गये दिशा निर्देशन में किस प्रकार और किस सीमा तक किया जा सकता है ? हिन्दू समाज को उस आसन्न संकट से किस प्रकार बचाया जा सकता है जिसका संकेत हम ऊपर कर आये हैं ? इस प्रकार के अध्ययन में अनेक स्थानों पर इन महापुरुषों के विचारों की आलोचना भी करनी पड़ी है जिससे उन लोगों को जो उनके अनन्य भक्त हैं कुछ कष्ट हो सकता है। परन्तु इस प्रकार के अध्ययन में इस प्रकार की आलोचना अनिवार्य हो जाती है और यदि इससे किसी को कष्ट पहुंचता है तो उसके लिये लेखक क्षमा प्रार्थी है।

– पुरुषोत्तम

---

* नोट – *इनका वास्तविक रूप देखना हो तो पढ़ें लेखक की पुस्तक–भारत के इस्लामीकरण के चार चरण और मुस्लिम राजनीतिक चिंतन और आकांक्षायें।*

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

प्रारम्भिक जीवन –

स्वामी दयानन्द का जन्म गुजरात के टंकारा नामक ग्राम में २ सितम्बर, १८२४ ई० को एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम कर्सन जी था। वह धनाढ्य, जमींदार, सरकार के राजस्व आदायकारी और प्रभावशाली कट्टर शैव सामवेदीय ब्राह्मण थे। संस्कृत व्याकरण और वेद के ज्ञाता थे। उनकी माता जी को हिन्दी भाषा का अच्छा ज्ञान था। संस्कृत का साधारण ज्ञान और रामायण महाभारत तथा पुराणों की कहानियों का भी अच्छा ज्ञान था।

स्वामी जी का जन्म का नाम मूलशंकर था। स्वामी जी के पश्चात उनके माता पिता को दो पुत्र और दो पुत्रियां और हुईं।

५ वर्ष की आयु में मूलशंकर का विद्यारम्भ संस्कार किया गया और उसके साथ साथ कुल परम्परागत धर्माचरण, धर्मशास्त्र पाठ और भिन्न भिन्न स्तवन–श्लोक और रामायण, महाभारत, पुराण आदि से कहानियां याद करायी जाने लगीं। वेद मंत्र भी कंठस्थ कराये जाने लगे।

८ वें वर्ष में उनका यज्ञोपवीत हुआ तथा गायत्री, संध्या और उसकी क्रिया भी सिखा दी गई। साथ ही साथ यजुर्वेद संहिता का आरम्भ करके उसमें से प्रथम रुद्राध्याय पढ़ाया गया। क्योंकि पिता शैव मत के थे इसलिये वह मिट्टी का लिंग बनाकर उसकी पूजा करने के लिये कहा करते थे और माता वैष्णव मत की होने के कारण किसी न किसी बहाने से ऐसा करने से रोक देती थीं। इस प्रकार १४ वर्ष की अवस्था में यजुर्वेद संहिता सम्पूर्ण और कुछ अन्य वेदों का भी पाठ पूरा हो गया। छोटे छोटे व्याकरण के ग्रन्थ भी पूरे हो गये इसी समय के आस पास पिता ने माता के विरोध करने पर भी पार्थिव पूजन आरम्भ करा दी। शिव पूजा के लिये भिन्न भिन्न उपासना, व्रतधारण और उपवास इत्यादि की शिक्षा लेकर मूल शंकर ने शिव पूजन करना प्रारम्भ कर दिया।

बोध रात्रि –

शिवरात्रि से पहले चतुर्दशी की शाम को मूलशंकर अनेक दूसरे लोगों और अपने पिता के साथ मन्दिर गये और पूजा की। दूसरे प्रहर की पूजा करके लोग बाहर निकलकर सो गये। मूलशंकर शिवरात्रि का पूर्ण फल प्राप्त करने के लिए आंखों पर जल के छींटे मार मार कर अकेले जागते रहे। तभी उन्होंने देखा कि जिस शिवलिंग को शिव समझकर भक्तों ने दिन भर पूजा था उसके ऊपर चढ़े हुए प्रसाद

को चूहे खा रहे थे और उसके ऊपर मल मूत्र कर रहे थे। मूलशंकर को शंका हुई कि क्या यह वही शिव है जो मनुष्य की भांति बैल पर चढ़ता, चलता फिरता, खाता पीता, त्रिशूल हाथ में रखता, डमरू बजाता, वर और शाप देता कैलाश का स्वामी है क्योंकि उसने अपने उपास्य महादेव का यही वर्णन सुन रखा था। मूल शंकर ने पिता को जगाकर अपनी शंका का निवारण करना चाहा किन्तु वह शंका तो न नष्ट होनी थी न हुई। मूलशंकर उपवास के कारण भूख से व्याकुल था। मन में भ्रम उत्पन्न होने के कारण उसने घर जाकर माता से मिठाई इत्यादि लेकर खायी तथा सो गया। प्रातः काल पिता ने बहुत डाँटा डपटा और खाद्य पदार्थ देने के कारण माता और पिता में खूब झगड़ा भी हुआ। मूलशंकर के व्रत भंग के महापाप का प्रायश्चित करने के लिये घर में १८ उप पुराणों का और ६ पुराणों का पाठ किया गया। यद्यपि ऐसे प्रायश्चित द्वारा पिता ने अपने सनातन कुल धर्म की रक्षा की परन्तु मूलशंकर के मन में पौराणिक धर्म पर से श्रद्धा समाप्त हो गई।

प्रायश्चित के बाद मूलशंकर को वेदांग पढ़ाने के लिये ६ पंडित नियुक्त कर दिये गये। मूलशंकर ने उन पंडितों से ४ वर्ष संस्कृत, व्याकरण, निरुक्त, मीमांसा, धर्मसूत्र इत्यादि इत्यादि वैदिक साहित्य और ज्योतिष इत्यादि का अध्ययन किया। अपने पिता से दण्ड बैठक, कुश्ती करना, ब्राह्ममुहूर्त में उठना यथा समय भोजन, विश्राम और स्वाध्याय करना इत्यादि नियम सीखे।

गृहत्याग –

अब मूलशंकर की आयु लगभग १८ वर्ष थी। इसी समय अपने से छोटी बहन की मृत्यु का तीव्र आघात मूलशंकर के मन पर हुआ और उसे मृत्यु का भय सताने लगा। १६ वर्ष की अवस्था में मूलशंकर के धर्मात्मा, विद्वान और उससे अति प्रेम करने वाले चाचा का देहान्त हुआ। इससे मूलशंकर के मन में वैराग्य उमड़ पड़ा। इसकी भनक माता पिता को भी लग गई और उन्होंने मूलशंकर का शीघ्रातिशीघ्र विवाह करने का निश्चय किया। २१ वर्ष की आयु पूरी होते होते माता पिता ने विवाह की तैयारी प्रारम्भ कर दी। मूलशंकर ने प्रस्तावित विवाह से बचने के लिये उसी समय घर छोड़कर भागने की ठान ली और रात को सबको सोता छोड़कर घर से निकल गये। रास्ते में अनेक लोगों ने किसी न किसी बहाने उनके शरीर के सभी आभूषण एक एक कर ठग लिये।

सायले नामक शहर में मूलशंकर ने एक ब्रह्मचारी से दीक्षा ली। उनका नाम शुद्ध चैतन्य रखा गया और काषाय वस्त्र धारण करा दिये गये। अनेक लोगों से योग की शिक्षा लेते हुए वह सिद्धपुर के मेले में पहुंचे। यहां पर महाराजा मूलराज सोलंकी और सिन्धुराज जयसिंह ने सरस्वती नदी के किनारे पर सिद्धपुर नामक तीर्थ स्थान में रुद्र महालय नाम का विशाल मंदिर बनवाया था। अलाउद्दीन खिलजी ने इसको नष्ट कर उस पर मस्जिद बनवा दी थी। यहां पर लगने वाले मेले

में अनेक योगी आते हैं, जिनसे मिलने के लोभ में मूलशंकर वहां पहुंच गये। सिद्धपुर में कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। परन्तु मूलशंकर के पिता जी खोये हुये पुत्र का पता लगने पर सिद्धपुर पहुंच गये और मूलशंकर को पकड़ लिया। मूलशंकर ने पिता से क्षमा मांगी और सहर्ष घर जाने को तत्पर हो गये परन्तु मन में बराबर पीछा छुड़ाकर भागने का संकल्प बना रहा। मार्ग में एक रात्रि को उनको अवसर मिल गया और वह फिर भाग निकले। इस बार मूलशंकर ने विशेष सावधानी बरती और फिर कभी सांसारिक बंधन उनको बाँध नहीं सके। वह अहमदाबाद जा पहुंचे।

इस समय शुद्ध चैतन्य को साक्षात शिव से भेंट करने और उसके लिये योग द्वारा अपने को आत्मिक और शारीरिक रूप से तैयार करने की धुन लगी हुई थी। इसलिये उनको जहां भी किसी योगी के होने का समाचार मिल जाता वह उसी ओर चल पड़ते। १८५५ ई० तक उन्होंने भारत के सभी तीर्थ स्थानों, पहाड़ों, बनों और कन्दराओं में योगियों की खोज की। अपने जीवन चरित्र में उन्होंने इसका विशद वर्णन किया है। इस भ्रमण काल में उन्होंने जहां एक ओर कठिन योग साधना और संस्कृत ज्ञान का उपार्जन किया वहीं दूसरी ओर अंग्रेजों द्वारा भारतवासियों के शोषण का भी उनको कष्टदायक बोध हुआ।

इस भ्रमण काल के अनुभव से ही उनका वह व्यक्तित्व प्रस्फुटित हुआ जिसने उस समय भारत के धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन में भूचाल ला दिया।

फ्रांस के विख्यात दार्शनिक और लेखक रोम्या रोलॉ लिखते हैं :"**१५ वर्ष तक एक धनाढ्य ब्राह्मण का यह पुत्र सारे सांसारिक सुखों को लात मारकर सन्यासी के रूप में भिक्षा पर जीवन यापन करता गेरुये वस्त्रों में विशाल भारत की सड़कों पर भटकता रहा।**"

स्वामी दयानन्द ने इन १५ वर्षों में भारत के सुदूर प्रान्तों, ग्रामों, निर्जन बनों और पहाड़ों पर किस प्रकार योगियों, सन्यासियों और सिद्ध पुरुषों की खोज में भ्रमण किया उसका कुछ आभास पाठकों को हो जाय इसलिये गृह त्याग के बाद वह जिन जिन स्थानों पर गये उनका संक्षेप में विवरण इस प्रकार है:

जन्म स्थान टंकारा से सिद्धपुर, अहमदाबाद, बड़ौदा, चाणोद, कल्याणी, व्यास आश्रम, आबू, हरिद्वार, गंगा तट पर होते हुए वाराणसी, विन्ध्याचल, अमर कंटक, काल भैरव (यहां उन्होंने मानव बलि दिये जाते समय बलि दिये जाने वाले बालक की माता के करुणाजनक दृश्य को देखा) नन्दिकेश्वर, जबलपुर, पिथौरा–गदारू, ब्रह्माण्ड घाट, सत्तधारा तीर्थ, पिपरिया घाट, हरणी संगम, बुद्धघाट, ब्रह्म कुण्ड, सहस्रावर्त तीर्थ, सौगन्धिक तीर्थ, सप्तर्षि बन, अंडिया घाट, शांकरी गंगा–संगम, कश्यपाश्रम, शक्कर नदी संगम, जनकेश्वर तीर्थ, धर्मशिला, दुग्धी नदी संगम, साई

खेड़ा और खांडे नदी पर केउधान घाट। वह लिखते हैं कि इन सभी तीर्थों में उन्होंने खोज की परन्तु अनुभवी योगी पुरुष नहीं दीख पड़े।

केउधान घाट से होशंगाबाद, नर्वदा–तवा नदी संगम, सूर्यकुण्ड, गऊ घाट, नांदनेर, भृगु–कच्छ आश्रम, मारू नदी संगम, कणक मती नदी संगम, नारदी गंगा संगम, वरुणा नदी संगम, आकाशदीप, कुब्जा नदी संगम, अंजनी नदी संगम, शांडिल्य ऋषि आश्रम, गौरी तीर्थ, गोमुख–घाट, हत्याहरण नदी संगम, भीमकुण्ड, इन्दना और गंजाल नदी का संगम, गोनी नदी संगम, बागदी नदी संगम, दांतोनी नदी संगम, पुनघाट, मान्धाता द्वीप, ओंकारेश्वर, कोटि तीर्थ और चक्र तीर्थ, ब्रह्मपुरी, विष्णु पुरी, अमलेश्वर, पशुपति तीर्थ, सप्त मातृका तीर्थ, बाराही, चामुण्डा, ब्रह्माणी, वैष्णवी, इन्द्राणी, कौमारी, माहेश्वरी। यह सभी स्थान वाम मार्गियों और तांत्रिकों से भरे पड़े थे।

वहां से चलकर कोटेश्वर और नीलगढ़ तीर्थ, फिर नागेश्वर तीर्थ, भस्म टोला, मिलेश्वर, गोमुखघाट, गंगेश्वर, मतंग मुनि आश्रम, नर्मदा–चोरल संगम, मर्दाना, पिपलेश्वर, मण्डलेश्वर तीर्थ यहां एक प्रमुख योगी आनन्दी बाबा ने उनको राजयोग सीखने के लिए परामर्श दिया और उन्हें **धारण ध्यान और समाधि सिद्धि** के लिए अति आवश्यक तत्वों के सम्बन्ध में भी उपदेश दिया।

वहां से शुद्ध चैतन्य माहिष्मतीपुरी की ओर चल दिये। वहां से महेश्वर नगर जहां पर शंकराचार्य का मण्डन मिश्र के साथ शास्त्रार्थ हुआ था। इसके आस पास काल भैरव, सहस्रधारा, माण्डव गढ़, पगारा, धर्मपुरी, खलघाट कुब्जा नदी संगम, दधीचि आश्रम, साटंक, कारम और बुटी नदी के संगम, कसरावद, बोधपाडा, चिखल्दा, राजघाट, कोटेश्वर, धनाद, गोई नदी संगम और धर्मराय तीर्थ पर भ्रमण किया।

धर्मराय तीर्थ से वह चाणोद गये। रास्ते में शूलपाणि, राजघाट, भृगुतंत पर्वत मार्कण्डेय गुफा, रणछोड़ जी, कपिल तीर्थ, मोक्ष गंगा संगम, बड़गांव, पिपरिया, मार्कण्डेय आश्रम, गरुड़ेश्वर, बाल्मीकि आश्रम, बनखोड़ा घाट, इतनी नदी संगम, मोखड़ी, भोगकुल्या संगम, चक्रतीर्थ, भीमुल्या संगम, गमीण तीर्थ होते हुए चाणोद पहुंच गये। **यहां पर शुद्ध चैतन्य ने एक दक्षिणी स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती से सन्यास लिया। और उन्होंने ही इनको दयानन्द सरस्वती नाम दिया।** अब दयानन्द भिक्षावृत्ति धारण कर खाने की चिन्ता से मुक्त हो गये। और उन्होंने अपना पूरा समय अध्ययन और योग साधना में लगा दिया।

चाणोद से सप्ततीर्थ होते हुए और अनेक विद्वान सन्यासियों से मिलते हुए व्यास आश्रम में बैठकर योग साधना करने लगे। इनके इस समय के योग शिक्षक बने तपस्वी योगानन्द।

व्यास आश्रम में **राजयोग का अभ्यास करने के पश्चात व्याकरण के जटिल प्रश्नों के समाधान के लिये तात्कालिक गुरू स्वामी योगानन्द सरस्वती ने उनको सीनौर नगर में पं० कृष्णशास्त्री के पास भेज दिया। वहां रहकर उन्होंने व्याकरण की उच्चतर शिक्षा प्राप्त की** और फिर वहां से चाणोद होते हुए अहमदाबाद पहुंचे। चाणोद में उन्होंने ज्वालानन्द पुरी और स्वामी शिवानन्द गिरि नामक दो योगी पुरुषों से **हठ योग की शिक्षा ली और उसकी कठिन साधनाओं को सिद्ध किया।**

अहमदाबाद से स्वामी जी आबू पर्वत पर जाकर कुछ योगियों से मिले। आबू पर्वत पहुंचने के लिये उन्होंने मार्ग के अनेक नगरों, तीर्थों, और साधु सन्यासियों के दर्शन किये। यहीं पर बैठकर स्वामी दयानन्द ने रामगुफा में अपनी योगसाधना को परिपक्व किया। **यहीं पर दयानन्द को यह ज्ञान हुआ कि यह योगसाधना और कठोर तपस्या केवल साधन मात्र ही हैं। साध्य वस्तु कुछ दूसरी ही है और उसका नाम है मुक्ति या मोक्ष।**

योग साधना के पश्चात स्वामी जी पुष्कर, अजमेर, मारवाड़ जयपुर इत्यादि होते हुए दिल्ली पहुंचे। दिल्ली से चलकर वह मेरठ, हस्तिनापुर, हरिद्वार पहुंचे। जिस समय स्वामी जी हरिद्वार पहुंचे १८५५ का कुंभ मेला हो रहा था। अनेक साधु सन्यासियों में जो वहां एकत्रित हुये थे दयानन्द भी एक थे।

देश की राजनीतिक और धार्मिक स्थिति से प्रथम परिचय –

भारत में चारों ओर घूमते हुए उनका ध्यान उस समय विशेष चर्चा के विषय "स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा कैसे की जाय" की ओर गया। वे लिखते हैं "रास्ते में मन्दिरों में, बाज़ारों में, दुकानों, नहाने के घाटों में, अतिथि शालाओं में सर्वत्र स्वदेश की और स्वधर्म की रक्षा के लिये आन्दोलन और आलोचना व्यापक रूप से चल रही थी। धनी–गरीब, ज्ञानी–मूर्ख, वृद्ध–युवक, स्त्री–पुरुष सभी के मुखों से यही सुनाई देता था कि **विदेशी पादरियों द्वारा ईसाई धर्म के व्यापक प्रचार और प्रलोभन से स्वधर्म की रक्षा करनी चाहिये। विदेशी राहु के ग्रास से स्वदेश की रक्षा करनी चाहिये ..... विदेशियों और विधर्म के प्रति भय और घृणा के भाव का धीरे धीरे विस्तार हो रहा था।"**

हरिद्वार में उनका परिचय विद्रोह के मुख्य नेताओं द्वितीय बाजीराव पेशवा के दत्तक पुत्र धुन्धूपन्त (नाना साहब) उनके बन्धु बालासाहब, अज़ीमुल्ला खां, तात्या टोपे और जगदीशपुर के जमींदार कुंवर सिंह से हुआ। यह लोग हरिद्वार में कुंभ के मेले पर साधु सन्यासियों से अपने विद्रोह के लिये सहायता और आशीर्वाद मांगने आये थे। बाद में इसी स्थान पर महारानी लक्ष्मीबाई भी स्वामी जी से मिलीं।

स्वामी जी ने अपने जीवन चरित्र में इस समय का विस्तृत वर्णन दिया है।

उसका उल्लेख करने से पुस्तक का आकार बढ़ जायगा। संक्षेप में कहना यह है कि इस काल में स्वामी जी १८५७ के विद्रोह से पूर्व होने वाली इन गतिविधियों में पूरी तरह से रम गये थे। अभी तक स्वामी जी ने इस्लाम और ईसाई मतों का अथवा इतिहास का कोई अध्ययन नहीं किया था। इसलिये १८५७ के विद्रोह की वास्तविकता वह समझ नहीं पाये थे। १८५७ के पश्चात ही हिन्दू समाज को नष्ट करने पर तुले इस्लाम और ईसाई मतों की ओर उनका ध्यान गया।

स्वतंत्रता संग्राम नहीं मुस्लिम शासन की पुनः स्थापना का प्रयास–

अपने धर्म की अनिवार्य मान्यता के अनुरूप मुसलमानों का दृढ़ निश्चय था कि किसी प्रकार भी भारत में फिर से मुस्लिम शासन स्थापित किया जाय। इसके लिये बहादुरशाह ज़फ़र के पुत्र अनेक प्रकार के साधन जुटाने में लगे हुये थे। मुख्य प्रश्न यह था कि किस प्रकार हिन्दुओं को इस विद्रोह में शामिल कर लिया जाय ? क्योंकि हिन्दू संख्या में मुसलमानों से ४ गुने थे इसलिये कोई भी योजना जो हिन्दुओं को स्वीकार्य न हो अंग्रेजों के विरुद्ध फलीभूत नहीं हो सकती थी। जिन हिन्दू राजाओं की जागीरें अंग्रजों द्वारा ज़ब्त कर ली गयी थीं उनको यह लोभ दिया गया था कि मुगल शासन स्थापित हो जाने के बाद उनकी छिनी हुई जागीरें उनको वापिस कर दी जायेंगी और विशेष लोगों को नई जागीरें भी दे दी जायेंगी। इस लोभ के कारण महारानी लक्ष्मी बाई, राव साहब मराठा, बाला साहब मराठा इत्यादि अनेक हिन्दू इस विद्रोह की मंत्रणा में शामिल हो गये और उस समय की प्रथा के अनुसार उनकी प्रजा भी।

सिपाही विद्रोह–

१८५७ के विद्रोह को सावरकर ने भारत का पहला स्वतंत्रता संग्राम (First War of Independence) कहा है। यह उनकी पहली कृति थी। काले पानी में मुस्लिम वार्डरों द्वारा हिन्दू कैदियों पर उनको धर्मान्तरण के लिये मजबूर करने के ध्येय से किये गये अत्याचारों को देखकर उन्हें मुस्लिम मानसिकता के नये अनुभव हुये और उन्होंने बाद में मोपला इत्यादि ग्रन्थों में हिन्दुओं के प्रति मुसलमानों के धार्मिक उन्माद–जनित अत्याचारों से उत्पन्न अपनी व्यथा को उजागर किया। परन्तु १८५७ के विद्रोह के विषय में अपनी भूल का परिमार्जन उन्होंने नहीं किया। फलस्वरूप उनके जैसे तपस्वी क्रान्तिकारी की लेखनी से निकला यह भ्रम अनेक हिन्दुओं के सिर पर आज भी सवार है।

इस विद्रोह की वास्तविकता को हिन्दुओं के अतिरिक्त अब सभी लोग जानते हैं। १७५७ के पलासी युद्ध के पश्चात लगभग सम्पूर्ण भारत ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकार अथवा प्रभाव में आ चुका था। दिल्ली का मुगल बादशाह अपने शत्रुओं से रक्षा के लिये मराठों को चौथ देता था और उन पर निर्भर था। पानीपत

के युद्ध में शाहवलीउल्लाह के निमंत्रण पर ईरान से आये अब्दाली और रुहेलखंड से आये नजीबुद्दौला मराठों को करारी हार देकर भी मुगल शासन पुनः स्थापित नहीं कर सके थे। १८०३ ई० में जनरल लेक ने दिल्ली पर कब्जा कर लिया। शाह आलम को आदेश जारी करने पड़े "खल्क खुदा का मुल्क बादशाह का हुक्म कम्पनी बहादुर का"। इस ऐलान के बाद मुगल सम्राट का शासन केवल लाल किले में उसके हरम तक सीमित रह गया।

यद्यपि मुस्लिम शासक अंग्रेजों से पूर्णतया पराजित हो गये थे किन्तु मुस्लिम उलेमा ने जो मुस्लिम समाज के धार्मिक और राजनीतिक पथ प्रदर्शक हैं, उसके मिशनरी भी हैं और योद्धा भी, उस पराजय को स्वीकार नहीं किया।

शाहवलीउल्लाह के पुत्र और उत्तराधिकारी शाह अब्दुल अज़ीज़ ने हिन्दुस्तान को दारुल हर्ब (शत्रु देश) घोषित किया और सिक्खों और अंग्रेजों के विरुद्ध जिहाद का ऐलान कर दिया। उन्होंने हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के लिये भी एक विशाल प्रयोग किया और लाखों हिन्दुओं को मुसलमान बनाया। इस्लाम और ईसाई मत में गैर धर्मावलम्बियों को अपने मत में दीक्षित करना जिसको वह एक मात्र और अन्तिम सत्य मानते हैं अति पुण्य का कार्य और अनिवार्य कर्तव्य बताया गया है।

शाह अब्दुल अज़ीज ने बड़ी चतुराई से अंग्रेजों के विरुद्ध उस विद्रोह की नींव डाली जिसकी परिणति अन्त में १८५७ के विद्रोह में हुई। शाह अब्दुल अज़ीज़ ने हिन्दू राजाओं और ज़मींदारों को पत्र लिखे। उनमें कहा गया था : "समन्दर पार के रहने वाले व्यापारी सल्तनत के मालिक बन गये हैं और उन्होंने बड़े बड़े अमीरों और हुक्मरानों की इज्ज़त को ख़ाक में मिला दिया है। ऐसी दशा में **दीन (इस्लाम) की खिदमत के लिये कुछ लोग उठ खड़े हुए हैं। उनकी वालियान रियासत और बड़े बड़े सरदारों से सिर्फ़ इस बात की ख्वाहिश है कि जान माल से इस्लाम की ख़िदमत करें और अपनी मसनद, हुकूमत पर कायम रहें।"**

उस समय भी हिन्दू प्रजा में आज की भांति अपने सामन्तों और साधु सन्यासियों के अंधानुकरण की प्रथा थी। अशिक्षा और अन्ध विश्वास के कारण वह बिना विचारे उनका अनुसरण करते थे। जिन हिन्दू राजाओं और सामन्तों की जागीरें अंग्रेजों ने छीन ली थीं अथवा जिन्हें उनके छीने जाने का भय था वह अनायास ही अपने स्वार्थवश इस षडयंत्र में शामिल हो गये। इतिहास और इस्लाम से अनभिज्ञ हिन्दू सन्यासियों में भी इन षडयंत्रकारियों ने घुसपैठ कर ली जिसका कुछ विवरण हम पहले कर आये हैं। **ईस्ट इण्डिया कम्पनी खुले तौर पर ईसाई मिशनरियों को भारत के हिन्दू मुसलमानों को ईसाई बनाने के लिये प्रोत्साहन दे रही थी।** इस प्रक्रिया में मंदिरों को तोड़ना और मस्जिदों में जाकर इस्लाम के विरुद्ध भाषण करना ऐसे कार्य थे जिनसे धार्मिक उत्तेजना फैल रही थी। दूसरी ओर गुपचुप हिन्दुओं को

छल से ईसाई तथा मुसलमान बनाने का षडयंत्र भी रचा जा रहा था। उस समय जातीय व्यवस्था इतनी कड़ी थी कि किसी अबोध हिन्दू बच्चे द्वारा भी विधर्मी के हाथ से बिस्कुट खा लेने मात्र से वह ईसाई अथवा मुसलमान समझकर जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता था। फिर उसके सामने नियमानुसार धर्म परिवर्तन कर मुसलमान अथवा ईसाई हो जाने के अतिरिक्त कोई विकल्प शेष नहीं बचता था। जिन सामंतों, राजाओं अथवा जमींदारों ने मुस्लिम रखैल रख ली थी उन्हें भी मुसलमान धर्म स्वीकार करना पड़ता था अथवा जागीर छोड़नी पड़ती थी।

ईस्ट इंडिया कम्पनी की बंगाल नेटिव इनफैन्ट्री में लगभग २ लाख सिपाही थे। यह उस समय की सबसे विशाल शक्तिशाली और अजेय सेना मानी जाती थीं। इस सेना में लगभग ४० प्रतिशत सिपाही ब्राह्मण, लगभग २० प्रतिशत राजपूत, लगभग २० प्रतिशत दूसरी हिन्दू जातियाँ और लगभग २० प्रतिशत मुसलमान लोग थे। बंगाल इनफैन्ट्री के जाति भ्रष्ट हो जाने से ऊँची जातियों के ब्राह्मण और राजपूतों का ईसाई हो जाना निश्चय था। ऐसी ईसाई सेना भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा और स्थायित्व के लिए महत्वपूर्ण होने के साथ साथ इन धर्मान्तरित ब्राह्मणों और राजपूतों के प्रभाव से सभी ब्राह्मणों और राजपूतों के अल्पकाल में ही ईसाई हो जाने में बहुत सहायक हो सकती थी।

इसलिए इस बंगाल इनफैन्ट्री को इस षडयंत्र का शिकार मुख्य रूप से बनाया गया और उनको ऐसी कारतूसें दी गयीं जिन पर गौ और सुअर की चर्बी का लेप था और जिनको मुंह से काटकर बन्दूक में भरा जाता था। स्पष्ट था कि एक बार ऐसा करने से पूरी सेना जाति से बहिष्कृत कर दी जाती और उनको ईसाई बनाना आसान हो जाता। दुर्भाग्यवश डमडम के सैनिक कारखाने में जहां यह कारतूस बनते थे काम करने वाले किसी निचली जाति के मजदूर ने किसी ब्राह्मण के कान में यह बात डाल दी और षडयंत्र सफल हो पाता इसके पहले ही मंगल पाण्डे की खुली बगावत से विद्रोह हो गया। स्वामी विद्यानन्द सरस्वती की पुस्तक "बागी दयानन्द" के पृष्ठ १६ के अनुसार यह जानकारी ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा मेजर जनरल जोनाथन पोल की अध्यक्षता में नियुक्त आयोग की रिपोर्ट में उपलब्ध है।

स्वामी दयानन्द ने जो उस समय पूरे भारत में विचरण कर रहे थे लिखा है कि घाटों और बाजारों में चारों ओर बैठकर लोग यही चर्चा करते थे कि किस प्रकार इन विदेशी आतताइयों से अपने देश और धर्म की रक्षा की जाय।

ऐसे वातावरण में हिन्दुस्तानी सिपाहियों को मिली इस सूचना ने कि कारतूसों पर लगा यह चिकना पदार्थ हिन्दू और मुसलमानों को उनके धर्म से च्युत करने के लिए गाय और सुअर की चर्बी को मिलाकर बनाया गया है, अग्नि में घी का काम किया और समस्त भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध भयानक विद्रोह फूट पड़ा। मुस्लिम नेतृत्व ने इस विद्रोह का उपयोग अंग्रेजों को हटाकर पुनः मुस्लिम शासन

स्थापित करने के लिए किया। हिन्दू इस तत्कालीन अंग्रेजी विपदा से छुटकारा पाने के लिऐ ऐसे अत्याचारी मुस्लिम राज्य को वापिस लाने के लिए संघर्षरत हो गये जिसने उनके ऊपर एक हजार वर्ष तक अंग्रेजों से भी अधिक क्रूर अत्याचार किये थे। (देखें लेखक की पुस्तक भारतीय मुसलमानों के हिन्दू पूर्वजः कैसे मुसलमान बने) निश्चय ही यह मुस्लिम कूटनीति की अपूर्व विजय थी।

अंग्रेजों ने इस विद्रोह के कारणों का गहन अध्ययन किया और इसका मुस्लिम स्वरूप वह भली भांति समझ गये थे।

बंगाल सिविल सर्विस के हेनरी हैरिंगटन टामस नामक अंग्रेज ने १८५८ में लिखी अपनी लघु पुस्तिका में इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। वह लिखता है : "मैं कह चुका हूँ कि १८५७ के विद्रोह के नियोजन करने वाले अथवा उसके प्राथमिक प्रेरणास्रोत हिन्दू नहीं थे। अब मैं यह सिद्ध करने की चेष्टा करूँगा कि यह मुसलमानों के षडयंत्र का नतीजा था। यदि हिन्दुओं को बहकाया न जाता तो वह कभी भी इस प्रकार के कार्य में संलग्न न होते।.....**वह (मुसलमान) प्रथम खलीफ़ा के समय से सदैव ऐसे ही रहे हैं।.....घमण्डी, असहनशील और क्रूर। उनका ध्येय सदैव, जैसे भी सम्भव हो, मुस्लिम शासन स्थापित करना रहा है।.....वह किसी भी गैर मुस्लिम शासक के वफादार नागरिक नहीं रह सकते। कुरान की शिक्षा उन्हें ऐसा रहने नहीं दे सकती।**"

उस समय में प्रकाशित साहित्य से यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि १८५७ के विद्रोह का नियोजन और संचालन मुख्य रूप से मुसलमानों द्वारा किया गया और हिन्दू राजा और जमींदार अपनी जागीरों को अंग्रेजों के चंगुल से बचाने के लिए अपनी प्रजा समेत उसमें शामिल हो गये। **१८५७ का सैनिक विद्रोह हो अथवा १९०६ का बंगभंग अथवा १९१९–२२ का ख़िलाफत आन्दोलन अथवा कांग्रेस आन्दोलन इन सभी आंदोलनों में घुसे मुसलमानी नेतृत्व का ध्येय भारत को स्वतंत्र कर धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र बनाना कभी नहीं रहा अपितु अंग्रेजों से छीनकर देर सबेर फिर से मुस्लिम शासन स्थापित करना रहा है।**

भारतीय इतिहास के निष्पक्ष अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अपने धार्मिक ध्येय को सभी सांसारिक विषयों से ऊपर स्थान देने वाला मुस्लिम नेतृत्व निजी स्वार्थ को अपने धर्म और राष्ट्र के ऊपर रखने वाले हिन्दू नेतृत्व का सदैव उपयोग करता रहा है। फिर चाहे वह दाहिर के बौद्ध मंत्री हों अथवा महमूद गजनवी का सेनापति तिलक या मोहम्मद गौरी के अजयपाल जोगी और जयचन्द हों, बाबर के राणा सांगा हों या अकबर के मानसिंह, शाहजहाँ के यशवन्त सिंह अथवा औरंगजेब के जयसिंह या खिलाफत में गाँधी और कांग्रेसी मानसिकता से ग्रस्त दूसरे नेता हों। स्वामी दयानन्द ने जीवन के इस काल तक कुरान बाइबिल और इस इतिहास का अध्ययन नहीं किया था इसलिये सावरकर की भाँति वह भी

इस्लाम के घोर हिन्दू विरोधी चरित्र और सभी गैर इस्लामी धर्मों, दर्शनों इत्यादि को नष्ट करने के सिद्धान्त से अनभिज्ञ थे।

१८५७ के विद्रोह के पश्चात सर सय्यद इत्यादि मुस्लिम नेताओं ने विद्रोह में उनका साथ देने वाले हिन्दुओं को त्याग कर अंग्रेजों से हाथ मिला लिया। वह खुले तौर पर हिन्दुओं का विरोध और अंग्रेजों से सहयोग करने लगे। तभी स्वामी दयानन्द ने इन मतों का अध्ययन करना आवश्यक समझा। वह बिना अध्ययन अपनी सम्मति नहीं देते थे। इसलिये उन्होंने कुरान और बाइबिल का हिन्दी अनुवाद करवा कर उनका गहन अध्ययन किया।

स्वामी दयानन्द उस समय (१८५५) तक केवल राष्ट्र भक्ति से प्रेरित होकर देश को विदेशी शासन से मुक्त कराना चाहते थे। इसके लिये उन्होंने सोचा कि **सन्यासियों का एक ऐसा संगठन** * बनाया जाय जो देश के उत्थान के लिए निम्नलिखित उद्देश्य से संगठित होकर कार्य करें :–

१– वेद प्रतिपादित धर्म का उद्धार और प्रचार करना।

२– सामाजिक आदर्श और मर्यादा को देशवासियों के सम्मुख स्थापित करना।

३– देश को विदेश और विदेशियों के प्रभाव से मुक्त करना।

४– देश के मंगल के लिये मन और जीवन को समर्पित कर देना।

इस प्रकार स्वामी दयानन्द धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक सुधार की ओर एक साथ अग्रसारित हुए।

दयानन्द का राजनीतिक चिंतन

देश को विदेश और विदेशियों के प्रभाव से मुक्त करना–

किसी दार्शनिक ने कहा है :" Political rights alone can not protect a people otherwise depraved." अर्थात केवल राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति से ही कोई दुराचारी जाति नष्ट होने से नहीं बच सकती।

** **नोट**– आगे चलकर हम देखेंगे कि विवेकानन्द ने भी सामाजिक सुधार के लिये सन्यासियों के संगठन बनाने की ही बात सोची थी। किन्तु दुर्भाग्यवश भारत में सन्यास आश्रम में जाने वाले लोगों के लिये बराबर भ्रमण कर समाज को दुर्गुणों से विरत करने की शिक्षा देने की परम्परा समाप्त हो गई थी। फिर यह सन्यासी हिन्दू हों या बौद्ध। कुछ सन्यासियों का ध्येय केवल अपना वैयक्तिक मोक्ष ही होता है जैसा कि प्रारम्भ में दयानन्द और गौतम बुद्ध का था। अधिकांश सन्यासी और भिक्षु सन्यासियों और भिक्षुओं के प्रति समाज के आदर सत्कार से आकृष्ट होकर ही गेरुवे अथवा पीत वस्त्र धारण करते हैं। अनेक तो अपार सम्पत्ति बटोर कर विलासमय जीवन व्यतीत करते हैं। इस वर्ग की अकर्मण्यता और हानिकारक परिणामों को अनुभव करने पर ही मोहम्मद साहब ने अपने समाज में गेरुये और पीत वस्त्र पहनने का निषेध कर दिया था। समाज को इस्लाम की मान्यताओं के अनुसार ही कार्य करने की शिक्षा देने का कार्य उन्होंने ऐसे मुस्लिम विद्वानों को सौपा जिन्होंने मदरसों में पारम्परिक शिक्षा द्वारा स्नातक का पद प्राप्त किया हो। शेष सभी के लिये यह कार्य वर्जित कर दिया।*

इसलिये भारतीय संस्कृति (हिन्दू धर्म) में चरित्र निर्माण पर सर्वाधिक बल दिया जाता था। (विशेष जानकारी के लिए पढ़ें तैत्रोपनिषद)। सिकन्दर के साथ और उसके पश्चात आये विद्वानों, चन्द्रगुप्त के दरबार में ग्रीक राजदूत मेगस्थनीज, भारत में उन दिनों तीर्थ यात्रा के लिये आये ह्वेनसांग इत्यादि यात्रियों के लेखों से हिन्दुओं के विषय में एक बात जो समान रूप से प्रशंसित की गयी है वह हिन्दुओं का चरित्र है। उन सभी के लेखों के अनुसार उस समय हिन्दू योद्धा एशिया के सर्वश्रेष्ठ योद्धा थे। कोई कवच, कोई लौह वक्ष तवा, हिन्दू धनुर्धर के वाण से प्राण रक्षा नहीं कर सकता था। घरों में ताले नहीं लगाये जाते थे क्योंकि चोरी का कोई भय नहीं था। स्त्रियां सच्चरित्र होती थीं। प्रतिज्ञा पत्र (इकरारनामे, एग्रीमेंट) लिखित होना आवश्यक नहीं था क्योंकि हिन्दू प्राण बचाने के लिए भी मिथ्यावादन नहीं करते थे। एक बार भी मद्य पीने वाला राजा सत्ताच्युत कर दिया जाता था। जिस भविष्य वक्ता की भविष्य वाणी एक बार भी असत्य सिद्ध हो जाती थी वह दुबारा भविष्य वाणी नहीं कर सकता था।

किन्तु दयानन्द के समय के भारत में हिन्दू धर्म में धर्म के नाम पर अनेक दुराचार, ढोंग और स्वार्थ का प्रवेश हो गया था। १८५७ के विद्रोह के अपने अनुभव और मुसलमानों तथा ईसाइयों द्वारा ढोंग और छल कपट द्वारा हिन्दुओं के धर्मान्तरण को देखकर दयानन्द समझ गये थे कि **धार्मिक और सामाजिक सुधारों के बिना राजनीतिक स्वतंत्रता मिल जाने पर भी न प्रजा को सुख और शान्ति प्राप्त होगी और न हिन्दू समाज को इन विदेशी मतों के धर्मान्तरण अभियान से बचाया जा सकेगा।** (१९४७ में स्वतंत्रता प्राप्त होने के पश्चात का अनुभव भी इस तथ्य की साक्षी है।) इसलिये दयानन्द ने धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक सभी क्षेत्रों में साथ साथ प्राण फूंकने का प्रयास किया।

अपने परिव्राजक जीवन में संस्कृत, योग सिद्धि और वेदों का ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात उन्होंने देश के सभी प्रतिष्ठित साधु संतों को देश में सम्पूर्ण क्रान्ति उत्पन्न करने के लिये संगठित करने का ध्येय बनाया।

इस ध्येय को कार्यान्वित करने के लिये १८५५ के कुंभ मेले के अवसर पर दयानन्द ने हरिद्वार में इकट्ठे हुये शंकराचार्य के चारों मठों के उत्तराधिकारियों से भेंट कर अपना प्रस्ताव उनके सामने रखा। चारों मठों के शंकराचार्यो और उनसे सम्बन्धित कुम्भ मेले में उपस्थित प्रधान सन्यासियों से इस विषय पर अनुरोध करने पर उन हिन्दू मठाधीशों ने कहा : "हम ब्रह्मवादी सन्यासी हैं, अद्वैतवादी हैं। हमारे लिये ब्रह्म ही एक मात्र सत्य है। राष्ट्र, समाज, परिवार, जीवन, जगत और ये सब स्वतंत्रता–परतंत्रता, वर्ण–आश्रम, हमारा–तुम्हारा भाव सब कुछ मिथ्या है। मिथ्या के लिये हम कुछ भी करना व्यर्थ समझते हैं।"

इस ओर से निराश होकर दयानन्द ने वैष्णव सम्प्रदायवादियों से भेंट की।

वैष्णवों के अन्दर बहुत से सम्प्रदाय हैं और बहुत से गुरु हैं। यह लोग विष्णु के अवतारों की पूजा करते हैं। सतयुग के नारायण, त्रेता युग के श्री रामचन्द्र, द्वापर युग के श्री कृष्ण और कलियुग के श्री चैतन्य देव की उपासना करना इनकी मुख्य साधना है। यह लोग भी हज़ारों की संख्या में कुम्भ मेले में कैम्प कर रहे थे। दयानन्द ने उनके सामने भी वही प्रस्ताव रखा जो उन्होंने शंकराचार्यों के समक्ष रखा था। उन्होंने उत्तर दिया : "हमारे यह शरीर श्री राम या श्रीकृष्ण के भजन के लिये हैं। दूसरे कार्य के लिये नही हैं। दूसरे कार्य का करना, भगवान के स्थान में देश, समाज, राष्ट्र की सेवा करना महापाप है। मानव शरीर व्यर्थ कार्य के लिये नहीं है।

"महाप्रभु की सेवा और चिन्तन से मुक्ति मिलेगी, देश–समाज राष्ट्र की वैषयिक चिन्ता से भगवद्–भक्ति ढीली हो जायेगी, मुक्ति–लाभ या गोलोक–वैकुण्ठ में जाने के मार्ग में प्रबल बाधायें आ जायेंगी। मानव जीवन इतना सस्ता नहीं है। इन शरीरों को देश–समाज–राष्ट्र की भजन–विरोधी सेवा के लिए समर्पण करना बुद्धिमानों का कार्य नहीं है।"

दयानन्द ने निराश होकर लौटते समय मन में सोंचा : "जिस देश में ऐसे भक्तों की संख्या अत्यधिक है उस देश का सर्वनाश निश्चित है।" यदि ध्यान से सोंचे तो आज भी कितने धर्म गुरु, सन्यासी, मठाधीश हिन्दुओं के धर्मान्तरण पर कभी चिंता भी व्यक्त करते हैं अथवा उसको रोकने का उपाय करते हैं ? आज भी अधिकांश हिन्दू सन्यासी, धर्मगुरु, मठाधीश तथाकथित भगवान इसी दर्शन का प्रचार प्रसार करते हैं। स्वयं वैभवशाली विलासमय जीवन बिताते हैं तथा अपने भक्तों को निवृत्तिवाद की शिक्षा देते हैं। दयानन्द जैसी व्यापक दृष्टि वाला व्यक्ति एक भी दिखाई नहीं देता। ऐसा कोई राजनेता नहीं जिसका अपना ज्योतिषी, तांत्रिक अथवा इसी प्रकार की मानसिकता रखने वाला गुरु न हो।

गुरु विरजानन्द से भेंट –

अभी तक दयानन्द अपनी वैयक्तिक मुक्ति के लिये योग साधना की तलाश में गुजरात से बंगाल और लंका से तिब्बत तक भारत को खंगाल चुके थे। अब अपनी वैयक्तिक मुक्ति के ध्येय को तिलांजलि देकर वह इस खोज में निकल पड़े कि हिन्दू समाज की इस्लाम और ईसाई मत से कैसे रक्षा की जाय ? **उसको अंध विश्वासों, दुर्गुणों और कुरीतियों से कैसे मुक्त किया जाय?** उनकी इस खोज का वर्णन फ्रांस के विख्यात दार्शनिक रोम्यॉ रोलाँ ने इस प्रकार किया है :

" उनको मथुरा में एक गुरु मिल गया जो ११ वर्ष की आयु में ही नेत्र विहीन हो गया था और उसी समय से नितांत अकेला था। जो दयानन्द से भी अधिक मानवी दुर्बलताओं और अंध विश्वासों का कट्टर शत्रु था। एक धुरन्धर विद्वान, एक अप्रतिम व्यक्तित्व का धनी, वह व्यक्ति था स्वामी विरजानन्द सरस्वती।

"दयानन्द ने अपने को स्वेच्छा से उपरोक्त स्वामी के कठिन अनुशासन के आधीन समर्पित कर दिया। जिसका अर्थ पुरानी सत्रहवीं शताब्दी के अनुसार था उसके शरीर तथा आत्मा दोनों पर अमिट क्षत चिन्हों की छाप। दयानन्द ने इस अगम्य महापुरुष की शिष्य के रूप में ढाई वर्ष सेवा की। जब बिदा का समय आया तो **गुरु दक्षिणा के रूप में विरजानन्द ने उनसे यह वचन ले लिया कि वह अपना शेष जीवन सनातन धर्म में प्रवेश कर गई भ्रान्तियों और अंध विश्वासों को समूल नष्ट करने में लगा कर बुद्ध से पहले के शुद्ध वैदिक धर्म की स्थापना करेंगे और सत्य का प्रचार करेंगे।"**

साथ ही साथ गुरु ने शिष्य को वैदिक और अवैदिक साहित्य को समझने के लिये एक कसौटी भी पकड़ा दी। उनका कहना था **ऋषिकृत वैदिक साहित्य ग्रन्थों में परमेश्वर ओर ऋषियों की निन्दा नहीं पाओगे।** इस कसौटी को हाथ से न छोड़ना। और **उसी दिन से वैदिक मत में प्रवेश कर गये अन्धविश्वासों और भ्रान्तियों को जड़ से उखाड़ फेंकना तथा सत्य का प्रचार करना ही दयानन्द के जीवन का मिशन बन गया।**

दयानन्द का धार्मिक सुधार –

सर हर्बर्ट रिज़ले ने दयानन्द के हिन्दू समाज सुधार अभियान के विषय में कहा था कि **"वैदिक धर्म के चारों ओर इतना झाड़ झंखाड़ उग आया है कि उससे पीछा छुड़ाना कोई सुलभ कार्य नहीं है।"** उसने दयानन्द के प्रयत्नों की तुलना एक नन्हें दीपक से की थी।

दयानन्द इस असम्भव से लगने वाले कार्य में पूरी शक्ति से जुट गये। उन्होंने उन तमाम झाड़ झंखाड़ों को एक एक कर बेरहमी से उखाड़ फेंका। उनके प्रयत्नों का नन्हा दीपक दावानल का रूप धारण कर उन कुरीतियों, भ्रमों तथा सामाजिक बुराइयों को धू–धू कर जलाने लगा। उस दुर्गम जंगल के बीच से उन्होंने जो मार्ग प्रशस्त किया उस पर उनके पीछे चलकर लाखों आर्य समाजी अपनी भ्रान्तियों, कुसंस्कारों, कुप्रथाओं, अन्धविश्वासों और असत्य देवी देवताओं को तिलांजली देकर स्वदेशी, स्वराज्य और सत्य वैदिक धर्म का पुनरुद्धार करने की भावना से अभिभूत हो चल पड़े।

दयानन्द द्वारा हिन्दू समाज के चारों ओर उग आये झाड़ झंखाड़ों में दयानन्द ने जो नन्हीं सी चिनगारी लगायी थी उससे उत्पन्न दावानल के प्रकाश को सुदूर अमरीका में बैठे विख्यात योगी जैक्सन ने देखा और अपनी पुस्तक हार्मोनिका खण्ड–६ में "बियान्ड द वैली" शीर्षक के अन्तर्गत इसका वर्णन इस प्रकार किया है:

" मुझे एक सार्वभौमिक अग्निपुंज दिखायी देता है। यह भारत में दैव प्रेरित ईश्वर–पुत्र दयानन्द सरस्वती द्वारा आर्य समाज नामक भट्टी में सुलगाई गई अग्नि शिखा है जिसका ध्येय आर्य धर्म को उसके शुद्ध सनातन स्वरूप में

पुनः स्थापित करना है। हिन्दू और मुसलमान मिलकर चारों ओर लगी हुई उस भयानक अग्नि को बुझाने के लिए दौड़ पड़े जिसकी उग्रता की कल्पना कदाचित दयानन्द ने भी नहीं की थी। और ईसाई भी जिनकी पवित्र अग्नि और पवित्र दीपक स्वप्निल पूर्व में ही पहले प्रज्वलित किये गये थे एशिया के इस नये दिव्य प्रकाश को बुझाने के लिए हिन्दू मुसलमानों के साथ सम्मिलित हो गये। किन्तु वह दैवी अग्नि प्रचण्ड होती गयी।"

रोम्यॉ रोलाँ के शब्दों में :

"दयानन्द ने तुरन्त उत्तर भारत में प्रचार आरम्भ कर दिया। उन्हें इतनी सफलता मिली कि पांच वर्ष के भीतर ही उत्तर भारत में एक चमत्कारिक परिवर्तन हुआ। इन पांच वर्षों में उनकी हत्या के भी चार पांच प्रयास हुए। कभी कभी विष द्वारा। उनसे पार पाना असम्भव था क्योंकि उनका संस्कृत तथा वेद ज्ञान अनुपम था। उनकी ओजमयी वाणी के सामने प्रतिद्वन्दी धराशायी हो जाते थे। लोग उनकी उपमा जल प्लावन से देते थे। शंकराचार्य के पश्चात वेदों का ऐसा धुरन्धर विद्वान पैदा ही नहीं हुआ था। उसके द्वारा पूर्णरूपेण परास्त ब्राह्मणों ने अपने रोम, वाराणसी में गुहार लगाई। दयानन्द ने उस गढ़ पर भी धावा बोल दिया। नवम्बर १८६६ में वह निर्भीकता से काशी पहुंचे और वहाँ के रूढ़िवादी ब्राह्मणों को जा ललकारा। फलस्वरूप लाखों ऐसे लोगों की भीड़ के सम्मुख जो उसे पददलित होते देखने को उत्सुक थी वह ३०० पंडितों के समूह से अकेला घंटों तर्क करता रहा। काशी की शिखर श्रेणी का कोई भी विद्वान न था जो दयानन्द के विरोध में वहाँ उपस्थित न हो। **दयानन्द ने सिद्ध कर दिया कि प्रचलित मूर्ति पूजा वेदों के अनुकूल नहीं है। उनका बल पूर्वक कहना था कि उनकी धर्म की व्याख्या दो सहस्र पहले के वैदिक धर्म के अनुकूल है।"**

सनातन हिन्दू धर्म में प्रवेश कर गयी भ्रान्तियाँ और अन्धविश्वास ही वृहत हिन्दू समाज के धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक पतन के कारण हैं यह उनकी समझ में आ गया। इनको मिटाये बिना हिन्दू समाज की रक्षा सम्भव नहीं। इन्हीं के कारण हिन्दू समाज मौलवियों और पादरियों के धर्मान्तरण का शिकार हो रहा था। इसलिये इन भ्रान्तियों और अन्ध विश्वासों को जड़ मूल से मिटाये बिना न हिन्दुओं के चरित्र को सुधारना संभव है, न मुसलमान प्रचारकों और पादरियों द्वारा किये जा रहे छल प्रचार से उनकी रक्षा करना। जब भारत के ८० प्रतिशत निवासी हिन्दुओं में अपने गौरवशाली अतीत के प्रति चेतना आयेगी और वह अपनी भ्रान्तियों और अंध विश्वासों से मुक्ति पा कर जैन और बौद्ध मतों की झूंठी अहिंसा को त्यागकर वेदों के बताये वैज्ञानिक, शौर्य पूर्ण मार्ग पर अग्रसर होंगे तभी विदेशी राज्य से मुक्ति पाकर उन्नति कर सकेंगे। **राजनीतिक स्वतंत्रता का ध्येय उन्होंने कभी भुलाया नहीं परन्तु उसके लिये मुसलमानों और ईसाइयों के सामने**

घुटने टेकना अथवा हिन्दू धर्म पर उनके द्वारा आक्रमण का प्रतिरोध न करना उन्होंने सहन नहीं किया न ऐसा करना आवश्यक समझा।

दयानन्द ने अनुभव किया कि यद्यपि देश से वेद लुप्त प्रायः हो गये थे हिन्दू मानस में वेदों के प्रति इतनी आस्था और श्रद्धा थी कि लोग "वेदों ने ऐसा कहा है" कह कर घोर वेद विरुद्ध बातों का सफल प्रचार कर रहे थे। 'वेदों का प्रमाण सामने रखकर यदि किसी कुप्रथा का खंडन किया जाय तो वह सहज ही सर्वसाधारण को ग्राह्य होगा' ऐसा सोच कर दयानन्द ने वेदों को ही, जिनका वह गहन अध्ययन कर चुके थे वेद विरुद्ध कुरीतियों पर प्रहार करने का मुख्य हथियार बनाया। वेदों का प्रमाण दे देने पर फिर और कुछ कहने को शेष ही नहीं रह जाता था।

ईसाई विद्वानों ने भी हिन्दू मानस में वेदों के प्रति श्रद्धा को देखते हुये वेदों के नाम का उपयोग हिन्दुओं का धर्मान्तरण करने का षडयंत्र रचा था। **मैक्समूलर ने कहा था कि यदि हिन्दुओं को यह विश्वास दिलाया जा सके कि वेद बर्बर आदिम गड़रियों के गीतों के संग्रह मात्र हैं तो उन्हें ईसाई बनाने में देर नहीं लगेगी।** किन्तु दयानन्द ने अपूर्व विद्वता द्वारा सिद्ध कर दिया कि वेद तो ज्ञान विज्ञान के भंडार हैं और हिन्दुओं को उन पर गर्व होना चाहिये। मौलवियों और पादरियों द्वारा किये जा रहे कुप्रचार से भ्रमित नहीं होना चाहिये। दयानन्द ने अनुभव किया कि हिन्दू समाज में जो दोष उत्पन्न हुये थे वह वेद मार्ग से हट जाने के कारण ही हुये थे। इसलिये उन्होंने उन दोषों का वेदों का प्रमाण देकर ही खंडन किया।

दयानन्द द्वारा किये गये वेदों के सपरिश्रम विद्वतापूर्ण अनुवाद के कारण षडयंत्रकारी लोगों के अरमान धरे रह गये मैक्समूलर को कहना पड़ा : **"मेरा यह दावा है कि संसार में मनुष्य मात्र के स्वाध्याय के लिये कोई पुस्तक ऐसी आवश्यक नहीं जैसा कि वेद है। मेरा यह भी दावा है कि प्रत्येक मनुष्य जो आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहे या अपने पूर्वजों का ज्ञान प्रसिद्ध करना चाहे या मानव इतिहास मालूम करना चाहे या मस्तिष्क की उन्नति करना चाहे तो उसके लिये वेद का स्वाध्याय करना अत्यन्त आवश्यक है।**

"यह कभी मत ख्याल करो कि वेदों के अनेक अनुवाद जर्मन, फ्रांसीसी तथा आंगल भाषा में हो चुके हैं, इसलिये हमको जो कुछ वेदों से सीखना था, सीख लिया। अभी हम बहुत दूर हैं। यह तमाम अनुवाद अभी तजुरबे (आज़माइश) के तौर पर है, (अर्थात प्रमाणिक लेख नहीं हैं)। हम तो अभी वैदिक साहित्य के सागर की सतह के ऊपर फिर रहे हैं। (अभी सागर में डुबकी लगाकर प्रतीत नहीं किया कि उसके भीतर कैसे हीरे भरे पड़े हैं।) परन्तु फिर भी हमारे समालोचना करने वाले

अपनी युक्तियों से आक्षेप करते हैं कि हमें वेदों से मुनष्य की अत्यन्त प्राचीन आदि अवस्था का पूरा ज्ञान नहीं मिलता।

"चाहे वेदों के मन्त्र तैयार करने का समय कोई हो, वे संसार भर के साहित्य में अपना अद्वितीय स्थान रखते हैं और किसी अन्य साहित्य या ग्रन्थ पर निर्भर नहीं तथा स्वतः प्रमाण हैं। उनसे हमें मनुष्य के मस्तिष्क के विकास का ज्ञान मिलता है, जिसकी खोज अन्य किसी ग्रन्थ से नहीं मिलती। विचारों के सम्बन्ध में चाहे, वेदों के सम्बन्ध में आप कैसी भी सम्मति प्रकट करें, वेद सर्वदा अत्यन्त प्राचीन इतिहासों से भी सर्वोपरि कोटि में रहेंगे। वह अत्यन्त प्राचीन पुस्तकालयों से भी अधिक प्राचीनता का उत्तम और महान स्थान रखते हैं क्योंकि वेदों का प्रत्येक मंत्र, नहीं अपितु प्रत्येक शब्द, संसार की महा राजधानी तथा मनुष्य की मस्तिष्क और मानसिक बुद्धि रूपी राजधानी के लिये प्रामाणिक लेख है"।

मूर्ति पूजा खण्डन –

इन अन्ध विश्वासों में सबसे भयानक अन्ध विश्वास है मूर्ति पूजा। मूर्ति पूजा से अनेक दूसरे अन्ध विश्वास उत्पन्न होते हैं जिनका कुप्रभाव मनुष्य के व्यक्तित्व तथा उसके सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक जीवन पर भी पड़ता है। मज़ार पूजा, पीर और गुरु पूजा, व्यक्ति और राजनीतिज्ञों तथा धूर्त तांत्रिकों इत्यादि की पूजा इस मूर्ति पूजा के ही अनेक रूप हैं। इनके द्वारा ही समाज के भोले भाले वर्ग का शोषण होता है। परन्तु यह शोषण और मूर्ति पूजा से उत्पन्न दोष इतनी सूक्ष्मता से समाज में प्रवेश करते हैं कि शोषित व्यक्ति को इसका आभास तक नहीं होता। मनुष्य की सामान्य तर्कशक्ति सर्वथा नष्ट हो जाती है। नित नये नये देवी देवताओं, भगवानों, पीरों, मज़ारों, तांत्रिकों और अघोरियों का जन्म होता है। अनेक स्वार्थी लोगों द्वारा शिशु बलि, मानव बलि जैसे जघन्य कृत होते हैं। नई–नई मूर्तियां और मज़ारें स्थापित होती हैं। देखते देखते उन पर धन वर्षा होने लगती है। इस धन का उपयोग अधिकतर अनैतिक कार्यों में होता है। स्त्रियां भावुक होने के कारण इसकी सहज शिकार हो जाती हैं। अनेक प्रकार से उनका यौन शोषण भी होता है।

इस प्रकार की घटनायें लोक लाज के भय से कभी कभी ही प्रकाश में आती हैं। राष्ट्रीय प्रेस में हाल ही में छपी केवल दो घटनाओं का उल्लेख उदाहरण स्वरूप करना प्रासंगिक होगा।

एक घटना में एक कपटी स्वामी ने एक मुस्लिम भारतीय विदेश सेवाधिकारी की पत्नी पर ऐसा सम्मोहन किया कि करोड़ों रूपये की सम्पत्ति की स्वामिनी और दो युवा पुत्रियों की माता अपने पति से तलाक लेकर इस स्वामी के साथ विवाह कर बैठी। इस कपटी स्वामी ने उसे मन भर कर भोगा और फिर उसकी सम्पत्ति के लोभ में उसे बेहोश कर जीवित अवस्था में ही पृथ्वी में गाड़ दिया।

दूसरी घटना तिरुची के पास एक आश्रम की है। इस आश्रम के बाबा को १३ भक्त युवतियों के साथ बलात्कार करने के जुर्म में ३२ वर्ष की कैद का दंड दिया गया है।

यह व्यक्ति तथा गुरु पूजा के अंध विश्वास के ही परिणाम हैं। सूक्ष्म विचार करने से यह बात शीघ्र ही समझी जा सकती है।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात ब्रिटेन की जनता ने अपनी विजय सुनिश्चित करने वाले प्रधानमंत्री चर्चिल को शान्तिकाल में अनुपयुक्त समझकर नकार दिया। यह इसलिये सम्भव हुआ कि अंग्रेज व्यक्ति की पूजा करने वाले लोग नही हैं। इसके विपरीत भारत को विभाजन कराने की प्रक्रिया में १० लाख लोगों की हत्या और एक करोड़ की बर्बादी के जिम्मेदार गाँधी और नेहरू परिवार के लोग लगभग ५० वर्ष इस देश पर शासन करते रहे। और अभी भी उनके प्रति हिन्दू समाज का मोह भंग नहीं हुआ। नेहरू के बाद इंदिरा, इंदिरा के बाद संजय, संजय नहीं तो राजीव, और अब राजीव की विधवा विदेशी ईसाई सोनिया गांधी पर ही इस ८० करोड़ की हिन्दू आबादी वाले देश का भविष्य टिकता नजर आता है। यह मूर्ति पूजक समाज में ही सम्भव हो सकता है। इसी प्रकार स्वतंत्रता के पश्चात हिन्दुओं के घोर शत्रु माउंट बैटन को गवर्नर जेनरल बनाने के लिये जिसने हैदराबाद और काश्मीर को भारत से अलग रखने के अथक प्रयास किये, एक मूर्ति पूजक समाज का ही समर्थन प्राप्त हो सकता था।

भारत बाँग्लादेश युद्ध के समय भारत के ख्याति प्राप्त सेनापति जनरल मानिकशा ने हिन्दुओं में व्याप्त इसी दोष को लक्ष्य करके कहा है :

" भारत का दोष हिन्दू धर्म है। यहां देवी देवताओं का बड़ा महत्व है। पहले तुमने अकबर को देवता तुल्य बना दिया (एक हिन्दू विद्वान ने तो शाहजहां को यहां तक कह डालाः "दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा"। दिल्लीश्वर ही जगदीश्वर है – लेखक) फिर तुमने श्वेत मुगलों (अंग्रेजों) को फिर गाँधी, नेहरू और राजीव को खुदा बना दिया।" (किन्तु बात राजीव पर समाप्त नहीं हुई अब सोनिया गाँधी की बारी है और फिर राहुल और प्रियंका की। – लेखक)

मूर्ति पूजा के कारण ही मन्दिरों में विपुल धन, सोना, हीरे मोती इकट्ठे हुये और विदेशी मुस्लिम आक्रमणकारियों के धार्मिक जुनून की अग्नि में लूट के लोभ ने घी का काम किया।

इसी के कारण जिन सूफ़ियों ने लाखों हिन्दुओं का बलात, लोभ और धोखे से धर्मान्तरण किया अथवा वध किया। उनकी मज़ार पर भारत के राष्ट्रपति, उप राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मंत्री, गवर्नर इत्यादि चादरें चढ़ाते और मन्नते मांगते हैं। किसी भी आत्म सम्मान रखने वाले व्यक्ति और समाज के लिये यह कितने शर्म की बात है यह बताने की आवश्यकता नहीं है। मुस्लिम विद्वान अथर अब्बास रिज़वी लिखते हैं कि "न तब न अब सलार मसूद गाजी की मज़ार पर श्रद्धा सुमन चढ़ाने वाले

सहस्रों हिन्दुओं को इससे कोई फर्क पड़ता है (अर्थात कोई लज्जा नहीं आती) कि इस शख़्स ने उनके लाखों पूर्वजों को किस प्रकार इस्लाम ग्रहण न करने पर कत्ल कर दिया।" (सैय्यद अथर अब्बास रिजवी : ए हिस्ट्री ऑफ सूफिज्म इन इंडिया भाग–१,पृ–३१४) सलार मसूद गाज़ी ही क्यों हिन्दुओं को इस्लाम न ग्रहण करने पर कत्ल करने वाले लाखों गाज़ियों, शहीदों, बाबाओं और पीरों की शहर–शहर, गाँव–गाँव में स्थित मजारों पर हिन्दू करोड़ो रूपया चढ़ाते हैं और वहाँ शीश नवाने में कोई लज्जा अनुभव नहीं करते ।

इस मूर्ति पूजा के कारण ही मंदिर वैदिक ज्ञान प्रचार के केन्द्र न होकर व्यवसाय के अड्डे बन गये हैं। उनमें जाने वाले श्रद्धालुओं को अपने धर्म के विषय में लेश मात्र भी ज्ञान प्राप्त नहीं होता। न अपने समाज की दुर्दशा और अधोगति के कारणों का आभास होता है। न उनके चरित्र निर्माण में सहायता मिलती है।

अब तो अधिकांश मूर्ति मंदिरों का निर्माण सार्वजनिक स्थलों पर अवैध कब्जा करने के लिये होता है। अनेक लोग छोटा मोटा मंदिर बना कर ही जीवन निर्वाह का साधन बना लेते हैं। उनके आस पास उन्हीं के परिवार की परशाद की दुकाने खुल जाती हैं। इस प्रकार का समाज ५० वर्ष में स्वतंत्र भारत में ४० हजार मदरसे, लाखों मस्जिदों में मकतब खोलने वाले और दिन में पांच बार मस्जिदों में इस्लाम के कुफ्र और काफिर (हिन्दू) विरोधी प्रवचन सुनने वाले आक्रामक, धर्मान्तरण में विश्वास करने वाले इस्लामी लाखों तबलीगियों और पादरियों द्वारा धर्मान्तरण पर करोड़ों डालर खर्च करने के कार्य का कैसे मुकाबला कर सकता है ? (देखे लेखक की पुस्तक : भारत के इस्लामीकरण के चार चरण)

इसी मूर्ति पूजा के रोग के कारण भारत के प्रत्येक गांव मोहल्ले और चौराहे पर किसी देवी देवता अथवा किसी स्थानीय राजनीतिक नेता की मूर्तियां स्थापित की जा रही हैं। इनमें से अनेक का तात्पर्य किसी भूमि खण्ड पर अवैध कब्जा करना अथवा राजनैतिक लाभ उठाना होता है। अब एक दल द्वारा दूसरे दल के लिए आदरणीय नेता की मूर्ति का अपमान कर दंगों द्वारा राजनीतिक लाभ के लिये हिन्दू समाज का विघटन कराने की परम्परा चल पड़ी है। एक घटना में बम्बई सरकार को छानबीन में पता चला कि अम्बेडकर की मूर्ति को जूतों का हार पहनाने वाला व्यक्ति पाकिस्तानी जासूस था और उसका ध्येय सवर्ण तथा दलित हिंदुओं में वैमनस्य उत्पन्न करना था।

जीवित नेताओं की रक्षा के लिये विशेष पुलिस दल लगाये जाते हैं। इनका व्यय सहस्रों करोड़ रूपये प्रतिवर्ष होता है। अब इन मूर्तियों की रक्षा के लिये भी पुलिस लगायी जा रही है। कहा जाता है अकेले महाराष्ट्र में ३२ हजार और उत्तर प्रदेश में २०,००० से ऊपर मूर्तियां हैं। जिस देश के पास अपनी रेल पटरियों, यात्रियों, बिजली व टेलीफोन के तारों और दूसरे सार्वजनिक उपक्रमों की रक्षा के

लिये भी पर्याप्त साधन नहीं हैं वह इन बेजान मूर्तियों की रक्षा करने के लिये साधन कहां से लायेगा ? किसी ने इस देश को मूर्तियों, मूर्ति पूजकों, और काहिलों (Idols, Idolaters and Idlers) का देश कहा है। इसमें अतिशयोक्ति तो हो सकती है यह सर्वथा असत्य नहीं है।

इसलिये दयानन्द ने मूर्ति पूजा और उससे उत्पन्न अनेक अन्ध विश्वासों को ही पहला निशाना बनाया। १८६७ में हरिद्वार में कुंभ मेले में **पाखंड खंडनी पताका** फहरा कर उन्होंने अपना देश व्यापी अभियान प्रारम्भ किया। गंगा तट पर बसे अनेक नगरों में मूर्ति पूजा खंडन और वेद प्रचार करते वह पौराणिक मत के गढ़ वाराणसी पहुंच गये। वहां उन्होंने पंडितों को वेदों से मूर्ति पूजा सिद्ध करने की चुनौती दी।

महाराजा काशी की अध्यक्षता में वह ऐतिहासिक शास्त्रार्थ हुआ जिसमें काशी के ३०० शीर्षस्थ पंडितों ने मिल कर मूर्ति पूजा को वेदोक्त सिद्ध करने की चेष्टा की परन्तु वह एक भी प्रमाण नहीं दिखा सके जिससे मूर्ति पूजा वेदोक्त सिद्ध हो सकती।

स्वामी दयानन्द ने अपने पक्ष में यजुर्वेद का प्रमाण दिया –

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्या रता।। (यजु०–अ.४०,मं–१२)

जो असंभूति अर्थात अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारण को ब्रह्म के स्थान में उपासना करते हैं वे अन्धकार अर्थात अज्ञान और दुःख सागर में डूबते हैं। और संभूति जो कारण से उत्पन्न हुए कार्यरूप पृथ्वी आदि भूत, पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादि के शरीर की उपासना ब्रह्म के स्थान में करते हैं वे उस अन्धकार से भी अधिक अन्धकार अर्थात महामूर्ख चिरकाल घोर दुःखरूप नरक में महाक्लेश भोगते हैं ।

न तस्य प्रतिमा अस्ति ।। (यजु०–अ० ३२,मं ३)

जो सब जगत में व्यापक है उस निराकार परमात्मा की प्रतिमा परिमाण सादृश्य वा मूर्ति नहीं है ।

उपनिषद भी निराकार ब्रह्म के अतिरिक्त दूसरे की पूजा का निषेध करते हैं।

यद्वाचानुभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।। 1 ।।
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेद यदिदमुपासते ।। 2 ।।
यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यन्ति ।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेद यदिदमुपासते ।। 3 ।।
यच्छ्रोत्रेण न श्रृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेद यदिदमुपासते ।। 4 ।।
यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेद यदिदमुपासते ।। 5 ।।

जो वाणी का " इदंता" अर्थात " यह जल है लीजिये" वैसा विषय नहीं। और जिसके धारण और सत्ता से वाणी की प्रवृत्ति होती है उसी को ब्रह्म जान और उपासना कर और जो उससे भिन्न है वह उपासनीय नहीं ।। १ ।। जो मन से "इयत्ता" करके मन में ही आता, जो मन को जानता है उसी ब्रह्म को तू जान और उसी की उपासना कर। जो उससे भिन्न जीव और अन्तःकरण है उसकी उपासना ब्रह्म के स्थान पर मत कर ।। २ ।। जो आंख से नहीं दीख पड़ता और जिससे सब आंखें देखती हैं, उसी को तू ब्रह्म जान और उसी की उपासना कर और जो उससे भिन्न सूर्य, विद्युत और अग्नि आदि जड़ पदार्थ हैं उनकी उपासना मत कर ।। ३ ।। जो श्रोत्र से नहीं सुना जाता और जिससे श्रोत्र सुनता है उसी को तू ब्रह्म जान और उसी की उपासना कर। और उससे भिन्न शब्दादि की उपासना उसके स्थान में मत कर ।। ४ ।। जो प्राणों से चलायमान नहीं होता जिससे प्राण गमन को प्राप्त होता है उसी ब्रह्म को तू जान और उसी की उपासना कर। जो यह उससे भिन्न वायु है उसकी उपासना मत कर।। ५ ।।

मुसलमान और ईसाई धर्म गुरु अपने मतों को एकेश्वरवाद की प्रथम घोषणा करने पर गर्व करते हैं। निष्पक्ष हो कर सोचें कि उनके मतों के जन्म से कम से कम ५००० वर्ष पहले की एकेश्वरवाद की इस घोषणा से उत्तम क्या कोई दूसरी घोषणा संभव हो सकती है।

गीता भी सप्तम् अध्याय में श्लोक २३ और २४ तथा नवम् अध्याय के २५ वें श्लोक के द्वारा जड़ पदार्थो की पूजा का निषेध करती है।

स्वामी दयानन्द ने मूर्ति पूजा का खंडन आध्यात्मिक दृष्टि से किया है। मूर्ति पूजा से जो अनेक सामाजिक कुरीतियां, चरित्र पतन इत्यादि होता है वह हमने ऊपर बताने का प्रयास किया है। हमारी दृष्टि में मूर्ति पूजा के रहते हिन्दू समाज के चरित्र का निर्माण और उसकी तंद्रा को दूर करना असम्भव है। यह उसकी कठोर बेड़ियाँ हैं। यही कारण है कि मुसलमान अथवा ईसाई होते ही दुर्बल से दुर्बल हिन्दू भी आक्रामक और जागरूक हो जाता है।

मूर्ति पूजा के पक्ष में दो तर्क दिये जाते हैं। पहला तर्क है कि मूर्ति पूजा अध्यात्म की पहली सीढ़ी है। जिस प्रकार किसी शिशु को पहले मिट्टी की गोलियों से गणित सिखाया जाता है उसी प्रकार निराकार की पूजा करने से पहले मूर्ति पूजा

द्वारा उपासक को अध्यात्म के मार्ग पर चलना सिखाया जाता है। परन्तु हमने नहीं देखा कि कोई भी मूर्ति पूजक इस पहली सीढ़ी के ऊपर दूसरी सीढ़ी चढ़ा हो। विख्यात संत और आचार्य भी जीवन पर्यन्त मूर्ति पूजा ही करते रहे। स्वयं रामकृष्ण परम हंस और स्वामी विवेकानन्द जीवन भर मूर्ति पूजा करते रहे।

दूसरा तर्क दिया जाता है कि जैसे हम अपने माता पिता के चित्रों में उनकी कल्पना करते हैं और उनका अपमान नहीं सहन कर सकते उसी प्रकार देवी देवताओं की मूर्तियों में भी उन की ही कल्पना करते हैं। यह तर्क पूजा और आदर को एक ही बात मान कर भ्रान्ति युक्त है। हम माता पिता के चित्रों को भोग नहीं लगाते, स्नान नहीं कराते, वस्त्र नहीं पहनाते, प्राण प्रतिष्ठा नहीं करते, पंखा नहीं झलते जैसा कि देवी देवताओं की प्रतिमाओं के साथ करते हैं। संक्षेप में हम उनका आदर तो करते हैं पूजा नहीं करते।

फिर एक बात यह भी है कि माता पिता का चित्र तो वास्तविक चित्र है। देवी देवताओं को किसने देखा है ? उनका अस्तित्व है भी या नहीं, यह एक विवादित प्रश्न है। इसलिये उनके चित्र और मूर्तियां इत्यादि केवल काल्पनिक हैं। सत्य नहीं है।

दयानन्द का सामाजिक सुधार

छुआछूत और दलितोद्धार –

दयानन्द जैसे समाज सुधारक की दृष्टि हिन्दू समाज के कोढ़ छुआछूत पर न पड़ती यह कैसे सम्भव था ? वह यह देखकर स्तब्ध रह गये कि ब्राह्मणों ने हिन्दू समाज के तीन चौथाई से भी अधिक भाग अर्थात स्त्रियों और शूद्रों को देव भाषा संस्कृत और वेद विद्या से वंचित कर दिया है। वेदों में स्त्रियों,शूद्रों और समाज के सभी वर्ग के लोगों को वेद पढ़ने का न केवल अधिकार है अपितु आदेश है। स्वामी दयानन्द ने प्रमाण स्वरूप स्वयं वेद को ही पेश किया।

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्या शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय।। (अ.–२६, मं–२)

परमेश्वर कहता है कि (यथा) जैसे मैं (जनेभ्यः) सब मनुष्यों के लिये (इमाम) इस (कल्याणीम) कल्याण अर्थात संसार और मुक्ति के सुख देनेहारी (वाचम) ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का (आ वदानि) उपदेश करता हूँ वैसे उसी प्रकार तुम भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अपने नौकर चाकरों, स्त्रियों और शूद्रों से भी निम्न प्रकार के लोगों को वेदों की शिक्षा दो।

दयानन्द ने स्त्रियों/अछूतों और दलितों को वेदों की शिक्षा दिलवा कर व्यास गद्दी पर ब्राह्मणों के समकक्ष ला बिठाया। वह शास्त्री और आचार्य बन द्विजों के आदर के पात्र बन गये। इस प्रकार उनमें आत्म सम्मान जाग्रत किया। दयानन्द

का यह कार्य किसी राजनीतिक लाभ से प्रेरित होकर नहीं किया गया था। इसके पीछे समाज के एक महत्वपूर्ण अंग के प्रति सम्मान, मानवीय सहानुभूति, कर्तव्य और दया ही एक मात्र प्रेरणा थी। आर्य समाज के प्रति अछूतों, दलितों और स्त्रियों के प्रेम और आदर का भी यही कारण है। स्त्रियों में दयानन्द के प्रभाव का अनुमान मुझे तब हुआ जब वाद विवाद प्रतियोगिता में भाग लेने वाली एक मुस्लिम छात्रा ने यह कह कर मुझे चकित कर दिया कि दयानन्द के स्त्री उत्थान में योगदान का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है कि मैं एक मुस्लिम लड़की आर्य समाज के मंच से बोलने का साहस कर रही हूँ।

कोई भी समाज शिक्षा, नैतिकता और चरित्र के अभाव में केवल राजनीतिक अधिकारों और आर्थिक क्षमता के बल पर उन्नति नहीं कर सकता। दयानन्द ने समाज सुधार अभियान में इन्हीं तीन बिन्दुओं पर बल दिया। हिन्दू समाज का शिक्षा द्वारा चरित्र निर्माण करने का मुख्य उद्देश्य यही था। उनकी तमाम गतिविधियां समाज को उसी ओर ले जाने का साधन मात्र थीं।

गाँधी का अछूतोद्धार आंदोलन राजनीति से प्रेरित था। अंग्रेज और मुस्लिम नेतृत्व कुटिलता पूर्वक दलितो सिक्खो, आदिवासियों इत्यादि वृहत हिन्दू समाज के अंगों को राजनीतिक लाभ का लालच देकर उनको उस समाज से तोड़ देने का षडयंत्र रच रहा था। ऐसे समय में गाँधी ने आमरण उपवास द्वारा दलितों के नेता अम्बेडकर की नैतिकता को झिंझोंड़ कर उनको गाँधी अम्बेडकर पैक्ट करने पर रज़ामंद कर लिया। इससे दलितों को कुछ राजनीतिक लाभ हुआ हो या न हुआ हो दलितों अछूतों इत्यादि की वास्तविक सामाजिक स्थिति लगभग ज्यों की त्यों बनी रही। इसका लाभ उठा कर विश्वनाथ प्रताप सिंह ने अपने प्रधान मंत्रित्व काल में अपना वोट बैंक बनाने के लिये फिर हिन्दू समाज को अनेक जातियों में खंडित कर दिया। गाँधी, नेहरू इत्यादि कांग्रेस नेताओं द्वारा दलितोद्धार कार्य प्रणाली पर हम गाँधी जी और अम्बेडकर पर विचार करते समय प्रकाश डालेंगे।

स्वामी दयानन्द की दलितोद्धार अथवा छुआछूत निवारण नीति राजनीति के साथ नहीं जुड़ी थी। वह तो सत्य वेदवाणी को आधार बना कर पूरी मानव जाति को जोड़ने के पक्षधर थे। दलितों, अछूतों और स्त्रियों को समाज के दूसरे समुदायों के बराबर अधिकार दिलाना उनकी धार्मिक निष्ठा थी राजनीतिक अवसरवादिता नहीं। अम्बेडकर जैसे चिंतनशील और बुद्धिमान व्यक्ति से इन दो दृष्टिकोणों का भेद कैसे छिपा रह सकता था। इसीलिये अपने समकालीन हिन्दू नेताओं में उन्होंने दलितों/अछूतों के सच्चे मित्रों में केवल श्रद्धानेन्द का नाम लिया है। जब कि गाँधी श्रद्धानन्द की हत्या पर भी उनकी निन्दा करने से नहीं चूके। दयानन्द और आर्य समाज को तो वह पहले ही कोस चुके थे।

बाल विधवा समस्या –

१८८१ की जनगणना में भारत में २१ लाख विधवायें थीं। यह अधिकतर

हिन्दू थीं क्योंकि दूसरे मतों में पुनर्विवाह मान्य था। इनमें से २३६६७ की आयु ५ वर्ष से कम थी, ८३६२० की आयु ६ और १० वर्ष के बीच थी, १४५४४६ की आयु ११ और १५ वर्ष के बीच थी और १६ और २० वर्ष के बीच की आयु की विधवायें चार लाख थीं।

आप यह न सोंच बैठें कि यह बालिकायें इस आयु में विधवा हो गई थीं। जी नहीं। यह तो उनकी आयु उस समय थी जब जनगणना हुई। इनमें अधिकांश बालिकायें ५ वर्ष की आयु से कम में विधवा हो गई थीं।

हिन्दू समाज इन विधवाओं से छुट्टी पा लेता था उन्हें सती बना कर। किन्तु राजा राम मोहन राय के प्रयत्नों और ब्रिटिश सरकार की लौह भुजा ने जब उनको चिताग्नि से खींच लिया तो हिन्दू समाज ने अपनी इन दुधमुंही पुत्रियों से पीछा छुड़ाने के दूसरे मार्ग अपना लिये।

उन्हें तीर्थ स्थानों पर तीर्थ यात्रा के लिये ले जाया जाता था। वहां उनको बेसहारा छोड़कर परिवार एक रात्रि को चुपचाप चल देता था। यह बेसहारा बालिकायें और युवतियाँ सहज ही असामाजिक तत्वों की शिकार हो जाती थीं और इन तीर्थो में वेश्याओं का नरकमय जीवन व्यतीत करती थीं।

घर पर रहने वाली विधवाओं के केश काट दिये जाते थे। वह श्रृंगार नहीं कर सकती थीं। उनका मुंह देखना दुर्भाग्य को न्योता देना था। इसलिये वह घर के एक कोने में मुंह छिपाये पड़ी रहती थीं। भोजन ऐसा होना चाहिये जिससे उनके शरीर में प्राकृतिक यौवन अंगड़ाई न ले सके। इसलिये उन्हें घर में बचा खुचा बासी अथवा मोटा निस्वाद भोजन ही प्राप्त होता था। इस व्यवहार से क्षुब्ध होकर बहुत सी आत्म हत्या कर लेती थीं, बहुत सी घर से भाग जाती थीं। गर्भपात और उससे होने वाली सामाजिक बुराइयां पनपती थीं।

बहुत से माता–पिता मोह वश अपनी विधवा बालिकाओं को उनकी जान बचाने के लिये और सामान्य जीवन जीने के लिये मुसलमान अथवा ईसाई धर्म प्रचारकों को दे देते थे। हिन्दुओं में प्रचलित इस प्रथा से मुसलमान व ईसाई पादरियों के हौसले इतने बुलंद हो गये थे कि किसी हिन्दू बालिका के विधवा हो जाने का समाचार सुनते ही यह लोग उसके घर पहुंच जाते और अधिकार पूर्वक उसको मांग लाते थे।

दयानन्द ने इस कुरीति को जड़ से समाप्त करने का निश्चय किया। **उन्होंने देश के एक कोने से दूसरे कोने तक घूम घूम कर लोगों को बताया कि १६ वर्ष से कम की बालिकाओं और २५ वर्ष से कम के लड़कों का विवाह अवैदिक है।** उन्होंने सप्रमाण यह उपदेश दिये। क्योंकि बाल अवस्था में मृत्यु की सम्भावना अधिक होती है इसलिये युवा अवस्था में विवाह होने से वैधव्य स्वयंमेव ही कम हो गया। उन्होंने विधवा विवाह की भी अनुमति दी। उनके एक परम भक्त के प्रयासा के फलस्वरूप बाल विवाह के विरुद्ध शारदा एक्ट पास हुआ।

राष्ट्रीय भाषा –

स्वामी दयानन्द को यह विश्वास हो गया था कि पूरे भारत को एक राष्ट्र में बांधने के लिए समान भाषा अथवा सम्पर्क भाषा का होना आवश्यक है। उनकी मातृ भाषा गुजराती थी और उनकी शिक्षा-संस्कृत में हुई थी। फलस्वरूप वह केवल इन्हीं दो भाषाओं में बोल और लिख सकते थे। किन्तु उन्होंने सोच विचार कर निश्चय किया कि हिन्दी ही समूचे हिन्दू राष्ट्र की राज्य भाषा हो सकती है। उनकी सोंच और करनी में कोई अन्तर नहीं था। फलस्वरूप उन्होंने तुरन्त ही हिन्दी बोलना और लिखना सीखा और फिर उसी भाषा में बोलने ओर लिखने लगे। भारत की लगभग सभी भाषाओं की जननी संस्कृत है। भारत का पुरातन साहित्य सब संस्कृत में है। इसलिए संस्कृत की शिक्षा के लिये उन्होंने सम्पूर्ण भारत में संस्कृत पाठशालायें ख़ोलने का निश्चय किया।

स्वतंत्र भारत में भी यह प्रश्न उठा परन्तु कोरी राजनीति से प्रेरित अहिन्दी प्रान्तों के नेताओं में गुजराती दयानन्द की राष्ट्रीय दृष्टि नहीं थी। उन्होंने विदेशी भाषा अंग्रेजी को तो संपर्क भाषा के रूप में स्वीकार किया स्वदेशी हिन्दी को नहीं। इजरायल में ३५ से अधिक देशों के यहूदी आकर बसे जो उन देशों की ही भाषा बोलते थे। इज़रायल ने मृतप्राय यहूदी भाषा हिब्रू को राष्ट्र भाषा बनाया किसी ने भी इस पर आपत्ति नहीं की। स्वतंत्र भारत के सर्वमान्य नेताओं में संस्कृत को राष्ट्र भाषा बनाने का न साहस था न दूरदृष्टि और अहिन्दी प्रांतों के नेताओं को हिन्दी ग्राह्य नहीं थी। इसी एक घटना से स्वतंत्रता की प्राप्ति से लगभग ७५ वर्ष पहले हिन्दी को राष्ट्र भाषा घोषित और स्वीकार करने वाले गुजराती दयानन्द का राष्ट्रप्रेम और दूरदृष्टि सिद्ध हो जाते हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति –

दयानन्द की दूर दृष्टि से यह बात भी छिपी न रह सकी कि उपयुक्त शिक्षा बिना उन्नति असम्भव है। भारतीय शिक्षा का क्या स्वरूप हो इस पर उन्होंने अपने विचार वेदों और स्मृतियों पर आधारित प्रणाली पर विस्तार पूर्वक अपनी पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश के दूसरे और तीसरे अध्याय में दिये हैं। थोड़ा सा विचार करने पर ही यह बात समझ में आ जानी चाहिए कि हिन्दू समाज के अधः पतन का मुख्य कारण अशिक्षा और कुशिक्षा ही है। यद्यपि वेदों के आदेशानुसार उत्तम विचारों को ग्रहण करने के लिए सदैव ही तत्पर रहना चाहिए परन्तु पश्चिमी शिक्षा संस्कृति और जीवन प्रणाली का अन्धाधुन्ध अनुकरण कदापि उचित नहीं कहा जा सकता।

हिन्दुओं के सुदृढ़ और मधुर वैवाहिक और पारिवारिक सम्बन्ध पश्चिमी देशों के आश्चर्य और ईर्ष्या के विषय हैं। अमेरिका घूम कर लौटे एक सज्जन ने बताया कि वहां लोगों को यह जान कर आश्चर्य होता है कि हिन्दू माता पिता द्वारा

संपन्न कराया गया विवाह बंधन आजीवन ६०–६०, ७०–७० वर्ष तक अक्षुण्य रूप से चलता है। एक वृद्धा तो यह सुनकर इतनी भाव विह्वल हो गई कि उसके आंसू निकल पड़े।

पश्चिमी दूषित शिक्षा को अपना कर हिन्दू अपने पारिवारिक जीवन को उसी ओर ले जा रहे हैं जहां से पाश्चात्य जगत भागना चाहता है। दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में शिक्षा पर पूरे दो अध्याय लिखकर हिन्दू समाज का मार्ग दर्शन किया है।

भारतीय दर्शन के अनुसार उत्तम गृहस्थ आश्रम को सफलतापूर्वक निपटाने के बाद लोग निष्क्रिय अथवा निवृत्त नहीं हो जाते थे अपितु वह अपने तमाम अनुभवों, शिक्षा और साधनों को समाज की सेवा में लगाते थे और यह कार्य वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम कहलाता था। स्वामी दयानन्द ने अपनी पुस्तक में एक पूरा अध्याय इस विषय पर दिया है।

स्वामी दयानन्द का विश्वास था कि यदि उत्तम राज्य राष्ट्र को सन्मार्ग और उन्नति की ओर ले जाने का साधन है तो एक दुराचारी अथवा मूर्ख शासक उसे अधः पतन के गर्त में डुबो सकता है। उन्होंने वेदों और स्मृतियों से राज धर्म के सूत्रों को एकत्रित किया और बताया कि केवल स्वराज्य स्थापित हो जाना ही पर्याप्त नहीं है अपितु सुराज्य होना भी आवश्यक है। यहाँ पर संकेत कर देना अनुपयुक्त न होगा कि दयानन्द राज्य कला को राज्यधर्म कहते हैं, राजनीति नहीं जिसका कुत्सित रूप आज हम देख रहे हैं।

स्वतंत्र भारत के कर्णधारों ने जिस प्रकार पाश्चात्य जनतंत्र का आंख मूंदकर अनुकरण किया वह भी देश को गर्त की ओर ले जाने का मुख्य कारण बना। स्वयं गाँधी ने इस प्रकार के जनतंत्र को वेश्या कहा था। परन्तु गाँधी के नाम की सौगंध खाने वाले कांग्रेसी नेताओं ने उसी वेश्या को घर में लाकर महीषि बना दिया। काश ! हिन्दू नेतृत्व ने १६४७ में मौलाना मौदूदी की सलाह पर ध्यान दिया होता। पाकिस्तान जाते समय उन्होंने कहा था : "अब निश्चय ही हिन्दोस्तान दो हिस्सों में बंट जायगा। एक हिस्से में हम मुसलमान बहुसंख्यक होंगे दूसरे में आप (हिन्दू) । अपने हिस्से में हमारी भरपूर कोशिश होगी कि शासन शरियत कुरान और हदीस की शिक्षाओं के अनुसार हो। हम आपको भी सलाह देते हैं कि आप भी अपने हिस्से में शासन व्यवस्था **अपने वेदों, पुराणों और स्मृतियों के अनुसार कायम करें .....**" दयानन्द भी राज्य धर्म (राजनीति नही) का आधार वेदों और शास्त्रों को ही बनाने के पक्षधर थे।

मनु कहते हैं:

सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति।।

वेद शास्त्र का जानने वाला व्यक्ति सेनाओं का संगठन और संचालन कर सकता है, राज्य का संचालन 'कर सकता है, दण्ड और नेतृत्व दे सकता है। (एक देश की तो बात ही क्या) ऐसा व्यक्ति सारे भूमण्डल के चक्रवर्ती राज्य का संचालन कर सकता है।

परन्तु भारत के नेतृत्व ने यह जानने का प्रयास ही नहीं किया कि इस लाखों वर्ष पुरानी सभ्यता में भी क्या कोई शासन व्यवस्था विकसित हुई थी? उन्होंने बिना छान बीन किये इस अशिक्षित, दरिद्रता और भूख की मारी जनता को पश्चिमी विकसित देशों की शिक्षित, वैभवशाली, और जागरूक प्रजा की शासन प्रणाली थमा दी जिससे उसकी अज्ञानता का लाभ उठाकर वह शासक बने रहें।

किन्तु स्वामी दयानन्द कूप मंडूक नहीं थे। दयानन्द ने पश्चिमी देशों में हुई वैज्ञानिक और प्राविधिक उन्नति को वैदिक नैतिकता से जोड़कर वैदिक पाठशालायें खोलने पर बल दिया। साथ ही साथ अपने प्रिय शिष्य श्याम जी कृष्ण वर्मा को हिन्दू छात्रों को प्राविधिक शिक्षा प्राप्त करने के उपाय उपलब्ध कराने के लिये जर्मनी भेजा। इन्हीं श्याम जी कृष्ण वर्मा ने छात्रवृत्ति देकर वीर सावरकर और मदन लाल धींगरा जैसे क्रान्तिकारियों का लंदन में रहने का प्रबन्ध किया था।

स्वामी जी ने स्वतंत्रता से लगभग ७५ वर्ष पहले भारत में राजकाज की एक रूपरेखा बनायी थी जो वेदों और स्मृतियों पर आधारित थी और धर्मनिरपेक्ष और जनतांत्रिक भी थी। सत्यार्थ प्रकाश में राजधर्म पर पूरा एक अध्याय है। परन्तु जैसा शिक्षा, भाषा और दूसरे क्षेत्रों में हुआ स्वतंत्र भारत के तत्कालीन विचारकों और शासकों ने राजधर्म के क्षेत्र में बिना अपनी विशेष परिस्थितियों पर ध्यान दिये पश्चिमी शासन प्रणाली को जो अपने देश के लिये उपयुक्त नहीं थी ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया। राजधर्म को त्याग कर राजनीति को स्वीकार किया। फल हमारे सामने है।

दयानन्द और राजनीति

बागी दयानन्द –

भारत में राजनीतिक क्रान्ति के जनक दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश से भी पहले सन् १८७४ में आर्याभिविनय की रचना की थी। उसमें उन्होंने लिखा था– "अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी शासन न करें। हम कभी पराधीन न हों।"

इसके पश्चात सत्यार्थ प्रकाश में भी दोहराया :" कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मत–मतान्तर के आग्रहरहित, अपने और पराये का पक्षपातशून्य, प्रजा पर माता–पिता के समान कृपा, दया और न्याय के साथ भी विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं हो सकता।"

सन् १९४४ में सम्पन्न पंचम आर्य महासम्मेलन के अपने अध्यक्षीय भाषण में डाक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने दयानन्द के इस उद्घोष को उद्धृत करके कहा था–"विदेशी शासन के विरुद्ध क्या इससे अधिक निर्भीक घोषणा हो सकती थी ? "

स्वातंत्रता का श्रेय लेने वाली कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन (१८८५) के सभापति श्री व्योमेशचन्द्र के अध्यक्षीय भाषण से उस समय उसकी मानसिकता का पता लगता है। उन्होंने अपने भाषण का समापन इन शब्दों से किया था : "ग्रेट ब्रिटेन ने हमे शान्ति और व्यवस्था दी है। उसने हमें रेलवे दी है और सबसे बढ़कर पाश्चात्य शिक्षा का अमूल्य वरदान दिया है। यूरोप में शासन के सम्बन्ध में जो विचार वर्तमान में प्रचलित हैं, यदि भारतीय लोग उनके अनुसार अपने देश के शासन के संचालन की इच्छा करें तो यह बात ब्रिटिश सरकार के प्रति उनकी भक्ति की भावना में किसी प्रकार बाधक नहीं होगी।"

जब ऋषि दयानन्द "विदेशी राजा हमारे देश में कभी शासन न करें" का उद्घोष कर रहे थे तब कांग्रेस के अधिवेशनों में सम्राट पंचम जार्ज को लक्ष्य करके बड़े उत्साहपूर्वक "लाँग लिव द किंग" का गीत गाया जाता था।

अनेक कारणों से आज भारत के स्वतंत्रता संग्राम में दयानन्द की प्रमुख भूमिका को भुला दिया गया है। भारत को विदेशी पंजे से मुक्त कराने का श्रेय कांग्रेस और गाँधी को दिया जाता है। **वास्तविकता यह है कि स्वतंत्रता आन्दोलन कभी सफल न हुआ होता यदि दयानन्द ने उसके लिये भूमि तैयार न कर दी होती।**

ईसाई मिशनरियों की राजनीतिक और राष्ट्र विरोधी भूमिका और आर्य समाज –

इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि यदि स्वतंत्रता संग्राम में और उसके पश्चात आजादी मिलने पर भी दयानन्द के मार्ग पर आर्य समाज और सरकार चली होती तो आज जिन समस्याओं से समाज को जूझना पड़ रहा है वह उत्पन्न ही न हुई होतीं। किन्तु पहले स्वतंत्रता संग्राम में आर्य समाज की भूमिका पर।

अंग्रेजी राज्य और ईसाइयत दोनों का चोली दामन का साथ था। ईस्ट इंडिया कम्पनी के बोर्ड आफ डायरेक्टर्स के तत्कालीन चेयरमैन मिस्टर मेंगल्स ने ब्रिटिश पार्लियामेंट में कहा था :

" Providence has entrusted the extensive empire of Hindustan to England in order that the banner of Christ should waive triumphant from one end to the other. Everyone must exert all his strength that there should be no dilatoriness on any account in continuing in the country the ground work of making all Indians Christians."

अर्थात विधाता ने हिन्दुस्तान का विशाल साम्राज्य इंग्लैंड को इसलिये सौंपा है कि ईसामसीह का झण्डा देश के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक फहराता रहे। प्रत्येक ईसाई का कर्तव्य है कि समस्त भारतीयों को अविलम्ब ईसाई बनाने के महान कार्य में पूरी शक्ति के साथ जुट जाएँ।

दयानन्द द्वारा स्थापित आर्य समाज की धार्मिक/सामाजिक गति विधियों का राजनीतिक लक्ष्य अंग्रेजों से छिपा नहीं था। १८९१ की जनगणना के अध्यक्ष मिस्टर ब्लंट ने आर्य समाज के विषय में लिखा था:

" The Arya Samaj doctrine has a patriotic side. The Arya doctrine and Arya education alike sing the glories of ancient India and by so doing arouse a feeling of national pride in its disciples, who are made to feel that their country's history is not a tale of humiliation. Patriotism and politics are not synonymous, but the arousing of interest in national interest is the natural result of arousing national pride." - Census Rep. of 1911, Vol. XV. Part. I, Ch. IV. P-135

अर्थात आर्य समाज के सिद्धान्तों में देशभक्ति की प्रेरणा है। आर्य सिद्धान्त और आर्य शिक्षा समान रूप से प्राचीन भारत के गीत गाते हैं और ऐसा करके अपने अनुयाइयों में राष्ट्र के प्रति गौरव की भावना को जगाते हैं। इस शिक्षा के फलस्वरूप वे समझते हैं कि उनके देश का इतिहास पराभव की कहानी नहीं है। देशभक्ति और राजनीति पर्यायवाची नहीं हैं, किन्तु राष्ट्रीय कार्यों में रुचि या प्रवृत्ति राष्ट्रीय भावना का स्वाभाविक परिणाम है।

पंजाब के गवर्नर लार्ड री ने सन् १८७६ में ईसाई मिशनरियों के एक शिष्टमंडल को प्रिंस ऑफ़ वेल्स के सामने प्रस्तुत करते हुए कहा था :

" They are doing in India more than all those civilians, soldiers, judges and governors your Higness has met."

अर्थात जितना काम आपके सिपाही, जज, गवर्नर और दूसरे अफ़सर कर रहे हैं, उससे कहीं अधिक ये पादरी लोग कर रहे हैं।

भारत सरकार के गुप्तचर विभाग के निदेशक स्टीवन्सन मूर के निरीक्षण में १८६२ ई० में आर्य समाज पर एक रिपोर्ट तैयार की गई थी। उसमें कहा गया था –

१– स्वामी दयानन्द सदैव आर्यावर्त के पुनर्जीवन पर बल दिया करते थे। देश भक्ति और राष्ट्रीयता शब्दों का लगातार प्रयोग करते थे। एक बार एक पादरी से उन्होंने कहा था कि मुझे यह दिखाई दे रहा है कि आपके पतन के दिन निकट आ रहे हैं। इससे स्पष्ट है कि उनके विचार प्रधानतः राजनैतिक थे।

२– कुछ ऐसी एजेन्सियां भी हैं जो सरकार के विरुद्ध मिलकर संगठन बनाने की

प्रवृत्ति रखती हैं। .....उद्देश्य ऊपरी तौर पर धार्मिक विचारों का प्रसार है. ..... ऐसी संस्थाओं में आर्य समाज का नाम उल्लेखनीय है (आर्य समाज) .....में सरकारी सेवा करने वाले अनेक लोग हैं फिर भी इसकी प्रवृत्ति सामान्य रूप से विद्रोह पूर्ण है।"

१८६६ ई० में पंजाब में आर्य समाजी अपने भाषणों में खुले रूप से राजद्रोह की चर्चा करने लगे थे। लाला मुंशीराम और पंडित राम भज दत्त ने १६०३ में गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना के लिये धन एकत्रित करने के लिये गुजरात, सियालकोट और गुजरांवाले में जो भाषण दिये थे उनमें सरकार की कड़ी आलोचना की थी ....." जब गुरुकुल से (युवक) पढ़कर निकलेंगे तो अच्छी तरह समझ लेंगे।"

दयानन्द भाँप गये थे कि मिशनरियों द्वारा ईसाई मत के प्रचार का ध्येय और परिणाम हिन्दुओं के ईसाईकरण के द्वारा विदेशी ईसाई राज्य को उसी प्रकार परिपुष्ट करना है जिस प्रकार विदेशी आक्रान्ताओं और शासकों द्वारा हिन्दुओं को मुसलमान बनाने का ध्येय मुस्लिम राज्य को पुष्ट करना था। इसलिए इन मतों के विरुद्ध उनके अभियान के पीछे एक राजनीतिक लक्ष्य भी था। वह इन मतों को हिन्दू राष्ट्र के लिये विष समझते थे। १६०१ में जनसंख्या अध्यक्ष ने दयानन्द के इस दृष्टिकोण को ठीक ठीक समझ लिया था :

" Dayananda feared Islam and Christianity because he considered that the adoption and adaptation of any foreign creed would endanger the national feelings he wished to foster."

अर्थात दयानन्द इस्लाम और ईसाइयत से इसलिए सशंकित थे, क्योंकि वे समझते थे कि विदेशी मतों को अपनाने से देश वासियों की राष्ट्रीय भावनाओं को क्षति पहुंचेगी जिन्हें वह पुष्ट करना चाहते थे।

इंग्लैंड के तत्कालीन प्रधानमंत्री लार्ड पामर्सटन का विश्वास था कि ईसाई धर्म के प्रचार से अंग्रेजी शासन भी पुष्ट होगा :

" It is not only our duty but in our own interest to promote the diffusion of Christianity as far as possible throughout the length and breadth of India". - Christianity and Govt. of India by Mayhew P-194.

अर्थात यह हमारा कर्तव्य ही नहीं, अपितु हमारे अपने हित में भी है कि भारत में उसके एक कोने से दूसरे कोने तक ईसाइयत का अधिक से अधिक प्रसार हो।

स्वामी दयानन्द का दृढ़ विश्वास था कि यदि देसी रियासतों के हिन्दू शासक जो ब्रिटिश शक्ति की छाया में मदिरा और एयाशी में डूबे हुये थे सुधर जाँय तो वह एक

बड़ी राजनीतिक शक्ति के रूप में उभर सकते थे। इस ध्येय से वह राजस्थान के बार बार दौरे कर रहे थे। कुछ नृप उनके शिष्य बन भी गये थे।

इन्हीं दिनों कलकत्ते में वाइसराय से मिलने पर शिष्टतावश उन्होंने ब्रिटिश राज्य में कानून व्यवस्था की प्रशंसा की तो वाइसराय ने उनसे ब्रिटिश साम्राज्ञी के राज्य को भारत में अनन्त काल तक स्थिर करने के लिये भगवान से प्रार्थना करने को कहा। स्वामी जी ने दो टूक उत्तर दिया : "मैं तो इस शासन के शीघ्र अति शीघ्र समाप्त होने की कामना करता हूँ। बुरे से बुरा स्वदेशी राज्य भी अच्छे से अच्छे विदेशी शासन से उत्तम होता है।"

ऐसा लगता है कि उनके इसी व्यवहार से वाइसराय की दृष्टि में वह एक बागी हो गये ओर अंग्रेजी शासन की सांठ गांठ से राजस्थान में ही उन्हें विष देकर उनकी हत्या कर दी गई।

वास्तव में गाँधी जी की चकाचौंध में हिन्दू समाज भारत की स्वतंत्रता के प्रति दयानन्द के योगदान को भूल सा गया। किन्तु विदेशी विद्वानों ने उसके महत्व को समझा है।

फ्रांस के विख्यात संत एवं विद्वान रोम्यां रोलाँ ने १९०५ में हुए बंगभंग विद्रोह के विषय में लिखा है: " Whether he wished it or not, Swami Dayananda's Arya Samaj prepared the way for the revolt in Bengal in 1905" अर्थात दयानन्द चाहते हो या नहीं १९०५ की बंगाल क्रान्ति के लिये उनकी आर्य समाज ने मैदान तैयार कर दिया था।

A.De. Raincourt ने भी इसकी पुष्टि की है–

" There is little doubt today that the great revolt in Bengal in 1905 was largely the direct result of the religious nationalism of Arya Samaj. Dayananda's organisation was certainly the first nucleus of political nationalism." **- The soul of India, P-136**

अर्थात अब इसमें कोई सन्देह नहीं है कि बंगाल की १९०५ की बड़ी क्रान्ति बहुत हद तक आर्य समाज के धार्मिक राष्ट्रवाद का प्रत्यक्ष परिणाम थी। दयानन्द का संगठन निश्चय ही राजनैतिक राष्ट्रीयता का बीज रूप था।

मई १९०६ में कांग्रेस के डेपुटेशन में प्रतिनिधित्व करने के लिये इंग्लैंड जाने से पहले लाला लाजपतराय ने एक व्याख्यान में बहुत आपत्ति जनक बातें कहीं थीं। .....उन्होंने अकालों और महामारियों का सारा दोष अंग्रेजी सरकार पर डालते हुये भारतीय उद्योग धंधों को चौपट करने के लिये सरकारी नीति को ज़िम्मेदार ठहराया था।

खुफिया पुलिस ने सरकार को ऐसी अनेक सभाओं की रिपोर्ट दी थीं

जिनमें आर्य समाजी बड़ी संख्या में शामिल होते थे। कहा गया था कि सरकार के विरुद्ध प्रचार करने के लिये आर्य समाज ने वैतनिक प्रचारक रखे हुये हैं।

१० जून १९०६ को लाहौर के आर्य समाजियों ने वहां के प्रमुख आर्य समाजी भगत ईश्वर दास के घर पर एक गुप्त बैठक की थी। इसमें कहा गया था कि सरकार सिक्खों को हिन्दुओं से अलग करने की कोशिश कर रही है। आर्य समाजी सिक्खों को अमृतसर आदि स्थानों पर भेज कर सिक्खों को इस षडयंत्र से सावधान करने का निश्चय किया गया।

नोट – *पाठक देखें कि जहां कांग्रेस ने राजनीतिक स्वार्थ के कारण भिंडरावाले के माध्यम से सिक्खों और हिन्दुओं में वैमनस्य उत्पन्न किया जिसकी परिणति हर मन्दिर साहब पर सैनिक कार्यवाही में हुई वहां आर्य समाज इस प्रकार के राष्ट्र विरोधी वैमनस्य के प्रति कितनी सतर्क थी।*

पंजाब के गवर्नर सर डेंजिल इब्बटसन ने भारत सरकार को सूचित किया था: "Wherever there is Arya Samaj, there is sedition" अर्थात जहां जहां आर्य समाज है वहां वहां राजद्रोह है। लाला लाजपतराय का राजद्रोही होना तो सर्व विदित है। डी०ए०वी० कालिज लाहौर के प्रोफेसर भाई परमानन्द के घर की तलाशी में बम निर्माण की विधि की एक पुस्तक भी मिली और क्रान्तिकारी अजीत सिंह (शहीद सरदार भगत सिंह के चाचा) के लिये चन्दा इकट्ठा करने के प्रमाण भी मिले। (भाई परमानन्द को काले पानी में आजन्म कारावास का दण्ड दिया गया था।)

लायलपुर में शहरी बस्ती विधेयक के विरुद्ध चलाये जाने वाले आंदोलन के प्रमुख आर्य समाजी थे। अप्रैल १९०७ के अन्त में जब लाला लाजपतराय वहां एक सभा में बोलने पहुंचे तो उस सभा में आर्य समाजी सरदार अजीत सिंह (स्व० भगतसिंह के चाचा) का भाषण हो रहा था। लाला जी ने कहा भारत के स्वामी हमारे बाप दादा थे– अंग्रेज नहीं। अब हम उसके स्वामी हैं। **इसी सभा में बांके दयाल ने क्रान्तिकारियों का प्रिय और विख्यात स्वरचित गीत "पगड़ी संभाल जट्टा" गाया था।**

लण्डन के टाइम्स ऑफ इण्डिया के विशेष संवाददाता वेलेण्टाइल शिरोल की प्रसिद्ध उक्ति है कि –"Wherever there is arya Samaj, there is unrest" जहां भी आर्य समाज है, वहां अशान्ति है।" सैंड्स द्वारा भेजी गई रिपोर्ट के आधार पर भारत सरकार के गुप्तचर विभाग के निदेशक क्लीवलैंड ने भारत सरकार को १९१० में लिखा–

" In my opinion the Arya Samaj is the most dangerous anti-British movement in India. It attacks social, religious and political convictions, converts unrest and discontent into dissatisfaction and **unites many different classes on a national (all India) and**

distinctly anti-British basis.

"We have now arrived at the stage when Police, and probably the army also think that sedition has been and must be inherent in the system and aims of the body of the Arya Samaj."

अर्थात "मेरी राय है कि भारत में आर्य समाज सबसे अधिक खतरनाक ब्रिटिश विरोधी आन्दोलन है। यह सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक सुधारों की वकालत करता है और उसके माध्यम से भारत के विविध लोगों में एकता उत्पन्न कर उनको ब्रिटिश विरोधी प्लेटफार्म पर इकट्ठा कर विद्रोह और असन्तोष को जन्म देता है। हम अब उस स्थिति में आ गये हैं जहां पुलिस और कदाचित सेना भी यह विश्वास करने लगी है कि आर्य समाज की कार्य शैली में राजद्रोह निश्चित रूप से निहित है।"

(नोट : पाठक नोट करें आर्य समाज भिन्न जातियों को एकता के सूत्र में बाँधकर राजनीति कर रहा था। स्वतंत्र भारत का नेतृत्व समाज को जातियों में बांट कर – लेखक)

कांग्रेस आन्दोलन में सुविधा सम्पन्न जेल के – "ए" क्लास कमरों में रहने वाले नेताओं गाँधी, नेहरू इत्यादि की तुलना काले पानी और काल कोठरियों में जीवन गुजारने वाले और फांसी पर चढ़ने वाले भाई अजीत सिंह, भगत सिंह, सावरकर, राम प्रसाद बिस्मिल इत्यादि आर्य समाजी देश भक्तों से किस प्रकार की जा सकती है ?

परन्तु आज हमने अपने इन शहीदों को भुला दिया है। गाँधी जी ने किस प्रकार आर्य समाज, उसके अनुयाइयों और संस्थापक स्वामी दयानन्द की निंदा की उसका वर्णन हम यथा स्थान करेंगे।

सर मायकल ओडायर (Sir Michael O' Dwyer) ने जिसने १९१९ में अमृतसर में जलियाँवाला बाग में निंदनीय कत्ले आम का आदेश दिया था, लिखा था कि **यद्यपि पंजाब की कुल आबादी में आर्य समाजियों की संख्या पांच प्रतिशत से अधिक नहीं है, १९०७ से आज तक राजद्रोह के कारण जेलों में बन्द कुल अपराधियों में आर्य समाज के सदस्यों की संख्या बहुत अधिक है। उनमें सनातनधर्मी बहुत थोड़े हैं।**

प्रसिद्ध फ्रेंच दार्शनिक रोम्यां रोलाँ के शब्दों में : "इस व्याघ्र पुरुष (दयानन्द) को कदाचित यूरोप उस समय भूल जायगा जब वह भारत का मूल्यांकन करेगा। किन्तु अपनी हानि के परिपेक्ष्य में उसको दयानन्द का स्मरण करना पड़ेगा, क्योंकि दयानन्द में दार्शनिक कर्मयोग तथा नेतृत्व शक्ति का अद्भुत सम्मिश्रण है।"

स्वाभाविक था कि दूरदर्शी राजनीतिज्ञ दयानन्द ब्रिटिश शासन की जड़ खोदने के लिए भारत के ईसाईकरण में लिप्त पादरियों की और इस्लामीकरण में लिप्त मुल्ला मौलवियों की योजनाओं को निष्फल करने के लिये प्राण प्रण से जुट जाँय।

शोक आज यूरोप ही नहीं भारत भी अपने इस ऋषि को भुला बैठा है जिसने कट्टरवादी ईसाई और इस्लाम मतों के सांस्कृतिक, आर्थिक और धार्मिक आक्रमण से उसकी रक्षा करने के लिये अपने छोटे से जीवन का क्षण क्षण लगा दिया।

धर्मान्तरण और साम्प्रदायिक सद्भाव –

दयानन्द ने इस्लाम और ईसाई मतों द्वारा भोले भाले अशिक्षित अन्धविश्वासों में आकण्ठ डूबे हुए हिन्दुओं के छल और लोभ द्वारा धर्मान्तरण के खतरे को भली भँति समझा। उन्होंने समझ लिया कि जब तक इन दो धर्मों के आक्रामक धर्म परिवर्तन पर रोक नहीं लगायी जायेगी हिन्दू समाज बचेगा नहीं। इस प्रकार के धर्म परिवर्तन को रोकने के लिए **उन्होंने सबसे उत्तम उपाय यही समझा कि वह हिन्दुओं में एक ऐसी बौद्धिक क्रान्ति उत्पन्न करें जिससे उनको यह ज्ञान हो जाय कि वास्तविक वैदिक धर्म में और इन सेमेटिक मतों में मुख्य अन्तर क्या है। वैदिक धर्म सब प्रकार इन आक्रामकता मतों से श्रेष्ठ है।** फिर उनका यह विश्वास हठधर्मी पर आधारित न होकर सभी धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन के बाद बना था। केवल वैदिक मत ही विज्ञान, तर्क और बुद्धि की कसौटी पर खरा उतरता है। जो इस कसौटी पर खरा नहीं उतरता वह वेदों में नहीं है। इसीलिये इन (विदेशी) इस्लाम और ईसाई मतों के प्रचारक (मिशनरी मुल्ला, मौलवी) तर्क से घबराते हैं। वह कभी धर्म को तर्क की कसौटी पर परखने को तैयार नहीं होते। अकेला वैदिक धर्म ही तर्क की कसौटी को स्वीकार करता है।

यः तर्केणनुसंधत्ते सः धर्म। (मनु)

जो तर्क से सिद्ध न हो वह धर्म नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकार की क्रान्ति उत्पन्न करने के लिए ईसाई तथा इस्लाम मत का उन्हीं के धर्मग्रंथों द्वारा अध्ययन करना आवश्यक था। इसलिये उन्होंने बाइबिल और कुरान का हिन्दी अनुवाद करवा कर इन मतों का गूढ़ अध्ययन किया। अपनी पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश के १३ वे समुल्लास में ईसाई मत और १४ वें समुल्लास में इस्लाम मत की समीक्षा द्वारा इन दोनों मतों में प्रचलित अंधविश्वासों का निरावरण कर खंडन किया और वैदिक मत की श्रेष्ठता स्थापित की।

अभी तक मौलवी और पादरी प्रचलित पौराणिक धर्म की बुद्धि विरुद्ध बातों की खिल्ली उड़ाकर भोले भाले हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन करते थे। अब उनका सामना आर्य समाज के उन विद्वानों से होने लगा जो अंग्रेजी, अरबी, फारसी के विद्वान थे और जिन्होंने उनकी धर्म पुस्तकों का गहन अध्ययन किया हुआ था। इन मतों में भी अंध विश्वासों की कमी नहीं है। आर्य समाज तो सभी बुद्धि विरुद्ध बातों का खंडन करता है, पौराणिक हिन्दू समाज हो अथवा ईसाई व इस्लाम मत हो। फलस्वरूप इन सार्वजनिक शास्त्रार्थों में जाने

वाले सर्वसाधारण हिन्दू को ज्ञान पर आधारित अपने वैदिक मत की श्रेष्ठता पर गर्व होने लगा। हिन्दू मुसलमान होने के स्थान पर मुसलमान और ईसाई भी हिन्दू होने लगे। इस प्रकार धर्मान्तरण द्वारा क्षीण होते हिन्दू समाज की रक्षा का जैसा प्रभावी उपाय दयानन्द ने प्रस्तुत किया वैसा न पहले कभी हुआ था न भविष्य में होने की आशा है।

मनोमालिन्य मिटाने के लिए पारस्परिक शान्तिपूर्ण विचार विमर्श से उत्तम कोई दूसरा मार्ग नहीं हो सकता है। किन्तु शर्त यह है कि इस प्रकार का विचार विमर्श खुले मन और मस्तिष्क से प्रेमपूर्वक किया जाए। यदि विचार विमर्श से पहले ही विचार विमर्श करने वाले लोग यह मानकर चलें कि उनके पास जो कुछ भी है वही सम्पूर्ण सत्य है और उसके अतिरिक्त अथवा विपरीत न कुछ जानने को रह जाता है और न जानना आवश्यक है तो कोई भी विचार विमर्श लाभदायक नहीं होगा।

लखनऊ के विख्यात मुस्लिम मदरसे नदवतुल उलेमा के सर्वे सर्वा अली मियाँ अपने विद्यार्थियों को सावधान करते हैं: "तुम्हारी पढ़ने की मेज सार्वजनिक पुस्तकालय की मेज़ नहीं है। यह एक मदरसे की मेज है।.....हमारी अलमारियों में कोई ऐसी किताब नहीं मिलेगी जिसे पढ़कर आदमी हफ्तों मानसिक उलझन में पड़ा रहे। कोई भी ऐसी पुस्तक नहीं पढ़ी जानी चाहिए जो उन चिर–पोषित आदर्शों के प्रति शंका पैदा करे जो कि हमारे मदरसों की आधार शिला हैं।"

स्पष्ट है कि इस प्रकार के संकुचित और पूर्वाग्रही विचार वाले उलेमा(विद्वान) कभी भी मुस्लिम बच्चों को दूसरे धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन और विवेचन खुले मस्तिष्क से करने देना नहीं चाहेंगे, यद्यपि विकसित देशों में धर्म की डिग्री प्राप्त करने के लिए इस प्रकार का तुलनात्मक अध्ययन अनिवार्य कर दिया गया है। परन्तु सर्वसाधारण मुस्लिम जनता को इस प्रकार के सार्वजनिक शास्त्रार्थों में भाग लेने से रोकना सम्भव नहीं है। आर्य समाज के शास्त्रार्थों में सभी धर्म के सहस्रों लोग उपस्थित होते थे और दत्त चित्त होकर विभिन्न मतों के विद्वानों की आलोचना और उसके उत्तर और प्रत्युत्तर सुनते थे। इसके बाद वह अपना मत स्वयं विवेक द्वारा निर्णय करते थे। और यहीं से उस बौद्धिक क्रान्ति का उदय हुआ जिसने सर सय्यद अहमद और हाली जैसे विद्वानों को इस्लाम के और पौराणिकों, जैनियों, ईसाइयों इत्यादि मतों के विद्वानों को अपने–अपने मतों के पुनरीक्षण के लिये मजबूर कर दिया।

१२ वें समुल्लास की अनुभूमिका में स्वामी दयानन्द सत्यासत्य के निर्णय में विविध मतों के विद्वानों की भूमिका पर बल देते हुए लिखते हैं : "जब विद्वान लोगों में सत्यासत्य का निश्चय नहीं होता तभी (उनके) अविद्वान अनुयाइयों को महा अन्धकार में पड़ कर बहुत दुख उठाना पड़ता है। इसलिये सत्य की जय और असत्य के क्षय के अर्थ मित्रता पूर्वक वाद वा लेख करना हमारी मनुष्य जाति का

मुख्य काम है। यदि ऐसा न हो तो मनुष्य की उन्नति कभी न हो।"

गीता भी कहती है :

यद् यदाचरित श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते (३:२१)

श्रेष्ठ पुरुष जैसा–जैसा आचरण करता है संसार का साधारण मनुष्य भी वैसा–वैसा ही करता है। जिस वस्तु को वह प्रमाण मानकर, आदर्श मानकर चलता है, संसार उसी आदर्श का अनुकरण करता है।

इसलिए **दयानन्द विभिन्न मतों के विद्वान नेतृत्व को सार्वजनिक शास्त्रार्थ के लिये बार बार आह्वाहन करते हैं। वह भी मित्रता पूर्वक अर्थात बिना पूर्वाग्रहों के।** इस प्रकार के खुले वातावरण में असत्य को चलाना लगभग असम्भव हो जाता है और अविद्वान जन भी स्वयं ही निर्णय कर सकते हैं कि क्या सत्य है क्या असत्य।

इन शास्त्रार्थों में स्वामी जी की अनिवार्य शर्त होती थी कि शास्त्रार्थ में जो कुछ भी बोला जाय वह दो निष्पक्ष व्यक्ति लिखते जाँय जिससे बाद में इस विषय पर कोई मतभेद उत्पन्न ही न हो। स्वामी जी इन शास्त्रार्थों में कोलाहल होने से बार बार रोकते रहते थे। इस कारण लोग उन्हें कोलाहल स्वामी कहने लगे थे।

इस विषय में कोई मतभेद नहीं कि भारत में हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य और हिन्दू ईसाई वैमनस्य एक ऐसी समस्या है जिसका अभी तक कोई स्थायी समाधान नहीं निकल पाया है। इस समस्या से उत्पन्न अनेक परिणामों के कारण भारत की उन्नति का मार्ग अवरुद्ध हो रहा है। गाँधी के तुष्टीकरण के मार्ग पर चल कर भारत का विभाजन हुआ। उस पर चलते रहना हिन्दू समाज को सर्वथा नष्ट करना है।

साइप्रस, चाइना, रूस, बोस्निया जैसे कुछ देशों में मुसलमानों की गैर इस्लाम विरोधी गतिविधियों पर बल पूर्वक रोक लगाने से भी कोई वांछित फल नहीं निकला।

ऐसी स्थिति में भारत में रहकर "हिन्दू बनाम इस्लाम" विषय पर वर्षो अध्ययनरत बेल्जियन विद्वान केनरॉड एल्स के विचार ध्यान देने योग्य हैं। वह कहते है :

" न तो साम्प्रदायिक समस्या कोई बड़ी समस्या है और न ही उससे निपटने के उपाय कोई टेढ़ी खीर हैं। विभाजन के समय लगभग १० लाख व्यक्ति विभाजन के दंगों में मारे गये और पूर्वी बंगाल में पंजाबी सेनाओं द्वारा लगभग ३० लाख व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हुए।

"इन दंगों और हत्याओं का मुख्य कारण मुसलमानों और गैर मुसलमानों के बीच स्थायी शत्रुता का वह सिद्धान्त है जिसके अनुसार इस्लाम का अपने

अनुयाइयों पर यह धार्मिक तकाज़ा है कि वह गैर मुसलमानों से दूर रहे और उनसे घृणा करें।(और युद्ध करें – लेखक)

"कुरान कहती है "युद्ध करो उनसे यहां तक कि फितना (मूर्ति पूजा) शेष न रहे।" (२:१६३ और ८:३६) और "जब तक तुम केवल अल्लाह पर ही विश्वास न ले आवो हमारे तुम्हारे बीच शत्रुता और घृणा का राज्य रहेगा।"(६०:४)

कुरान में ७० से ऊपर आयते गैर मुसलमानों से घृणा करने और उनसे दूर रहने तथा सम्बन्ध न रखने का उपदेश करती है। उनका कहना है गैर–मुसलमानों का अनिवार्य निवास नरकाग्नि में है और इस संसार में शासन और मृत्योपरांत जन्नत केवल मुसलमानों के लिए हैं।

इस तकाजे के साथ एक दूसरा तकाज़ा यह है कि केवल इस्लाम ही एक मात्र सच्चा मत है और शरियत ही एक मात्र न्यायपूर्ण कानून है जिसमें मानव बुद्धि और तर्क का कोई स्थान नहीं और तीसरा तकाज़ा यह है कि पूरे मानव समाज पर इस मत और कानून को लागू करना अर्थात गैर मुसलमानों को इस्लाम में दीक्षित करना प्रत्येक मुसलमान का दैवी कर्तव्य है। लगभग यही परिस्थिति ईसाई मत की भी है। इन तकाजों के होते और उनको कार्यान्वित करने वाले समुदायों के साथ सद्भावनापूर्ण सह–अस्तित्व की आशा करने वाला हिन्दू समुदाय इन मतों में विलीन होकर ही जीवित रह सकता है।

"इन सिद्धान्तों" की पुष्टि मोहम्मद साहब व उनके साथियों के अनेक वक्तव्यों और व्यवहार से भी होती है। आगे चलकर इस्लाम के प्रशंसित विद्वानों और न्यायविदों ने इस सिद्धांत को खूब निखारा। इस मानसिकता को दूर करने का मार्ग सुस्पष्ट है : "इस्लाम के अनुयाइयों के मस्तिष्क से इस गैर इस्लाम विरोधी अलगाववाद को इस प्रकार दूर कर देना जिससे इस प्रकार के आदिम विचारों की जंजीरों को वह स्वयं ही तोड़ फेंकें जैसे युवावस्था को प्राप्त होने पर व्यक्ति स्वयं ही अपने बचपन की भ्रान्तियों पर हंसने लगता है।"

एल्स आगे चलकर कहते हैं :

"उपरोक्त बात एक कठिन समस्या का अति सुगम उपाय लग सकती है। परन्तु हिन्दुओं के सुधारवादी आन्दोलन आर्य समाज ने यही मार्ग अपनाया था और उन्होंने मुसलमानों के इस प्रकार के चिन्तन परिवर्तन को सर्वोपरि मान्यता दी थी। स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा १८७५ ई० में हिन्दू भाषा में लिखित सत्यार्थ प्रकाश में इस्लाम और ईसाई मतों का इसी दृष्टि से पहली बार अध्ययन किया गया था। इस अध्ययन में अनेक सुधारों की आवश्यकता हो सकती है परन्तु निःसन्देह मतों में एक दूसरे के प्रति बैर भाव उत्पन्न करने वाली मान्यताओं पर प्रेमपूर्वक खुले मस्तिष्क से बातचीत करना और उन्हें दूर करना निश्चय ही एक वैज्ञानिक और भाई चारे का मार्ग है। यद्यपि धर्मान्ध मुसलमानों ने इस प्रकार के

बौद्धिक प्रचारकों की अनेक हत्यायें की हैं, किन्तु आर्य समाज ने कभी इस हिंसा का प्रत्युत्तर हिंसा से नहीं दिया।"

"वास्तविकता यह है कि जितना ही मन मुटाव उत्पन्न करने वाली बातों पर खुले मन से निष्कपट विचार मंथन होगा उतना ही साम्प्रदायिक दंगे और आतंकवाद कम होंगे। इस सत्य को समझ लेने पर यह निष्कर्ष सहज ही निकल आता है कि वह "धर्मनिरपेक्ष" संपादक, प्रोफेसर और राजनीतिज्ञ जो इस्लाम के सिद्धान्तों और इतिहास पर बहस मुबाहसे (वाद विवाद) को साम्प्रदायिक एकता के नाम पर निरुद्ध अथवा प्रतिबंधित करना चाहते हैं अथवा करते हैं वह भारत में साम्प्रदायिक प्रज्वलन के मुख्य दोषी हैं। इस्लाम की घोर काफिर (हिन्दू) विरोधी अनिवार्य धार्मिक मान्यताओं पर परदा डालने से मुस्लिम आतंकवादियों के हौंसले बढ़ते हैं। मुस्लिम अत्याचारों के विषय में हिन्दू समाज को शिक्षित करने के प्रयास उन्हें "बेचारे मुसलमानों" के विरुद्ध झूठा प्रचार लगता है। प्रतिक्रिया स्वरूप मुसलमान उस कथित झूठे प्रचार का बदला हिन्दुओं से हिंसा द्वारा लेने में कोई बुराई नहीं देखते। यदि उनको विश्वास हो जाय कि मुसलमानों द्वारा भूतकाल में सचमुच ही धर्म के नाम पर हिन्दुओं पर (जो भारतीय मुसलमानों के पूर्वज थे और बलात मुसलमान बनाये गये –लेखक) घोर अत्याचार और अपमान किये गये थे तो हिन्दुओं के द्वारा उन अत्याचारों/अपमानों के निराकरण की मांग उन्हें अनुचित नहीं लगेगी। उसी प्रकार जैसे नाजी जर्मनों द्वारा अत्याचार की कहानियां सत्यापित हो जाने पर भद्र लोग उनको न्यायसंगत न ठहराकर यहूदियों के प्रति सहानुभूति और नाजियों के कारण लज्जा अनुभव करते हैं।" (केनरॉड एल्सः भारतीय जनता पार्टी –विसा विस हिन्दू रिसर्जेन्स)

महर्षि दयानन्द की शैली पर धार्मिक विद्वानों को मित्रता पूर्वक वाद विवाद (विचार–विमर्श) द्वारा असत्य को छोड़कर सत्य को ग्रहण करने से ही संसार धार्मिक कट्टरता से उबर सकता है। देखा जाय तो तर्क और विज्ञान पर आधारित परस्पर विचार विनिमय द्वारा मत मतान्तरों की परस्पर कटुता को समाप्त करने का यह सुझाव मानव समाज को दयानन्द की अपूर्व देन है।

सीताराम गोयल जो निश्चय ही आर्य समाजी नहीं हैं अपनी विद्वतापूर्ण पुस्तक "हिस्ट्री आफ हिन्दू क्रिश्चियन एनकाउंटर्स ३०४ ई० से १९६६ तक" में लिखते हैं :

"१८५७ के विद्रोह के दमन हो जाने पर अंग्रेजों को विश्वास हो गया था कि उनका ईसाई खुदा ईसाई मत के पक्ष में है और कुछ अफ़सर तथा मिशनरी इस विचार के थे कि भारत के मूर्ति पूजकों को तलवार के बल पर सत्य ईसाई मत में लाया जाय। फलस्वरूप हिन्दू धर्म के विरुद्ध उनकी भाषा आक्रामक और गँवारू हो गई थी। उस काल में ईसाई मत के विरुद्ध जुबान खोलना अंग्रेजी शासन के

विरुद्ध बोलना समझा जाता था। ऐसे कठिन समय में स्वामी दयानन्द ने हिन्दू समाज को इस खतरनाक स्थिति से उबारने का कार्य किया।

"इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये सर्वप्रथम आवश्यकता थी हिन्दुओं में अपने देश, संस्कृति और धर्म के प्रति गौरव की भावना उत्पन्न करना। इस के लिये यह आवश्यक था कि प्रचलित हिन्दू धर्म में से, उन बुराइयों का उन्मूलन करना जो सहस्रों वर्षो की अशिक्षा के कारण और फिर मुस्लिम और अंग्रेजों की गुलामी के समय स्वार्थी पंडितों द्वारा वैदिक धर्म में जिसका कोई जवाब नहीं था प्रवेश करा दी गई थीं। इस कठिन कार्य के सम्पन्न करने के लिये उन्होंने इन बुराइयों पर सीधा सीधा तीव्र आक्रमण किया। अनेक हिन्दुओं ने समझा कि वह ईसाई मिशनरियों के दलाल हैं। मिशनरियों को भी लगा कि वह ईसाई मत के प्रचार का मार्ग सुगम कर रहे हैं।

"महर्षि दयानन्द किसी विषय पर तब तक नहीं बोलते थे जब तक उसका भली प्रकार अध्ययन नहीं कर लेते थे। इसलिये जहां एक ओर वह बाइबिल का हिन्दी अनुवाद करवा कर उसका गहन अध्ययन कर रहे थे वहीं ईसाई मिशनरियों की बात ध्यानपूर्वक सुन भी रहे थे। १८६६ में अजमेर में जे० राबसन से, उत्तर प्रदेश में जे०टी० स्कांट से १८७० में डा० एडाल्फ हेरन्ले से और मुगल सराय में लाल बिहारी डे हिन्दुस्तानी पादरी से उनकी भेंट हुई।

"कलकत्ता में उनका परिचय ब्रह्मों–समाज से हुआ जो ईसाई मत के प्रशंसक थे। १८७५ में बनारस से प्रकाशित सत्यार्थ प्रकाश के पहले संस्करण में उन्होंने ब्रह्मो समाज की समीक्षा करते हुये लिखा : उनमें (ब्रह्मो समाजियों में) अपने देश के प्रति प्रेम की भावना कम है। अपने देश और पूर्वजों के प्रति गौरव अनुभव करने के स्थान पर उनको उनमें दोष ही दोष दिखाई देते हैं। वह अपने भाषणों में ईसाइयों और अंग्रेजों की प्रशंसा के पुल बांधते हैं परन्तु अपने ऋषियों के नाम भी नहीं लेते। उनका कहना है कि आदिकाल से आज तक अंग्रेजों के अतिरिक्त कोई दूसरा बुद्धिमान व्यक्ति पैदा नहीं हुआ। आर्यावर्त के निवासी सदैव मूर्ख रहे हैं। हिन्दुओं ने कभी उन्नति नहीं की। वह वेदों की प्रशंसा तो क्या करें उल्टे वह अपने शास्त्रों की निन्दा करते है। उनकी पुस्तकों में मूसा, यीशू और मौहम्मद का तो गुणगान है परन्तु अपने ऋषि मुनियों की प्रशंसा के दो शब्द भी नही हैं। वह हिन्दू समाज में जात पांत की निन्दा करते नहीं थकते परन्तु यूरोपिय समाज में पारस्परिक जातीय घृणा उनको दिखाई नहीं देती। कहने को तो वह बाइबिल और कुरान में केवल सत्य की खोज करते हैं परन्तु अपने वैदिक वाङमय में उन्हें सत्य दिखाई नहीं देता। वह ईसा के पीछे भाग रहे हैं बिना यह समझे कि उनके पूर्वजों ने उनके लिये कैसी अमूल्य थाती छोड़ी है। उन्हें अपना यज्ञोपवीत विदेशी वर्दियों से भारी लगता है। यह लोग अपने घर में ही भिखारी बन गये है जो न अपना कल्याण कर सकते

हैं और न अपने सहवासियों का।" क्या दयानन्द द्वारा ७० वर्ष पूर्व लिखे गये यह शब्द सुनहरे रंग में प्रत्येक हिन्दू परिवार, मंदिर, स्कूल और सार्वजनिक स्थान पर उत्कीर्ण नहीं किये जाने चाहिए ?

दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के १३ वें और १४ वें समुल्लास में बाइबिल और कुरान की निर्भीक समीक्षा द्वारा सिद्ध कर दिया कि प्रचलित हिन्दू धर्म की अपनी लाख बुराइयों के बावजूद यह मत अपने को उससे उत्तम सिद्ध नहीं कर सकते। उन्होंने इन मतों के विद्वानों को सार्वजनिक शास्त्रार्थो में अपने मतों की श्रेष्ठता सिद्ध करने का बार बार निमंत्रण दिया। **उनका कहना था इन मतों के अंध विश्वासों और क्रूर सिद्धान्तों को उजागर करने से ही इनके दुष्प्रचार को रोका जा सकता है और जिन हिन्दुओं का भ्रम से, भय से अथवा लोभ से धर्मान्तरण कर लिया गया है उन्हें अपने पूर्वजों के मत में लौटाया जा सकता है।**

भारत वर्ष में उस समय हिन्दुओं का मुसलमानों और ईसाइयों द्वारा तीव्रगति से धर्मान्तरण किया जा रहा था। दोनों की पद्धति एक ही थी। पौराणिक कहानियों की खिल्ली उड़ाना और फिर अपने मतों की चुनी चुनी अच्छी बातों का प्रचार करना। इस धर्मान्तरण से सहमें हुये दयानन्द के घोर विरोधी पौराणिक भी इस बात के लिये विवश हो गये कि इन प्रचारकों का सामना करने के लिये वह दयानन्द को आमंत्रित करें।

चांदापुर मेले में पहली बार पादरियों और मौलवियों का सामना महर्षि से हुआ। उन्होंने (पादरियों और मौलवियों ने) पंडितों से कहा कि शास्त्रार्थ तो हमारे और आपके बीच होना है। स्वामी दयानन्द तो आपके सनातन धर्म का भी खंडन करते हैं फिर उनको क्यों बुलाया गया है ? पंडितों ने कहा कि दयानन्द वेदों के मानने वाले हैं इसलिये वह हमारे ही है। फिर इन लोगों ने स्वामी जी से कहा कि आप हमारे साथ मिल कर पौराणिक मत का खंडन करो। स्वामी जी ने कहा कि मैं सत्य की स्थापना और असत्य का उन्मूलन करता हूँ। किसी को हराने जिताने में मेरी रुचि नहीं है। चांदापुर मेले में मौलवियों और पादरियों को ऐसी मुंह की खानी पड़ी कि फिर उनकी वहां प्रचार करने की हिम्मत ही नहीं हुई।

पंजाब से समाचार आ रहे थे कि वहां बड़ी संख्या में हिन्दुओं का धर्मान्तरण होने जा रहा है। स्वामी जी को अपना यू०पी० का दौरा स्थगित कर पंजाब भागना पड़ा। पंजाब में स्वामी जी के ई०एम०व्हेरी०, डब्लू हूपर, डब्लू०सी० फोरमैन और राबर्ट कुक जैसे विशिष्ट ईसाई पादरियों से २० से ऊपर शास्त्रार्थ हुये। धर्मान्तरण की आंधी रुक ही नहीं गई उसकी दिशा ही पलट गई। धर्मान्तरित बंधु वापिस घर आने लगे।

जैसा हम आगे चलकर देखेंगे स्वामी विवेकानन्द ने भी ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों को खूब नंगा किया और उनके धर्मान्तरण प्रोग्राम के सहायक देशों

की भी खबर ली परन्तु उसकी गति रोकने अथवा धर्मान्तरित लोगों को वापिस लाने का कोई महत्वपूर्ण प्रयास नहीं किया। मौलवियों के विषय में तो वह लगभग चुप ही रहे।

कहा जाता है कि उनके गुरु राम कृष्ण परमहंस ने तो ईसाई और इस्लाम मत के अनुसार भी साधना की थी जिसमें उनका साक्षात्कार ईसा और मोहम्मद साहब से हुआ था। इन साधनाओं द्वारा उनको यह अनुभव हुआ बताया जाता है कि इन दोनों मतों के अनुसार साधना करने पर भी उसी स्थान पर पहुंचा जाता है जिस स्थान पर काली पूजा द्वारा। **इसलिये अपने गुरु की भांति विवेकानन्द भी इस भ्रान्ति के शिकार थे कि ईसाई और इस्लाम मत स्वयं में हिन्दू मत से भिन्न नहीं हैं और न उसके शत्रु हैं। दोष इन मतों के मानने वालों में है।** इसलिये स्वामी विवेकानन्द तथा उनके अनुयाइयों से दयानन्द की भांति इन मतों की आलोचना की आशा कैसे की जा सकती है ? दयानन्द अकेले महापुरुष है जो विभिन्न मतानुयाइयों के सामूहिक चरित्र की जड़े उनके मतों में खोज कर दिखाते हैं। वह मतों में प्रचलित अंध विश्वासों, ढोगों और अमानवीय व्यवहारों को निर्दयता–पूर्वक उजागर करने से लेश मात्र भी न डरते हैं न संकोच करते हैं भले ही वह मत उनके अपने पूर्वजों का ही क्यों न हों। उनकी दृढ़ता के कारण उनके विचारों में हमें कहीं भी विरोधाभास देखने को नहीं मिलता।

गाँधी तो सदैव ही आर्य समाज की बुराई करते रहे। अम्बेडकर ने अवश्य हिन्दू समाज को इस्लाम से बार बार सावधान किया किन्तु उनके सामने अपने दलित समाज की समस्या ही इतनी बड़ी थी कि वह इस विषय में इससे अधिक कुछ कर भी नहीं सकते थे।

यद्यपि इस हिन्दू समाज ने अनेक महापुरुषों को जन्म दिया है परन्तु वैदिक ऋषियों के पश्चात दयानन्द जैसे महापुरुष का जन्म नहीं हुआ । यह बात हम बलपूर्वक इसलिये कहते हैं कि दूसरे महापुरुषों ने अपने कार्य के लिये एक विशेष क्षेत्र चुना अथवा यों कहिये कि परिस्थितिवश उनके कार्य का दायरा किसी एक क्षेत्र तक सीमित हो गया। विवेकानन्द अध्यात्म और समाज सेवा से आगे नहीं जा सके। उनकी महत्वाकांक्षा थी कि पूरे विश्व में वेदान्त का डंका बजा दें। वह अपनी वैयक्तिक कमज़ोरियों को कमजोरी मानते हुये भी उनसे उबर नहीं पाये। धूम्रपान, मांसाहार और मूर्ति पूजा को बुरा मानते हुये भी वह उन्हें त्याग नहीं पाये। विवेकानन्द आज रामकृष्ण मठों और सेवा अस्पतालों में जीवित हैं। उन्होंने किसी समाज सुधार की ओर ध्यान नहीं दिया। हिन्दू समाज को इस्लाम और ईसाई मतों द्वारा बड़े पैमाने पर चलाये जा रहे संगठित धर्मान्तरण के विरुद्ध रामकृष्ण मिशन का प्रयास शून्य ही रहा। उल्टे वह आज भी सभी मतों की समान श्रेष्ठता और सत्यता की वकालत कर हिन्दू राजनीतिज्ञों को भ्रमित कर रहे हैं।

गाँधी जी का क्षेत्र तो केवल राजनीति रहा। वह राजनीति भी उनके स्वयं

कथनानुसार दो सिद्धान्तों पर टिकी थीः अहिंसा और हिन्दू मुस्लिम एकता। इन दो ध्येयों की प्राप्ति के लिये उन्होंने एड़ी चोटी का ज़ोर लगा दिया और फल क्या निकला ? भारत का धार्मिक विभाजन। विभाजन में १० लाख पुरुष स्त्रियों बच्चों का संहार और एक करोड़ लोगों का विस्थापित हो जाना। हिन्दू–मुस्लिम एकता के नाम पर केवल विभाजन ही मिला। उन्होंने हिन्दू–मुस्लिम आबादी की अदला बदली की यथार्थवादी योजना भी नहीं चलने दी जिसका जिन्नाह और अम्बेडकर ने आग्रह किया था। फलस्वरूप हिन्दू भारत में मुस्लिम समस्या ज्यों की त्यों बनी रही और अब हिन्दू समाज उन्हीं सर्वविदित कारणों से सर्वनाश के किनारे पर खड़ा है।

अम्बेडकर ने दलित होने के नाते अपमान के कड़वे घूंट पिये थे। यद्यपि स्थिति में भारी बदलाव आया है फिर भी ब्राह्मण और क्षत्रिय समाज विशेषकर देहातों में उन्हें आज भी हेय दृष्टि से देखता है और मुसलमान अथवा ईसाई हो जाने पर ही उनसे बराबरी का व्यवहार करता है। इस सब के बावजूद अम्बेडकर ने दलित नेता होते हुये भी सम्पूर्ण हिन्दू समाज को आहत नहीं किया जैसा गाँधी ने किया। संक्षेप में कहें तो उनका सिद्धान्त थाः "आपने हमारे साथ सहस्रों वर्ष पर्यन्त पशुओं जैसा व्यवहार किया है। अब हम ऐसा नहीं होने देंगे। हम अपने अधिकार संविधान के दायरे में रह कर लेंगे। जिस पौराणिक हिन्दू धर्म में हमारे लिये सम्मान जनक स्थान नहीं उसे हम त्याग देंगे परन्तु आपको नष्ट करने पर तुले इस्लाम और ईसाई मतों से भी नहीं मिलेंगे क्योंकि ऐसा करना मानवता के हित में नहीं है।"

कुशल वैद्य रोगी के रोग का सही निदान करने मात्र से संतुष्ट नहीं होता। उसे गहराई में जाकर उन कारणों का पता भी लगाना पड़ता है जिनके कारण रोग उत्पन्न हुआ और फिर उन कारणों का उन्मूलन कर स्वस्थ जीवन का मार्ग भी बताना पड़ता है। बहुत से वैद्य रोगी के ऊपरी लक्षणों को देखकर औषधि दे देते हैं। फलस्वरूप कुछ समय के लिये वह लक्षण दब जाते है परन्तु रोग किसी दूसरे रूप में पहले से भी अधिक भयानक रूप में प्रकट होकर रोगी को मार डालता है।

दयानन्द हिन्दू समाज को पूर्णतः स्वस्थ देखना चाहते थे। इसलिये उन्होंने रोग के लक्षणों की केवल खोज नहीं की। उनके कारणों को जड़ों तक खोजा और यह बताया कि किस किस भूल के कारण यह रोग उत्पन्न हुये और अब उनको दूर करने के लिये उन दोषों की जड़ों का कैसे उन्मूलन किया जाय ?

इसलिये उन्होंने समाज के प्रत्येक क्षेत्र में प्रवेश किया। फलस्वरूप उनकी पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश में अध्यात्म पर १६ पन्नों का एक छोटा सा प्रथम अध्याय २३ पन्नों का सातवां अध्याय, १६ पन्नों का ८ वां अध्याय है। शेष समुल्लास इस प्रकार हैं :

२– बाल शिक्षा ६ पृष्ठ। ३– शिक्षा–२६ पृष्ठ। ४– गृहस्थ–३० पृष्ठ। ५– वान प्रस्थ और संन्यास–६ पृष्ठ। ६– राजधर्म–२५ पृष्ठ। ७– ईश्वर –२३ पृष्ठ। ८– सृष्टि उत्पत्ति १६ पृष्ठ। ९– विद्या–अविद्या–१८ पृष्ठ। १०– आचार और अनाचार, भक्ष्य और अभक्ष्य–१० पृष्ठ। ११– **भारत वर्ष में प्रचलित पौराणिक मतों की समीक्षा–८६ पृष्ठ। १२– चारवाक, जैन, बौद्ध इत्यादि नास्तिक मतों की समीक्षा ४५ पृष्ठ। १३– ईसाई मत समीक्षा–३६ पृष्ठ। इस्लाम धर्म समीक्षा ४७ पृष्ठ।** लगभग ३५० पृष्ठों पर हिन्दू समाज को नष्ट करने वाले कारणों की खोजबीन और उन पर वेदों पर आधारित समीक्षा तथा उन्मूलन पर विचार किया गया है।

दयानन्द विश्व में प्रचलित मुख्य मुख्य मतों में उन सब दोषों की छानबीन करते है जिनके कारण मानव त्रस्त है। विशेष रूप से हिन्दू समाज में जो उनकी प्राथमिकता है वह उन दोषों की जड़ों को खोजते हैं और फिर उनको समूल नष्ट करने के लिये केवल उपाय सुझा कर इतिश्री नहीं कर देते। उन उपायों को व्यवहार में लाकर दिखाते हैं। **सत्यार्थ प्रकाश के रूप में दयानन्द हिन्दू समाज को उसके कष्ट साध्य सभी रोगों से मुक्त करने और जगद्गुरु की परम प्राचीन स्थिति में पहुंचाने का एक सम्पूर्ण वेदोक्त ब्लूप्रिंट ही दे जाते हैं।**

सन् १८७७ ई० में लार्ड लिटन ने देहली में दरबार किया। भारतवर्ष के सब राजे–महाराजे अपनी सज–धज के साथ विराजमान हुए। रंग–विरंगे खेमे थे। जड़ाऊ सिंहासन, मखमली कालीन, सुन्दर फर्श, चमकीले पर्दे, भड़कीली वर्दियां थीं। राजसी ठाठ की पराकाष्ठा प्रतीत होती थी। यह सब सज धज इसलिए थी कि भारतवर्ष में एक राज्य होने की क्रियात्मक घोषणा हो जाए – सर्वसाधारण को पता लग जाए कि अब से सारे देशवासी एक सम्राज्ञी की प्रजा हैं।

उसी दरबार के अवसर पर ऋषि दयानन्द ने एक और दरबार की योजना की थी। इस दरबार में राजसी राजा नहीं आए। हृदयों के राजा, आध्यात्मिक जगत के अधिपति, धार्मिक नेता एकत्रित हुए। सर सयद अहमदखां, श्रीयुत केशवचन्द्र सेन, श्रीयुत नवीनचन्द्र राय, श्री कन्हैयालाल अलखधारी, श्रीयुत इन्द्रमणि; आदि प्रमुख धर्म–प्रचारक ऋषि की कुटी में पधारे। ऋषि ने प्रस्ताव किया, "आओ हम राजनैतिक एकता से भी अधिक व्यापक, अधिक प्रभावशालिनी धार्मिक एकता की उद्घोषणा करें। सब अपने अपने धर्म की बड़ाई बताओ। जो बात सबके स्वीकार करने योग्य हो, वह सब स्वीकार करें, और जो त्याग करने योग्य हो वह सब त्याग दें।" यह थी दयानन्द की व्यापक दृष्टि। परन्तु जिस प्रकार ऋषि को हरिद्वार में शंकराचार्यों और दूसरे हिन्दू मठाधीशों से निराशा हाथ लगी थी उसी प्रकार दिल्ली में भी वह दूसरे **मतों के धर्माचार्यों को इस बात पर तैयार करने में सफल नहीं हुये कि सब लोग अपने अपने मतों की पुस्तकों में से अवैज्ञानिक, असत्य, मानवता विरोधी बातों को खोज कर निकाल डालें।**

सिद्धान्त पर स्वार्थ फिर विजयी हुआ। दूसरे धर्मों के प्रतिनिधियों ने धर्म पुस्तकों का तुलनात्मक अध्ययन नहीं किया था, इसलिये ऋषि का मनोरथ उस सम्मेलन में सफल न हुआ। परन्तु इतना तो हो ही गया कि **धर्म–सम्बन्धी उदार विचार की नींव उसी सम्मेलन में रखी गई। विविध मतों के प्रतिनिधि इकट्ठे होकर प्रीतिपूर्वक व्यापक धार्मिक समस्याओं को सुलझा सकते हैं – यह सम्भावना सबसे पूर्व ऋषि की उदार धर्मनीति ने मूर्त रूप में संसार के सम्मुख उपस्थित की।**

अरविन्द उनकी इस अद्भुत शक्ति पर मुग्ध हो कर कह पड़ते हैं :

"उन विलक्षण महापुरुषों की पंक्ति में जो भावी पीढ़ियों को भारतीय पुनर्जागरण के शीर्ष स्थान पर दिखाई देंगे एक ऐसा व्यक्ति भी होगा जो अपनी अनोखी विशिष्टता के कारण अलग थलग दीख पड़ेगा – क्योंकि वह जैसा अपने व्यक्तित्व में अद्वितीय है वैसा ही अपने कार्य में भी है।

"जैसे कि कोई छोटी बड़ी हरी–भरी एक से एक सुन्दर और मनोरम पहाड़ियों में घंटो घूमता घूमता किसी ऐसे गगन चुम्बी शिखर के पास पहुंच जाय जो सबसे अलग थलग अपनी निराली छटा विखेर रहा हो, जिसके देखने से ही उसकी विराटता मन पर छा जाती हो, जिसके शिखर से जीवन दायनी, शुद्ध जल की धारायें फूट–फूट कर चारों ओर की वनस्पतियों को हरा भरा कर रही हों दयानन्द को देखकर भी मन पर कुछ ऐसी ही छाप पड़ती है।

"दयानन्द की कार्यशैली ही अलग थी। वह संशयशील आत्माओं में चुपचाप प्रवेश नहीं करता था, अपितु उन पर कुछ इस प्रकार की अमिट छाप उत्पन्न करता था जैसी 'के धातु की मूर्ति पर। उसके कार्य उसकी आत्मा की मानों संतान ही है – सुन्दर शक्तिशाली और जीवनी शक्ति से ओत प्रोत। ठीक अपने जनक की भांति। उसे निश्चय और स्पष्ट रूप से पता था कि उसे क्या करना है और उसके लिये वह अपने उचित उपकरण मानों दिव्य दृष्टि से चुन लेता था और एक जन्मजात कुशल कारीगर की भांति अपने कार्य का सम्पादन करता था।

" जब मैं ईश्वर की इस दुर्जेय कृति की ओर देखता हूँ तो मेरी दृष्टि में लगातार संघर्ष, विजय और सफलताओं के चित्र घूम जाते हैं। और मैं अनायास कह उठता हूँ **"दयानन्द ! तू सचमुच ज्योति पुंज है। परमात्मा की कृति का अनुपम योद्धा, महापुरुषों और संस्थाओं का निर्माता है तू। आत्मा की पदार्थ पर विजय का प्रतीक है तू"**। और इन सब चित्रों का मेरे मन पर जो प्रभाव पड़ता है वह आत्मा और व्यवहारिकता का अनुपम गठबंधन है। **आत्मा और व्यवहारिकता ही, जिनको हम सदैव दो विरोधी शब्द स्वीकार करते आये है, दयानन्द की वास्तविक और ठीक–ठीक परिभाषा है।**

" उसकी आत्मा आज भी हमारे जैसे पुरुषत्व तथा कर्मठता में दुर्बल मनुष्यों को चिल्ला–चिल्ला कर कहती सुनाई देती है: "ऐ भारतवासियों

अनिश्चित मना और ढुलमुलपन के जीवन पर संतोष मत करो। देखो तो तुम्हें निर्माण करने में परमात्मा का ध्येय क्या है ? उसके उस ध्येय के परिपेक्ष में जीयो और उन्नति करना सीखो। और उसी के अनुसार अपने को ढालो। **दार्शनिक तो बनो किन्तु जो सोचते हो उसे करते भी जाओ।** प्रकृति पर विजय प्राप्त करो" क्योंकि दयानन्द स्वयं ऐसा ही था। उसकी आत्मा में ईश्वर का निवास था तो आंखों में दूर दृष्टि थी और हाथों में इतना कौशल और बल भी था कि उसी दृष्टि के अनुसार वह जीवन का निर्माण कर सकता था। स्वयं कठोर से कठोर पत्थर की भांति होने के कारण वह कठोर आघातों से पत्थर की मनमानी मूर्तियाँ निर्माण करना जानता था।

'मुख्य बात यह है कि उसने वेदों का आश्रय लिया जो कि भारत की प्राचीन आधार शिला रहे हैं और उसकी तीक्ष्ण दृष्टि ने उनमें जिस ज्ञान को खोज पाया उसी में उसने एक पूरी राष्ट्रीयता के दर्शन किये।

"वास्तव में हम अपने विश्वासों में बहुत ही ढुलमुल हैं। अपने को परिस्थितियों और वातावरण के अनुकूल ढाल लेते हैं। जब कि हम लड़ाकू और कट्टर होने का नाटक भी करते हैं **वास्तविकता यह है कि हम बहुत ही अनिश्चितमना और अवसरवादी होते हैं।** दयानन्द को जो भी मिला उस पर उसने गहन मन्थन किया और फिर उसका कुशलतापूर्वक सत्य की स्थापना के लिए उपयोग किया। **उसके चरित्र में हमको जो लड़ाकूपन और आक्रमणशीलता दिखाई देती है वह वास्तव में उसके चरित्र बल और आत्मशक्ति का ही एक अंग है।**

"जहाँ तक वेदार्थ का प्रश्न है मेरा पूर्ण विश्वास है कि चाहे अन्तिम और पूर्ण वेदार्थ कुछ भी क्यों न हों दयानन्द को सदैव वेदार्थ के सही सुराग लगाने वाले प्रथम व्यक्ति के रूप में स्मरण और सम्मानित किया जायगा। चारों ओर फैली दुर्व्यवस्था, अज्ञानताजनित रूढ़िवादिता और शताब्दियों लम्बे भ्रम के वातावरण में दयानन्द की ही दृष्टि थी जिसने इन सबको भेदकर सत्य को उजागर किया और उसको दृढ़ता पूर्वक पकड़े रहने का साहस किया। उसने उन दरवाजों की कुंजियां खोज निकालीं जिसको समय की गति ने बंद कर दिया था। उसने बंद पड़े फव्वारों की धारा को फिर से उन्मुक्त कर दिया।"

विख्यात इतिहास विद् डा० ताराचन्द लिखते हैं :

"दयानन्द ने आर्य समाज को सामाजिक आचरण की एक नैतिक संहिता दी। इस संहिता में जन्म पर आधारित जाति व्यवस्था को तथा मनुष्य मनुष्य में अथवा पुरुष और स्त्री में किसी भेदभाव को कोई स्थान नहीं था।

"दयानन्द पहले हिन्दू समाज सुधारक थे जिन्होंने हिन्दू समाज के ऊपर इस्लाम और ईसाई मतों के आक्रमण से रक्षा करने के लिये सुरक्षात्मक

दृष्टिकोण के स्थान पर आक्रामक व्यवहार का उपयोग किया। उन्होंने इन मतों के तर्कों और आरोपों को उन्हीं के विरुद्ध प्रयोग कर उन्हें अपने मतों का बचाव करने पर बाध्य कर दिया" जो लोग भेड़ मूंडने गये थे वह स्वयं मुंडने लग गये। उनके ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश ने सभी मतों में अंध विश्वासों और ढोंगों को निरावरण कर दिया।

ऋषि दयानन्द आज दूसरे सभी समाज सुधारकों, संतों और राजनीतिज्ञों से अधिक प्रासंगिक हैं क्योंकि उनके सुधारों के परिणाम राजनीतिक और सामाजिक होते हुये भी चरित्र निर्माण, विज्ञान और तर्क पर टिके हैं।

वह अकेले हिन्दू मत के सुधार पर बल नहीं देते अपितु सभी प्रचलित मतों में से तर्क और बुद्धि विरुद्ध बातों को निकाल कर उनको सत्य धर्म की ओर अग्रसर करना चाहते हैं। वह तोते की तरह सभी मतों की समानता अथवा एकता के नितांत झूंठे मंत्र को नहीं रटते। वह उनके अंदर भरे एक दूसरे के प्रति घृणा और हिंसा फैलाने वाले सिद्धांतों की पिटारी खोल कर रख देते हैं और केवल सत्य की कसौटी पर खरे उतरने वाले सिद्धांतों को वास्तविक धर्म मानने को सारे विश्व का आह्वाहन करते हैं।

दयानन्द का वैयक्तिक चरित्र

स्वामी दयानन्द का यह अध्ययन अधूरा रह जायगा यदि पाठक उनके वैयक्तिक चरित्र से अनभिज्ञ रह जाँय। आगे चलकर दूसरे महापुरुषों से तुलनात्मक अध्ययन करते समय भी इस मूल्यांकन में सहायता मिलेगी।

१–निर्भीकता और सत्य वादन –

स्वामी जी की निर्भीकता प्रसिद्ध है। भगवान कृष्ण की गीता के अनुसार यह दैवी सम्पत्ति में प्रथम स्थान पर आती है (१६:१)। मैडम ब्लैवट्सकी ने उनकी निर्भीकता का आंखों देखा वर्णन किया है। वह कहती हैं : "हमें ऐसा सोचने का मन होता है कि यह आश्चर्यजनक हिन्दू एक मंत्र पूत व्यक्ति है। वह इस प्रकार के विवादों को जन्म देने में लेश मात्र भी संकोच नहीं करता जो भारत में अत्यन्त खतरनाक सिद्ध हो सकते हैं।

"सचमुच ही संगमरमर की बनी एक निर्जीव मूर्ति भी उस उन्मत्त भीड़ के क्रोध से कम प्रभावित नहीं हुई होती। हमने आंखों से देखा है उसने अपने सभी अनुयाइयों को अलग खड़े रहने का आदेश दिया। और उन्हें कहा कि वह न तो उसकी चिन्ता करें और न उसकी रक्षा।

"वह उस भयानक भीड़ रूपी पागल हिंसक जन्तु के सम्मुख अकेला शान्त और निर्भीक खड़ा था जो किसी समय भी उस पर आक्रमण कर उसके टुकड़े टुकड़े कर देने को उन्मत्त थी।

"निश्चय ही भारत भूमि ने उससे अधिक संस्कृत के विद्वान, गहन आत्म ज्ञानी, आश्चर्यजनक वक्ता और किसी भी बुराई के निर्भीक निंदक को आदि शंकराचार्य के पश्चात जन्म नहीं दिया।"

बरेली में उनके व्याख्यान में अनेक अंग्रेज फौजी और दूसरे अफसर तथा मुसलमान बैठे थे। स्वामी जी ने अपने स्वभावानुसार ईसाई मत के अंध विश्वासों और तर्क विरुद्ध अवैज्ञानिक मान्यताओं का निर्भीक खण्डन किया। अंग्रेज और भारतीय ईसाई तिलमिलाकर रह गये परन्तु उनके तर्कों का उत्तर उनके पास नहीं था। स्वामी जी मुंशीराम (बाद में श्रद्धानन्द)के पिता तहसीलदार के यहां ठहरे थे। तहसीलदार साहब से कहा गया कि वह स्वामी जी को चेतावनी दें कि ईसाई लोग तो सहनशील हैं परन्तु यदि वह इस प्रकार की आलोचना इस्लाम धर्म के विषय में करेंगे तो मुसलमान हिंसा पर उतारू हो सकते हैं। स्वामी जी को यह संदेश पहुंचा दिया गया। अगले दिन व्याख्यान प्रारम्भ करते समय उन्होंने कहा कि अपने प्रति हिंसा के भय से वह सत्यवादन नहीं छोड़ सकते। यदि सामर्थ्य है तो उनके तर्कों का उत्तर दिया जाय। व्याख्यान में शान्ति बनाये रखने का दायित्व शासन का है। स्वामी जी के निस्पृह तर्कों से प्रभावित होकर अनेक मुसलमान और ईसाई उनके भक्त बन गये।

स्वामी जी के मूर्ति खण्डन से अप्रसन्न राव कर्ण सिंह ने जब उन पर अपनी तलवार खींच ली तो स्वामी जी ने एक झटके में उससे तलवार छीनकर उसके (तलवार) दो टुकड़े कर दिये और कहा हम सन्यासी हैं। यदि तलवार का अभिमान है तो अंग्रेजों से लड़ों और यदि हमसे शास्त्रार्थ करना है तो अपने गुरू को बुलाओ।

राजपूताने की अनेक रियासतों ने उन्हें अपने राज्य में मुख्य महन्त बनाने की पेशकश की थी यदि वह मूर्ति पूजा खण्डन त्याग दें। उनका उत्तर था कि वह किसी प्रलोभन वश सत्य को नहीं त्याग सकते।

२–दयानन्द और ब्रह्मचर्य

स्वामी दयानन्द और इस पुस्तक के दूसरे नायक महात्मा गाँधी ने ब्रह्मचर्य पर बहुत बल दिया है। केवल इसी कारण से इन दो महापुरुषों के जीवन काल की इस विषय से सम्बन्धित कुछ घटनाओं का वर्णन इन की जीवनियों में देना प्रासंगिक हो गया है। दयानन्द तो बाल्यकाल से ही वैराग्य की दिशा में चल पड़े थे। जिस आयु में साधारण युवक एक सुंदर जीवन संगिनी के स्वप्न देखते हैं उस युवावस्था में यह युवा वैरागी सत्य की खोज में भारत के पहाड़ों, जंगलों और तीर्थ स्थानों में भटक रहा था। उनके जीवन की तीन घटनाओं से उनके ब्रह्मचर्य विषयक दृष्टिकोण का आभास हमें मिलता है।

महर्षि दयानन्द ग्रहस्थ धर्म में प्रवेश करने से पहले बालक बालिकाओं को

एक दूसरे से दूर रखने के सिद्धान्त में विश्वास करते थे। सहशिक्षा तो दूर वह तो बालक बालिकाओं के शिक्षा संस्थानों में भी कुछ मीलों का अन्तर रखने के पक्षधर थे। यह विचारधारा आज कल की ईसाई (पश्चिमी) अवधारणा के बिल्कुल विपरीत है। इस पुस्तक में इस विषय पर विचार करना प्रासंगिक नहीं है परन्तु इतना तो स्पष्ट ही है कि पश्चिमी देशों में कुंवारी माताओं, गर्भपात, गर्भनिरोध, तलाक इत्यादि की बढ़ती आँधी और उसके भारत प्रवेश के अभी तक के दुष्परिणामों को देखते हुए इस विषय पर तुरन्त गंभीर विचार करना अत्यावश्यक है। दुर्भाग्यवश हमारे आधुनिक विद्वान पश्चिमी रंग में इतने रंग गये हैं कि वह सहशिक्षा के विरोध में कुछ भी सुनने को तैयार नहीं होते।

१– भारतीय संस्कृति में एक मुख्य सिद्धान्त रहा है: परदारेषु मातृवत पर द्रव्येषु लोष्ट्रवत "पराई स्त्री माता के समान है और पराया धन मिट्टी के समान"। एक बार मार्ग में खेलते बच्चों में एक नग्न बालिका को देखकर स्वामी जी ने मस्तिक झुका कर माता के रूप में उसे प्रणाम किया तो उनके साथी चकित रह गये।

२– एक बार उनके विरोधियों ने उनको पतित बदनाम करने के लिए एक सुन्दर वेश्या कन्या को खूब सजा सँवार कर एकान्त में स्थित उनकी कुटिया पर भेजा। उसने स्वामी जी को अनेक लोभ दिये परन्तु जब स्वामी जी बार–बार माता कह कर उससे तुरंत वहाँ से चले जाने का आग्रह करते रहे तो वह पश्चाताप और ग्लानिवश रुदन करने लगी। अपने को महा पापी कह कर स्वामी जी से क्षमा मांगने लगी।

३– एक बार स्वामी जी ध्यान मग्न थे। एक स्त्री ने उनके चरणों में अपना शीश रख दिया। अकचका कर उन्होंने आँखे खोलीं तो तुरन्त उठ खड़े होकर उससे वहाँ आने का कारण पूछा। उसने कहा कि मैं आप जैसा पुत्र प्राप्त करने की आशा से आपके पास आई हूँ। स्वामी जी ने कहा: माता तू मुझे अभी इसी समय से अपना पुत्र स्वीकार कर ले। इस घटना के बाद स्वामी जी ने स्त्री स्पर्श न करने के अपने नियम के अनायास टूट जाने का कठिन प्रायश्चित किया। ऐसा था स्वामी दयानन्द का ब्रह्मचर्य।

आगे चल कर महात्मा गाँधी पर विचार करते समय उनके ब्रह्मचर्य व्रत से जुड़ी घटनाओं पर प्रकाश डालेंगे जिससे इस विषय पर इन दोनों महापुरुषों के दृष्टिकोण का अंतर स्पष्ट हो जाय।

महर्षि स्वामी दयानन्द का दूसरे मतावलम्बियों पर प्रभाव

देशी विदेशी विद्वानों की दृष्टि में दयानन्द –

महर्षि दयानन्द के विविध मतों के तुलनात्मक अध्ययन और उनमें भयानक

अन्ध विश्वासों, ढोंग तथा पारस्परिक विद्वेष बढ़ाने वाली शिक्षाओं को निरावरण करने का फल यह अवश्य निकला कि उन मतावलम्बियों में अपनें मतों की विज्ञान विरोधी, अन्धविश्वास युक्त तथा विद्वेषपूर्ण शिक्षाओं से किसी प्रकार पीछा छुड़ाने की प्रवृत्ति चल पड़ी। खुले रूप से अपने मतों में सुधार करने की हिम्मत बहुत कम लोगों में होती है परन्तु फिर भी अनेक मुसलमान, ईसाई, जैन और पौराणिक हिन्दू अपने मतों की बुराइयों का आत्मचिंतन कर उनके संशोधन में प्रवृत्त हुए।

सर सयद अहमद ने कुरान की नये प्रकार से व्याख्या करनी प्रारम्भ की। उसमें जन्नत में हूरो इत्यादि के वर्णन को भौतिक मानने पर तीव्र कटाक्ष किये और उनको अलंकारिक कह कर किसी प्रकार उन पर होने वाले कटाक्षों से पीछा छुड़ाना चाहा । परन्तु कट्टर पंथियों को यह भी सहन न हुआ। उनके प्रभाव और दबाव के कारण सर सयद को कुरान की समीक्षा अधूरी ही छोड़ देनी पड़ी।

दूसरे मतों के प्रति असहिष्णुता के आरोप से बचने के लिये मौलवियों ने कुरान की उन दो चार मतों के सहअस्तित्व और सहनशीलता दर्शाने वाली आयतों का प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया जो मौहम्मद साहब पर अपने मक्का निवासी विरोधियों के विरुद्ध अपर्याप्त बल होने के कारण अवतरित हुई बतायी जाती हैं और बाद में नई आयतों द्वारा निरस्त कर दी गयी थीं।

ईसाई मत की बाइबिल के आपत्तिजनक अंशों के विरुद्ध स्वयं ईसाई विद्वानों द्वारा ही इतना विशाल साहित्य रचा गया कि उसका संक्षेप में भी वर्णन करना कठिन है।

पौराणिकों ने वर्ण को जन्म जात न मान कर कर्म पर आधारित होना स्वीकार कर लिया। स्त्री शिक्षा, स्वीकार्य हो गई। बाल–विवाह, छुआछूत, सती प्रथा कानून बनाकर बन्द कर दिये गये। अनेक जैन विद्वानों ने जैन मत में मूर्ति पूजा को बाद को जोड़ा हुआ अधार्मिक कर्म सिद्ध करना प्रारम्भ कर दिया। जैन धार्मिक ग्रंथों की ग्रहस्थों द्वारा अध्ययन पर लगाई गई रोक अस्वीकार कर दी जाने लगीं अंध विश्वासों के विरुद्ध एक नई क्रान्ति का जन्म हुआ।

महर्षि दयानन्द ने मतों की समीक्षा करते हुए केवल दोष ही नहीं दिखाये परन्तु इसके विपरीत कहीं कहीं उनके गुणों को भी माना है। उदाहरणार्थ पुराणों के सम्बन्ध में उनका कथन है कि उनकी सभी बातें मिथ्या नहीं हैं। उनमें सत्य भी है, किन्तु यह बहुत थोड़ा है और जो है वह वेदादि सत्यशास्त्रों में पहले से ही विद्यमान है।

उन्होंने लिखा है: "जो अठारह पुराणों के कर्ता व्यास जी होते तो उनमें इतने गपोड़े न होते। क्योंकि शारीरिक सूत्र, योगशास्त्र के भाष्य आदि व्यासोक्त ग्रन्थों के देखने से विदित होता है कि व्यास जी बड़े विद्वान, सत्यवादी और धार्मिक, योगी थे । वे ऐसी मिथ्या कथा कभी न लिखते। और इससे यह सिद्ध होता

है कि जिन सम्प्रदायी परस्पर विरोधी लोगों ने भागवत आदि नवीन कपोलकल्पित ग्रन्थ बनाये हैं, उनमें व्यास जी के गुणों का लेश भी नहीं था। और वेदशास्त्रविरुद्ध असत्यवाद लिखना व्याससदृश विद्वानों का काम नहीं। किन्तु यह काम विरोधी, स्वार्थी, अविद्वान लोगों का है।" महर्षि ने व्यास जी पर कितनी भक्ति प्रदर्शित की है ? वह इस हेतु से भी पुराणों के विरुद्ध हैं कि यह हमारे पूर्वजों की मिथ्या निन्दा से भरे पड़े हैं। देखिये – "देखो! श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरणपर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं। दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी, कुब्जा दासी से समागम, परस्त्रियों से रासमण्डल क्रीड़ा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्ण जी पर लगाये हैं। **इसको पढ़–पढ़ा सुन–सुना के अन्य मत वाले श्रीकृष्ण जी की बहुत सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्ण के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती।"** आजकल लोग प्रह्लाद की प्रशंसा करते हैं किन्तु स्वामी जी उसकी भी भर्त्सना करते हैं : "अब रहा हिरण्यकश्यप, उसका लड़का प्रह्लाद था, वह भक्त हुआ था। उसका पिता पढ़ने के लिये भेजता था। क्या बुरा काम किया था ? और वह प्रह्लाद ऐसा मूर्ख, पढ़ना छोड़ वैरागी होना चाहता था।"

इन सब मतों की समीक्षा से उन का एक ही प्रयोजन है कि किसी प्रकार परस्पर के विचार–विनिमय से मनुष्य सर्वसम्मत सत्य को जानें और तदनुसार बर्ते। इस मिशन को लेकर दयानन्द जिस समय कार्यक्षेत्र में आये, उस समय के भारतशासक हमारी निकृष्टता और अपनी उत्कृष्टता सिद्ध करने में लगे हुए थे। इसका प्रधान साधन उन्होंने इतिहास को बनाया। स्कूलों, कालिजों में विकृत इतिहास की पोथियां रचवाकर पढ़ाई जा रही थीं, जिनका ध्येय यह सिद्ध करना था कि आर्य लोग भारत के मूल निवासी नहीं है। भारतवर्ष का बाहर देशों में राज्य करना तो क्या, यह समूचा देश कभी भी एकछत्र राज्य के अधीन नहीं रहा, तथा भारतीय केवल दार्शनिक कल्पना में ही प्रवीण थे, सांसारिक विद्याओं से वे दूर थे, इत्यादि।

मुस्लिम काल में इस्लाम मत को वेदोक्त सिद्ध कर हिन्दुओं को उसकी ओर आकृष्ट करने का भी षडयंत्र रचा गया। अल्लोपनिषद की रचना उसी काल में की गयी। अथर्ववेद के अंत में काण्ड २० में कुन्ताप सूक्तों को इस प्रकार जोड़ा गया कि उस से वेदों में मौहम्मद साहब के अवतरण की भविष्यवाणी सिद्ध हो सके।

विदेशियों की क्या कहें स्वयं वाम मार्गी लोगों ने यजुर्वेद के कुछ..... मंत्रों के ऐसे गंदे भाष्य किये कि विदेशी विद्वानों ने अपनी भाषा में वेदों का अनुवाद करते समय उन मंत्रों का अनुवाद न कर लिख दिया कि यह मंत्र इतने अश्लील और

लज्जा जनक हैं कि उनका अपनी भाषा में अनुवाद कर वह अपनी भाषा को अपवित्र अथवा कलंकित करना नहीं चाहते।

दयानन्द ने इस प्रकार की वेद विरुद्ध सभी देशी विदेशी साज़िशों को अपनी अनूठी विद्वता और तर्कपूर्ण शैली से बेनकाब कर नाकाम कर दिया।

दयानन्द ने इसी प्रकार पुरातन ग्रन्थों के गम्भीर बुद्धिपूर्वक मनन से यह परिणाम निकाला कि विदेशियों द्वारा फैलाये गये भ्रम मिथ्या प्रवाद हैं। उन्होंने पुरातन ग्रन्थों के आधार से बताया कि विद्या का मूलस्थान भारत ही है। समस्त संसार को विद्या भारत से ही मिली। भारत में पुराने समय में तोप बन्दूक आदि अस्त्र थे। आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्तिराज्य था। उन्होंने इतिहास के अनुसन्धान की एक नई दिशा सुझाई। तीर्थों आदि के खण्डन प्रसंग में उन्होंने पण्डों की पुरानी बहियों एवं ताम्रपत्रों की चर्चा की है। इससे ज्ञात होता है कि वे ऐतिहासिक सामग्री के प्रति पूर्णरूप से जागरूक थे। इस समुल्लास के अन्त में आर्यराजाओं की वंशावली दी है। कई ऐतिहासिक उससे सहमत नहीं है, किन्तु इतना सभी मानते हैं कि इस दिशा के प्रथम पथ प्रदर्शक वही हैं।

इस समुल्लास को लिखने के लिये उन्हें कितना परिश्रम करना पड़ा? समग्र पुराण, उपपुराण, तन्त्र (शैवतन्त्र, शाक्ततन्त्र, वैष्णवतंत्र), विविध सम्प्रदायों के दार्शनिक एवं धार्मिक ग्रन्थ यथा कबीर–वचनावली, दादूदयाल की वाणी, श्रीगुरुग्रन्थ साहब, रामस्नेहियों का ग्रन्थ आदि–आदि हजारों संस्कृत एवं भाषा के ग्रन्थ उन्होंने पढ़े। जिस मत के सम्बन्ध में लिखा, पूरी खोज करके लिखा।

महर्षि का स्वाध्याय कितना विस्तृत था इसके लिये "भ्रान्तिनिवारण" से उनका एक लेख हम यहां उद्धृत करते हैं। पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न को उत्तर देते उन्होंने लिखा है– "क्योंकि मैं अपने निश्चय और परीक्षा के अनुसार ऋग्वेद से लेके पूर्वमीमांसा पर्यन्त अनुमान से तीन हजार ग्रन्थों के लगभग (ग्रन्थों को प्रमाणिक) मानता हूँ" (दयानन्द ग्रंथमाला शताब्दी संस्करण पृष्ठ ८७७)। कितने ग्रन्थ पढ़कर परीक्षा करके इस संख्या का निश्चय किया होगा! मान्यग्रन्थों की यह संख्या केवल संस्कृत ग्रन्थों की है। अन्य भाषाओं के ग्रन्थ, जो उन्होंने पढ़े व सुने, इससे पृथक हैं।

Madam Blavatski जो Theosophical society की एक प्रसिद्ध नेता हो गुजरी हैं उसने भारतयात्रा करके एक पुस्तक लिखी है जिसका नाम "The Caves & Jungles in Hindustan है अर्थात् "हिन्दुस्तान के जंगल तथा गुफायें।" उसमें स्वामी दयानन्द के सम्बन्ध में निम्नलिखित वर्णन किया है :–

One is inclined to think that this wonderful Hindoo bears a charmed life, so ceaseless is he of raising the worst human passions which are so dangerous in India. It is perfectly certain that India never

saw more learned scholar, deeper metaphysician, more wonderful orator, more fearless denunciator of any evil than Dayanand since Shanker's time. Wherever Dayanand appears crowds prostrate themselves on the dust over his footprints but he does not teach them a new religion, does not invent any dogmas. He only asks them to renew their old half forgotten sanskrit studies and comparing their old doctrines with the modern, to the pure conception of Deity taught by the primitive Rishis the patriarchs who first gave the vedas to humanity."

अर्थ : प्रत्येक मनुष्य इस बात के विचार करने पर प्रेरित होता है कि यह विचित्र हिन्दू एक मंत्र पूत व्यक्ति है। वह (अपने वक्तव्यों द्वारा) लगातार इस प्रकार के वाद विवाद को जन्म देने में किंचित भी नहीं घबराता जो भारत में अत्यंत ख़तरनाक सिद्ध हो सकते हैं। यह निश्चयरूप से कहा जा सकता है कि शंकराचार्य के पश्चात भारत ने स्वामी दयानन्द से अधिक विद्वान, गुणी, आत्मिक विद्या में निपुण, अद्वितीय व्याख्याता, निर्भय और दुराचार के विरुद्ध गरजने वाला महापुरुष नहीं देखा। जहाँ कहीं से दयानन्द गुज़रता है, जनता उसके पांवों की धूलि चूमने को तैयार हो जाती हैं। वह जनता में किसी नये धर्म का प्रचार नहीं करता, न कोई नया सिद्धान्त पेश करता है। वह केवल यही कहता है कि अपने पूर्वजों की भाषा को जिसको तुम भूल गये हो पुनः जीवित करो और प्राचीन सिद्धान्तों की वर्तमान समय के सिद्धान्तों के साथ तुलना करके परमात्मा के शुद्ध स्वरूप को पहचानो जिसका हमारे प्राचीन आदि ऋषियों ने जिन्होंने मनुष्य मात्र के लिये वेदों को सबसे पहले प्रकट किया था, हमें उपदेश दिया है।

जब Theosophical Society America (थियोसोफिकल सभा अमेरिका) के नेताओं ने स्वामी जी के कार्य, उपदेशों और धार्मिक ग्रन्थों की महिमा को सुना तो स्वामी जी को अमरीका से निम्नलिखित पत्र भेजा, जिसका सारांश यह है–

Broadway New York 1878

Blessed is the soil where you are preaching and teaching the Divine wisdom. Permit us that we may attribute you as our father and teacher and should do such works that we may deserve your kindness. We like a child are ignorant of vedic philosophy. Teach us O dear Swami so that we may explain about the Arya samaj to the Public. We are your disciples and ready to obey your commands.

अर्थ– अहो भाग्य हैं उस भूमि के जहां आप ईश्वरीय ज्ञान का प्रचार कर रहे हैं तथा शिक्षा दे रहे हैं। हमें अनुमति दीजिये कि हम आपकों अपना पिता तथा

गुरू कहकर पुकारें और ऐसे कार्य करें जिनसे आपके कृपापात्र बन सकें। हम तो वैदिक फिलासफी से बच्चों के समान अनभिज्ञ हैं। पूज्य स्वामी, हमें शिक्षा दीजिये ताकि हम यहां की (पातालदेश निवासियों) जनता के समक्ष आर्य समाज के सम्बंध में व्याख्या कर सकें। हम आपके शिष्य हैं और आपकी आज्ञा पालन करने को तैयार है।

यद्यपि विवेकानन्द की भाँति दयानन्द कभी विदेश नहीं गये परंतु जर्मनी, अमेरिका इत्यादि से उनके पास आये इस प्रकार के पत्रों से ज्ञात होता है कि उनकी ख्याति समुद्रों को लाँघ कर वहाँ पहुँच चुकी थी।

Reverend Andrew's views :

As to Dayanand's personality and character, there may well be almost unqualified admiration. He was a puritan to the back bone and lived upto his creed.

He was a fighter, strong, virile and independent but imperious in his behaviour. His courage in facing his own countrymen through years is marvellous and persecution was nothing less than heretic. **He was a passionate lover of truth.**

अर्थ – दयानन्द के व्यक्तितत्व तथा आचरण के सम्बन्ध में हमें अत्यन्त आश्चर्य पैदा होता है। वह पहले दरजे का जितेन्द्रिय और ब्रह्मचारी था और अपने सिद्धांतानुकूल आचरण करता था और दृढ़ था। वह हृष्ट, पुष्ट, शूरवीर योद्धा और स्वतन्त्र विचार वाला था। उसने बड़े धैर्य तथा वीरता से कई वर्ष तक लगातार अपने देश के निवासियों (की कुरीतियों) का विरोध किया। उसके स्वदेश निवासी नास्तिकपन का दोष उसके सिर मढ़ते थे, परन्तु वह सत्य पर मुग्ध तथा दृढ़ रहने वाला था।

Major Armstrong's view :

I agree with all you say in praise of Dayanand. It is astonishing to me that only a section of the Hindoos accept Dayanand's interpretation of the vedas. Reformation is uphill work. .....(I am surprised to see) that such a gifted lady as Dr. Annie Besant who might be of much use in furthering the cause of the Arya samaj is going astray in her method of teaching and preaching.

अर्थ – "मैं स्वामी दयानन्द की प्रशंसा करने में आप सब सज्जनों के साथ सहमत हूँ। मुझे आश्चर्य है कि हिन्दू जाति का एक ही अंग स्वामी जी के वेदभाष्य को स्वीकार करता है। सामाजिक सुधार बड़ा कठिन कार्य है।

"मुझे यह देखकर निराशा होती है कि एनी बेसेन्ट जैसी विदुषी देवी जो आर्य समाज के मिशन को फैलाने के लिए अत्यन्त लाभदायक होतीं, अपने उपदेशों

तथा शिक्षाप्रणाली में इधर उधर घूम रही हैं और सीधे मार्ग पर चलकर काम नहीं करती।

Theosophist (थियोसोफिस्ट) पत्र में स्वामी दयानन्द के सम्बन्ध में १८८३ में उनकी मृत्यु के पश्चात यह लेख निकला था।

Master of spirit Pandit Dayanand was irrepressible, whose mighty voice and passionate eloqunce for the last few years raised thousands of people in India from lethargic indifference and stupor into active puritanism. In his lifelong zeal to the cause of Aryan regeneration, his ardent love for the grand philosophy of his forefathers, **his relentless enthusiasm in the work of social and religious reforms, Swami Dayanand** laboured for the recovery of lost treasures of Indian intellect. - He threw a bomb shell in the midst of stagnant masses of degenerated Hindooism and fired with love the hearts of all who were drawn within the influence of his eloquent oratory. Certainly there was no better or grander orator in Hindi or sanskrit than Dayanand throughout the breadth and length of this land. In him there was no sychophancy or toadyism.

अर्थ – पंडित दयानन्द आत्मिक बल में निपुण, निर्भय, और किसी से न दबने वाले व्यक्ति थे। उनकी सिंहनादरूपी आवाज़ तथा पुरजोश उत्तम भाषण ने कई वर्ष तक भारत के हजारों हिन्दू लोगों को प्रमाद तथा लापरवाही से जागृत अवस्था में ला दिया। उनके भीतर बल और धर्म की उत्तेजना उत्पन्न कर दी। उन्होंने आर्य जाति की उन्नति तथा उसे पुनर्जीवित करने के लिये आयुभर यत्न किया। अपने पूर्वजों की उत्तम फ़िलासफ़ी के प्रकट करने के लिये अत्यन्त प्रेम दर्शाया। सामाजिक तथा धार्मिक सुधार करने में अनथक उत्साह प्रकट किया। भारत की सभ्यता, विद्या तथा दर्शन का कोष जो लुप्त हो गया था उसे खोज़ने का पूरा यत्न किया। उसने पतित हिन्दू धर्म की अवनत तथा मृतप्रायः जनता और जाति के उन लोगों के मध्य में ज्ञान के विस्फोट द्वारा उन सब के हृदय अग्नि से प्रज्ज्वलित कर दिये जो उसके उत्साहवर्धक भाषणों तथा मधुर वचनों के प्रभाव से उसकी ओर आकर्षित होकर आये थे। निश्चयरूप से भारतभूमि में एक सिरे से दूसरे सिरे तक संस्कृत तथा हिन्दी में पंडित दयानन्द से बढ़कर कोई विद्वान या व्याख्यानदाता नहीं हुआ। उनके भीतर किसी की खुशामद तथा रियायत का लिहाज नहीं था।

टी० वासवानी पूर्व आचार्य ब्रह्म कालिज, लाहौर की सम्मतिः "ऋषि दयानन्द की महत्ता किस बात में है ? उसका नाम लेते हुये उसके यश, कीर्ति को देखकर उसका स्मरण नहीं होता, क्योंकि किसी मनुष्य की ख्याति यश अथवा कीर्ति उसकी महानता की कसौटी नहीं है। सिकन्दर तथा सीज़र दयानन्द से अधिक

यशस्वी थे, परन्तु दयानन्द के कपड़े का दामन छूने के भी अधिकारी न थे। न मैं उसको वक्तृताशक्ति तथा धाराप्रवाह (व्याख्यान देने की सामर्थ्य) के लिये उसकी पूजा करता हूँ, क्योंकि डीमास्थनीज तथा सिज़ेरो उससे अधिक भाषण प्रवीण थे। दयानन्द पूर्ण विकसित मस्तिष्क वाला, बुद्धिमान, तेजस्वी और शब्दविद्या में निपुण था, परन्तु अफ़लातून या हैकल के समान किसी नये पंथ का स्थापन करने वाला न था, बल्कि वह आचार्य था। आचार्य केवल शिक्षा देने वाला ही नहीं हुआ करता, वह दीर्घदृष्टि हुआ करता है जो अपने भीतरी ज्ञान चक्षु द्वारा वास्तविकता का अनुभव करता है। साथ ही वह ऐसे विचारों तथा सिद्धान्तों को अपने जीवन पर घटा कर दर्शाता है। आचार्य वह पुरुष है जिसके भीतर आचार तथा विचार दोनों उपस्थित हों। दयानन्द इसलिये आचार्य था कि वह दीर्घदृष्टि था और उसने अपने जीवन के भीतरी विचारों को अमली तौर पर ढाल कर प्रकट करके दिखाया। वह सच्चा आदर्श आर्य सन्यासी था। ऐसा मनुष्य जो कि योगाभ्यास तथा कर्तव्य को पालन करने वाला था।

"A sanyasi of true Aryan type a man atonce of action and meditation."

ख़्वाजा हसन निज़ामी लिखता है कि "मैं स्वामी जी को भारत का महापुरुष मानता हूँ, क्योंकि उन्होंने अपनी जाति के सुधार का महान कार्य किया। उनकी सबसे अधिक महत्ता जिसके लिये मैं अपने प्रेम को प्रकट करता हूं उनके जीवन की सादगी है।

"स्वामी जी उस काल में पैदा हुये जबकि भारतवासियों ने नुमायशी फ़िज़ूल खर्ची को अपने जीवन का अंग बना लिया था। वह यूरोप की देखा देखी टीप टाप पर मुग्ध हो चुके थे। इसलिये स्वामी जी ने अपना जीवन तथा स्वरूप ऐसा रखा जिसको देखकर उनके अनुयायी लोग शिक्षा ग्रहण कर सकें तथा शरीरिक पूजा वा दिखलावे में अपना जीवन व्यर्थ न खोवें। मुसलमान स्वामी जी के धार्मिक सिद्धान्तों से लाभ उठाने का यत्न नहीं करते, परन्तु स्वामी जी के सरल जीवन का आदर्श ऐसा है जिससे उन को भी शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये ताकि ऐसी ही स्वतंत्रता और सरल जीवन का पाठ वह भी पढ़ सकें। क्योंकि मुसलमान भी गृहस्थ के कार्यों में पश्चिम की सभ्यता तथा चमक का अनुकरण कर रहे हैं।"

Rabindra Nath Tagore (रवीन्द्रनाथ टैगोर) की सम्मति :–

My reverence to great teacher whose vision found unity and truth in Indias' spiritual history : whose mind luminously comprehended all departments of Indian life; whose call to India is the call of awakening to truth and purity from inertness of unreasonableness and ignorance of the meaning of our past.

अर्थ – मैं उस बड़े गुरू के आगे सिर झुकाता हूं जिसकी दीर्घदृष्टि ने भारत के आध्यात्मिक इतिहास में सत्य तथा एकता का अनुभव किया और जिस की बुद्धि ने भारत के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रकाश पहुंचाया। जो आह्वान तथा संदेश उसने भारत को दिया, वह अविद्या तथा भ्रमजाल के प्रमाद से सत्य तथा पवित्रता की ओर ले जाने के लिये था और हमारी भूतकाल की शान को प्रकट करने के लिये था।

Dr. Annie Beasent (डाक्टर एनी बेसेन्ट) की सम्मति :

Swami Dayanand held up the Vedas and Upnishads as the glory of India, proclaimed the value of Indian thoughts and priceless heritage of Indian people until the indians began once more to pride themselves on their past and realised that the prestine scriptures were not the hoblings of children or the fancies of savages but were the foundation of a mighty system, the glory of the past and life of future.

अर्थ – स्वामी दयानन्द ने वेद तथा उपनिषदों को भारत की शान तथा गौरव सिद्ध कर दिया और भारत के उत्तम विचारों की महत्ता तथा कदर प्रकट कर दी और दर्शाया कि भारत जाति के यह अनमोल ग्रन्थ उसकी अनमोल विरासत (पैतृकसंपत्ति) हैं। उस का प्रभाव यहां तक पड़ा कि भारतवासी पुनः अपने भूतकाल पर गर्व करने लगे और अनुभव करने लगे कि हमारे पूर्वजों के धार्मिक ग्रन्थ बच्चों की बलबलाहट या जंगलियों के गीत तथा वहमी खयालात नहीं, बल्कि एक प्रबल धर्म की नीव के समान हैं, जो भूतकाल का गौरव तथा आगामी समय का जीवन प्रकट करते हैं।

Revered Gresvold Professor Mission College Lahore अपनी सम्मति प्रकट करते हुये लिखते हैं :

His long battle with orthodox Pundits, Mahomedans and Christians indicates the born fighter, the man who is able to give and receive hard blows in the conflict for truth. there was certainly nothing soft or yielding in the character of Swami Dayanand.

His discrimination between scripture and tradition and his assignment of different religious values to the two portions of Hindoo sacred literature remind us of the work of Luther. His frank adoption of theism as opposed to polytheism and pantheism is certainly a great merit in his system."

पादरी ग्रिसवोल्ड साहब प्रोफेसर मिशन कालिज, लाहौर स्वामी जी के विषय में अपनी सम्मति देते हैं :–

" स्वामी जी ने चिरकाल तक सनातनी पंडितों, ईसाइयों तथा मुसलमानों

के साथ धार्मिक युद्ध किया, जिससे प्रतीत होता है कि वह स्वाभाविक अर्थात् जन्म सें ही धार्मिक योद्धा थे और सत्य की परीक्षा के लिये युद्ध करने में अपने शत्रु पर वार करने तथा उस का वार सहने को तत्पर रहते थे। उनका आचरण इतना महान था कि कदापि अपने दृढ़ संकल्प से हटने वाले न थे न कभी दुर्बलता प्रकट करने को तैयार थे। उन्होंने हिन्दू धर्मपुस्तकों तथा गाथाओं में भेद प्रकट किया और दर्शाया कि हिन्दू धर्मशास्त्रों के दो भाग हैं। उन्होंने प्रत्येक भाग की भिन्न–भिन्न भूल प्रकट की। हमें उनके इस संशोधन को देखकर जर्मनी का लुथर याद आ जाता है। उन्होंने बहुदेवपूजा तथा सब कुछ ईश्वर है (अद्वैतवाद) के विरुद्ध बलपूर्वक निर्भयता से नाद बजाया। यही बात उनके मत तथा विचार की अत्यन्त प्रशंसनीय है।

Mrs. Sarojini Naidu :

Swami Dayanand was one of the greatest of modern forces and his gospel being the true essence of the real ancient Vedic religion is very regenerating and far reaching in its scope and influence. **What India needs now is really a regeneration of the spirit and it is such inspired seers and thinkers as Swami Dayanand who open up new sources for modern India to drink from the immemorial river of spiritual wisdom."**

मिसेज सरोजनी नायडु, स्वामी जी के सम्बन्ध में लिखती हैं :–

" स्वामी दयानन्द वर्तमान समय की एक विशाल शक्ति थे। उनका सन्देश तथा उपदेश वास्तव में प्राचीन वैदिक धर्म का सत्य निचोड़ तथा सुगंध है जो जाति को पुनर्जीवित करने वाला तथा अपने प्रभाव और आदर्श सीमा में दूर तक पहुँचाने वाला है। **भारतवर्ष की यदि अब कोई अत्यन्त आवश्यकता है तो वह रूहानियत (आत्मिक ज्ञान) के पुनर्जीवित करने की है और स्वामी दयानन्द के समान दीर्घदर्शी और विचारशील पुरुष ही भारतवर्ष के सुधार का मार्ग खोल सकते है और उसे उन्नति के शिखर पर ले जा सकते हैं** ताकि जिज्ञासु लोग ईश्वरीय ज्ञान के अमृतरूपी स्रोत से अपनी प्यास बुझाकर अमर हो जावें।

अल्ताफ हुसेन हाली प्रसिद्ध शायर ने अन्य मुस्लिम देशों ईरान, अफगानिस्तान, इत्यादि की तरह भारत को पूर्णतः इस्लामिक देश बनाने में इस्लाम की घोर असफलता को इन क्षोभपूर्ण पंक्तियों में प्रकट किया था –

दीने हजाज़ी का बेबाक बेड़ा,
जिसने किये पार सातो समुन्दर।
जो जेहु में भटका न सेहु में अटका,
वह डूबा दहाने में गंगा के जाकर।।

उसी हाली को मुसलमानों के गैर इस्लामी कृत्यों पर कटाक्ष करना पड़ा–

करे गैर गर बुत की पूजा तो काफिर। जो ईसा को माने खुदा पुत्र काफ़िर।।
मगर मोमिनों को कुशादा है राहे । करे शौक से जिसकी पूजा वह चाहें ।।
मजारों पै जा जा के नज़रे चढ़ायें। शहीदों से जा जा के मांगे दुआऐं ।।
न ईमान जाये न दीन इससे जाये । न इस्लामी तौहीद में फर्क आये।।

विख्यात विद्वान प्रो० खानबहादुर ख्वाज़ा दिलमोहम्मद एम०ए०, फेलो पंजाबी यूनिवर्सिटी एवम् रिटायर्ड प्रिन्सिपल इस्लामिया कालिज लाहौर, जिन्होंने गीता का उर्दू में पद्यानुवाद किया था जो अपने समय की एक विख्यात कृति समझी जाती है। वह स्वामी दयानन्द के विषय में फर्माते हैं :

जो बातिल के दुश्मन हैं और हक के हैं तालिब
उदू से भी जिनको मुहव्वत की खू है।
नहीं फिक्र जिनको सिवा फिक्र हक के,
तलाशे हकीकत जिन्हें चार सू है।।
जहालत से बच जांय दुनिया के बन्दे।
यही उनकी हसरत यही आरजू है।।

अल्ताफ हुसेन हाली ने भी कुछ इसी प्रकार के मनोद्गार प्रकट करते हुए कहा था :

उसे जानते है बड़ा अपना दुश्मन,
हमारे करे ऐब हम पै जो रोशन।
नसीहत से नफरत है नासह से अनबन
समझते हैं हम रहनुमाओं को रहजन।
यही ऐब है सब को खोया है जिसने,
हमें नाव भर कर डुबोया है जिसने।

स्वामी दयानन्द के विषय में गाँधी जी की हास्यास्पद आलोचना का विवरण हम गाँधी जी के अध्याय में विस्तारपूर्वक देंगे। जिससे उनकी हिन्दू धर्म और उसके महान उद्धारक व सुधारक दयानन्द के विचारों से तुलना की जा सके।

आज की परिस्थितियों में दयानन्द की प्रासंगिकता–

मुस्लिम और ईसाई साम्प्रदायिकता से कैसे छुटकारा पाया जाय इस पर दयानन्द के विचार हम पीछे यथा स्थान दे आये हैं।

इससे कौन इन्कार कर सकता है कि आज देश में दूसरी बड़ी समस्या सम्पूर्ण अराजकता और भ्रष्टाचार है। काश्मीर में उत्पन्न आतंकवाद की बड़ी समस्या को छोड़ भी दिया जाय तो स्थानीय समस्यायें भी कौन सी कम हैं ? यदि आर्थिक घोटालों को ही ले लो तो उनकी बोफोर्स से लेकर चीनी, चारा, संचार उपकरण,

खाद इत्यादि घोटालों की फहरिस्त की एक पुस्तक ही बन जायगी। दक्षिण के राज्यों में एक मात्र वीरप्पन वीसियों कत्ल और चंदन तस्करी का अपराधी सुर्खियों में छाया रहता है। वह शासन को चुनौती देता रहता है। शासन बेवस है एक व्यक्ति के सामने। वीरप्पन के सामने।

बंगाल में ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ जाने पर एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी की खुले आम हत्या कर दी जाती है। यह घटना अखबारों में छपती है और खो जाती है। दोषी व्यक्तियों का क्या हुआ ? कुछ हुआ भी या नहीं ? कोई नहीं जानता। घोटालों की तरह। बिहार में तो गृह युद्ध चल रहा है। प्राइवेट सेनायें है। उनके पास आधुनिक हथियार हैं। १०–२० व्यक्तियों का नर संहार आम बात है। शासन बेवस है।

बम्बई में विस्फ़ोटों में सैकड़ों लोग मारे जाते हैं। उसकी जड़ में कुछ लोगों का नाम लिया जाता है। पूरा फिल्म उद्योग माफिया (मुख्य रूप से मुस्लिम तथा विदेशी मुस्लिम देशों से सम्बद्ध) के हाथ बिका हुआ पाया जाता है। अभिनेता और अभिनेत्रियां दुबई के चक्कर लगाते रहते हैं। फिर सिनेमा जैसे सशक्त संचार माध्यम का स्तर तो वही होगा जो यह धन लगाने वाले माफिया चाहेंगे। यह सब इस ८० करोड़ हिन्दुओं द्वारा चुने गये शासकों को मालूम है। परन्तु वह बेबस हैं। काश्मीर से पकड़े गये हिन्दुओं की सामूहिक हत्या करने वाले कितने सौ अथवा कितने सहस्र दुर्दान्त आतंकवादी हत्यारे जेलों में ईमान दार नागरिकों की पसीने की कमाई पर पल रहे हैं ? सजा किसी को नहीं होती। यहाँ भी सरकार बेबस है। नेपाल की सरहद खोखली हो चुकी है। भारत में संगीन जुर्म कर लोग नेपाल के जरिये विदेश भाग जाते हैं। यहाँ भी प्रशासन बेबस है। सैकड़ों लोग हैं जिनको जिंदा या मुर्दा पकड़वाने पर लाखों रूपये के इनाम है । जब वह किसी राजनीतिक हस्ती के लिये खतरा बन जाते हैं कभी कभार पुलिस उनमें से एक दो को मार गिराती है। उनके राजनैतिक संबंधों सहायकों और शरणदाताओं की सूची बेबस शासन में दबा दी जाती है क्योंकि उसमें ऐसे लोगों के नाम है जिनके सामने शासन बेबस है। सहस्रों संगीन अपराधी जेलों में बंद रोटियां, कबाब, शराब और शबाब का मजा लूट रहे हैं। वहीं बैठकर टेलीफोन और जेल अधिकारियों की सहायता से अपने अपराध तंत्र का संचालन कर रहे हैं। करोड़ों का व्यापार चला रहे हैं। हमें समाचार पत्रों में कभी पढ़ने को नहीं मिलता कि किसी दुर्दान्त आतंकवादी को, हत्यारे को, डाकू को, अपहरणकर्ता को फांसी दी गई हो। क्योंकि हमने एक सभ्य देश का आवरण ओढ़ रखा है और सभ्य देशों में फांसी नहीं दी जानी चाहिये। हमने मानवाधिकारों के बड़े रक्षात्मक उपाय किये हैं। वह इन दुर्दान्त हत्यारों को जीने का मानवाधिकार दिलाते हैं। जैसे उनके द्वारा मारे अथवा सताये गये लोगों के कोई मानवाधिकार ही नहीं हैं।

यह तो बड़े अपराधों की दशा है। छोटे अपराधों को कौन गिनाये। प्रत्येक ग्राम और प्रत्येक मोहल्ले में उभरते हुये गुंडे हैं। शासन की असमर्थता और नपुंसकता को देखकर उनके हौंसले बुलंद होते जा रहे हैं ? यह आने वाले कल के वीरप्पन, बबलू श्रीवास्तव, श्रीप्रकाश शुक्ला हैं। और क्यों न हों ? सुख शान्ति पूर्वक रहने का एक आसान रास्ता बन गया है जुर्म और उसके बल पर राजनीति में प्रवेश। उसकी सहायता अथवा उसके द्वारा विश्वविद्यालयों के शिक्षकों से लेकर ईमानदार बेसहारा नागरिक तक अनाथ हैं। वह डर के मारे न विरोध करते हैं न पुलिस के पास जाते हैं।

फिलहाल यह उभरती प्रतिभायें, स्कूल कालिज जाती लड़कियों की ज़िंदगी दूभर किये हैं। वह बेचारी सब कुछ बरदाश्त करती सिर झुकाकर चली जाती हैं। गले की चेन कब छिन जाय पता नहीं। प्रतिरोध का मतलब कुछ भी हो सकता है–सामूहिक बलात्कार अथवा तेज़ाब कौन जान सकता है ? हाँ इन प्रतिभाओं के घर की महिलायें सुरक्षित हैं। उनसे मत बोलिये। खून खराबा हो जायगा।

अभी कुछ दिन हुये हमारे भीड़ भरे इलाके में तीन चार लोगों ने एक निरपराध व्यक्ति को लोहे की छड़ों से और चाकुओं से गोद गोद कर मार डाला। वह चिल्लाता रहा। लोग मुंह फेर कर चले गये। कौन आफ़त में फंसे?

यह तो संगीन अपराधों की कहानी है। विश्व विद्यालयों और कालिजों की अपनी समस्यायें मुंह बाये खड़ी है । कोई ऐसा विद्यालय नहीं जहां पुलिस का पहरा या कैम्प स्थायी रूप से न पड़ा हो। फिर भी कत्ल तक हो जाते हैं। हड़ताल और रैली हमारी दिनचर्या का अविभाज्य अंग बन गयी है। कभी विद्यार्थी, कभी प्रोफेसर, कभी डाक्टर कभी वकील कभी कर्मचारी और कभी पुलिसकर्मी हड़ताल पर होते हैं। कभी चक्का जाम, कभी बिजली बंद कभी, न्यायालय बंद, कभी पानी बंद। हम सब वरदाश्त करते रहते हैं। कभी किसी ने सोचा है कि यदि जनता ने विद्रोह कर दिया तो क्या होगा ? परन्तु हम सभ्य हिन्दू देश है। इस का कोई खतरा नहीं है।

५० वर्ष की स्वतंत्रता के जशन तो शासन ने खूब मनाये परन्तु क्या हमारे शासकों ने मिल बैठकर ईमानदारी से देश की बिगड़ती इस व्यवस्था पर भी घंटे दो घंटे विचार किया ? उसका एक मत होकर कोई समाधान निकाल कर कार्यान्वित किया ? यह कैसा शासन है ?

नैतिक पतन को प्राप्त कोई भी समाज केवल राजनीतिक स्वतंत्रता के बल पर उन्नति नहीं कर सकता। दयानन्द की आज यही प्रासंगिकता है। दयानन्द कभी विदेश नहीं गये। अंग्रेजी नहीं पढ़ी। संस्कृत और गुजराती ही उनको आती थी। फिर

हिन्दी को राष्ट्र भाषा का दर्जा देकर उसे पढ़ा और उसी में लिखा। उन्होंने विदेशों से अध्यात्म सीखने की आवश्यकता ही नहीं समझी क्योंकि उन्होंने अपना खोया हुआ कोष वेदों में पा लिया था। इसलिये उन्होंने कहा "वापिस चलो वेदों की ओर"।

भारत के सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक राजनीतिज्ञ कौटिल्य ने अपने से अनेक पुराने आचार्यों का संदर्भ देते हुए शासकों की अनिवार्य अर्हता **(Minimum Qualification)** निर्धारित की थी।

(१) वेद ज्ञान का ज्ञाता होना (२) कृषि विज्ञान का ज्ञाता होना ।

(३) स्वास्थ्य विज्ञान का ज्ञाता होना (४) दण्ड विज्ञान का ज्ञाता होना।

शासन तंत्र चाहे नृप तंत्र हो अथवा प्रजातंत्र, वयस्क मताधिकार अथवा राष्ट्रपति शासन। कोई भी तंत्र सफल नहीं होगा यदि उसको चलाने वाले लोग ईमानदार और अपने कार्य संबन्धित विज्ञान से परिचित न हों। लोग इस ज्ञान को माता के पेट से लेकर जन्म नहीं लेते। माता पिता और विद्यालयों द्वारा उनका समझ बूझकर, कष्ट उठा कर त्याग द्वारा निर्माण किया जाता है। इसलिये दयानन्द की मैगनम कारपस (मुख्य कृति) सत्यार्थ प्रकाश के लगभग ४०० पृष्ठों में लगभग १०० पृष्ठ जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में शिक्षा विषय पर हैं। राजधर्म पर २५ पृष्ठ और भारत में प्रचलित मतों में अंधविश्वासों की समीक्षा पर २२० पृष्ठ हैं। वैदिक अध्यात्म पर केवल ६१ पृष्ठ हैं। नैतिकता और सांसारिक जीवन का तालमेल दिखाते हुए दयानन्द वेदों का केवल एक मन्त्र प्रस्तुत करते हैं।

ईशावास्यमिदं सर्व यत्किन्चजगत्यान्जगत्
तेन त्यक्तेन भुन्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् (यजु० ४०:१)

यह सब जो कुछ पृथ्वी पर चराचर वस्तु हैं वह सब ईश्वर से आच्छादित हैं। इसी प्रकार के जो पदार्थ तुझे प्राप्त हैं उनका भोगकर। किसी के भी पराये धन का लालच मत कर।

यदि हमारे जीवन की प्रारम्भिक शिक्षा से यह भाव मन में बैठ जाय तो फिर चोरी कौन करेगा ? दुष्कर्म कहाँ करेगा ?

कौटिल्य ने भी भारत की भ्रष्ट राजनीतिक अव्यवस्था को सही मार्ग पर लाने के लिये गुरुकुल से ही अपनी ध्येय प्राप्ति की यात्रा प्रारम्भ की थी। इतिहास केवल एक चन्द्रगुप्त को जानता है। परन्तु क्या चन्द्रगुप्त का विशाल साम्राज्य अकेला चन्द्रगुप्त चला सकता था ? पता नहीं इस महत कार्य के लिये कौटिल्य ने कितने सहस्र चन्द्रगुप्त निर्माण किये होंगे और उनको क्या क्या ज़िम्मेदारी सौंपी होगी ? भारत का दुर्भाग्य है कि आज उसके पास कोई कौटिल्य नहीं है। कोई दयानन्द नहीं है। कोई उनका जैसा शिक्षाविद भी नहीं है। दयानन्द का शिष्य श्रद्धानन्द भी नहीं है। परन्तु वह अपनी पुस्तकों में जीवित हैं। **यदि भारत की**

दुर्व्यवस्थता को सही मार्ग पर लाना है तो हमें उनके पथ प्रदर्शन में सबसे पहले अपनी शिक्षा को सुधारना होगा। पश्चिम का अंधानुकरण कर हम अपनी शिक्षा प्रणाली को विकृत कर रहे हैं। कठोर अनुशासन, कर्मठता, देश निष्ठा को न सीख कर मुक्त यौनाचार, ब्यूटी शो और जुर्म की संस्कृति को बढ़ावा दे रहे हैं। कंवारी माताओं, १२–१४ वर्ष की गर्भवती कन्याओं, तलाकों और टूटते हुये परिवारों के जिस तूफान से अमेरिका त्रस्त है वह सिलसिला भारत में प्रारम्भ हो चुका है। यह एड्स से भी भयंकर सिद्ध होगा। जैसा दयानन्द ने प्रयास किया था हमें पश्चिम के विज्ञान और कारीगरी की आवश्यकता है बाइबिल की नहीं। न उसके विद्वान मिशनरी पादरियों की क्योंकि उनके पास से लेने योग्य जो कुछ है वह सब कुछ वेदों में है और जो वेदों के विरुद्ध है वह उनके लिये भी सुख शान्ति दायक नहीं है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है इसलिये शासक वर्ग को कृषि विज्ञान का अच्छा ज्ञान होना चाहिये। कृषि विभाग के प्रशासकों को रबी, खरीफ और जायद की फसलों, उनकी पानी और खाद की आवश्यकताओं, बीमारियों का भी ज्ञान न हों और ऊपर से वह भ्रष्ट भी हो तो फिर इस कृषि प्रधान देश का क्या होगा ?

उपरोक्त सभी बाते स्वास्थ्य पर भी लागू होती हैं। क्या आज देश में कोई स्वास्थ्य सेवा है ? बिना बताये, चुपचाप, बिना अपने पद को प्रकट करे किसी रोगी को सरकारी अस्पताल में स्वयं मंत्री जी भरती करायें और उसके स्वस्थ हो जाने तक उस पर नजर रखे तो उन्हें पता लगेगा कि उनका विभाग किस प्रकार चल रहा है। परन्तु यदि सभी लूट में शामिल हों तो क्या किया जा सकता है ? कौटिल्य ने कहा है शासकीय अधिकारी उस मछली की भाँति है जो सदैव जल में रहती हुई पानी कब पी लेती है यह पता ही नहीं लगता।

इन समस्याओं का एक ही इलाज कौटिल्य भी बताते हैं। मनु और दयानन्द भी। वह इलाज है दण्ड। कौटिल्य ने अपने अर्थ शास्त्र में कहा है कि अकेले दण्ड विज्ञान से राज्य का सफल संचालन किया जा सकता है ऐसा भी कुछ आचार्य मानते हैं। परन्तु कौटिल्य ऐसा नहीं मानते। यह ठीक भी है अन्यथा ऐसा तंत्र अलाउद्दीन खिलजी जैसे अत्याचारी परन्तु सफल शासकों को जन्म देगा।

वैदिक दण्ड व्यवस्था में एक अनूठी बात है जो कदाचित किसी दूसरी सभ्यता में नहीं रही। वह यह प्राविधान है कि दण्ड की मात्रा अपराधी की शैक्षिक योग्यता, समाज में उसके स्थान और पद के साथ–साथ बढ़ती घटती है। यदि अपराधी शिक्षित है, प्रतिष्ठित है और शासन में ऊँचे पद वाला है तो उसको अधिकतम और अशिक्षित, तिरस्कृत, दरिद्र व्यक्ति को न्यूनतम दण्ड की व्यवस्था है। इसका औचित्य स्पष्ट है। दयानन्द मनु का संदर्भ देकर इस बात पर बल देते हैं कि दण्ड दोषी को ही दिया जाना चाहिये। निर्दोष व्यक्ति को दण्ड देने वाले शासक को

दण्ड नष्ट कर देता है।

अपराधी को बड़ी सुविधा है। वह अपने अपराध का क्षेत्र, स्थान, दिन और रामय अपनी सुविधानुसार चुन सकता है। शासन प्रत्येक व्यक्ति को अथवा प्रत्येक परिवार अथवा गाँव या मोहल्ले को भी समुचित सुरक्षा सब दिन और सब समय नहीं दे सकता। सहस्रों मील लंबी रेल की पटरियां, लाखों मील लंबे टेलीफोन और बिजली के तार, दूरस्थ स्थानों पर बिखरे बैंक, डाकखाने, अस्पताल किस प्रकार सुरक्षित किये जा सकते हैं ? स्कूल जाते करोड़ो बच्चों की अपहरण से अथवा बलात्कार से सुरक्षा कैसे की जा सकती है ?

उसके लिये दयानन्द मनु को उद्धृत करते हुये कहते हैं: "जब सब सोते हैं तब दण्ड जागता है। इसलिये अनेक आचार्य दण्ड को ही धर्म कहते हैं।" जब दुर्व्यवस्था चरम अवस्था को पहुंच जाती है तब दण्ड को रुद्र अवतार लेना पड़ता है। अंग्रेजों के आने से पहले भारत का हाल आज से भी बुरा था। पग पग पर चोर, डाकू, ठग, पिडारियों के सहस्रों दल जल मार्गों, सड़कों पर और ग्रामों और शहरों में लोगों को लूटते, कत्ल करते, घर जलाते, अपहरण करते घूमते थे। अंग्रेजों ने पक्के कानून बनाये। इस प्रकार के अपराधियों को सरे आम तोपों से उड़वा कर पेड़ों से लटकाकर और छोटे अपराधियों को सार्वजनिक स्थलों पर कोड़े लगवा कर अथवा फाँसी लगवा कर अमन चैन स्थापित करने में उन्हें ५० वर्ष से अधिक समय लगा। उसको फिर लगभग उसी स्थिति में वापिस लाने में हम भी ५० वर्ष में कामयाब हो गये हैं। इस दुर्व्यवस्था से निपटने के लिए देश को सहस्रों चन्द्रगुप्त की आवश्यकता है। उनके निर्माण के लिये हमें एक कौटिल्य अथवा दयानन्द चाहिए। और चाहिये कठोर दण्ड व्यवस्था।

सन्दर्भ

१. सत्यार्थ प्रकाश
२. पं० लेखराम कृत महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र।
३. महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा तीन बार में कहा और लिखाया गया अपना जन्म चरित्र – सम्पादक आदित्य पाल सिंह आर्य और डा० वेदव्रत आलोक।
४. स्वामी सत्यानन्द द्वारा लिखित श्री मद दयानन्द प्रकाश।
५. स्वामी दयानन्द कृत ऋग्वेदादि भूमिका।
६. मैकस मूलर व्हाट कैन इंडिया टीच अस।
७. जैक्सन : बियॉड द वैली।
८. अली मियाँ : इंडियन मुस्लिम्स।
९. मनुस्मृति।
१०. श्री अरविन्द : बंकिम, तिलक, दयानन्द।
११. मेहता जैमिनी (स्वामी ज्ञानानंद सरस्वती) जगद्गुरु दयानन्द का संसार पर जादू।
१२. स्वामी वेदानन्द तीर्थ : सत्यार्थ प्रकाश का प्रभाव।
१३. स्वामी विद्यानन्द सरस्वती : बागी दयानन्द।
१४. सत्यकेतु विद्यालंकार : आर्य समाज का इतिहास संपूर्ण ६ भाग।
१५. डा० ताराचंद : हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम स्ट्रगिल इन इंडिया
१६. सत्यार्थ प्रकाश हाली इत्यादि के संदर्भ।

स्वामी विवेकानन्द

प्रारम्भिक जीवन –

स्वामी विवेकानन्द का जन्म का नाम नरेन्द्र नाथ दत्त था। प्यार से लोग उनको केवल नरेन्द्र कह कर बुलाते थे। उनके पिता विश्वनाथ कलकत्ता हाईकोर्ट में वकालत करते थे और अंग्रेजी तथा फ़ारसी साहित्य के अच्छे विद्वान थे। वह अपने मित्रों को बहुधा बाइबिल और हाफ़िज़ की कविता पढ़कर सुनाया करते थे। **उनका विश्वास था कि इन दोनों में जीवन की जो सत्यता और गहराई पायी जाती है वह मानव चिन्तन में कहीं दूसरी जगह नहीं पायी जाती है। उत्तरी पश्चिमी भारत के मुसलमानों से विशेष सम्पर्क होने के कारण इस्लामी संस्कृति की ओर उनका विशेष झुकाव था।** अपनी वकालत से प्राप्त होने वाली प्रचुर आय के कारण वे सांसारिक जीवन का पूरा आनन्द उठाने में विश्वास करते थे। वह खाने पीने के शौकीन थे और घूमना फिरना उनका दूसरा व्यसन था। वह भौतिक संसार के अतिरिक्त ईश्वर आत्मा इत्यादि विषयों को अज्ञेय समझते थे और उन पर विचार करना निरर्थक। इस वर्णन से विवेकानन्द के पिता का जो चित्र हमारे सामने उभरता है वह एक सफल वकील का है, जिसने अंग्रेजी रहन सहन बाइबिल और हाफ़िज़ को जीवन की अंतिम सत्यता स्वीकार कर लिया था। स्पष्ट है कि उन्होंने उपनिषदों का अध्ययन नहीं किया था अथवा बाइबिल और हाफ़िज़ की तुलना में वह उन्हें श्रेष्ठ नहीं लगते थे। अंग्रेजी भाषा का ज्ञान और वक्तृता नरेन्द्र को उनके वकील पिता से विरासत में मिली थी।

उनकी माता भुवनेश्वरी देवी पुरातन हिन्दू संस्कारों में पली थीं। रामायण और महाभारत उनके प्रिय ग्रन्थ थे और उनके काफी भाग उनको कंठस्थ हो गये थे। वह दयावान थीं और अपने जानने वालों में आदर की पात्र थीं। स्वभाव से वह शान्त प्रकृति की थीं और अपने काम से काम रखती थीं। नरेन्द्र नाथ के अतिरिक्त उनके दो पुत्र और चार पुत्रियां और हुई थीं जिनमें से दो पुत्रियों की कम आयु में ही मृत्यु हो गयी थी।

बचपन से ही नरेन्द्र नाथ को सन्यासियों में दिलचस्पी थी। कोई भी सन्यासी उनके दरवाजे से खाली हाथ नहीं लौटता था। बचपन में उनकी माता ने उनको बंगाली वर्णमाला, अंग्रेजी के प्रथम शब्द और रामायण महाभारत की कुछ कहानियां याद करा दी थीं। उस नन्हीं आयु में ही नरेन्द्र उन हिन्दू देवी देवताओं को प्रेम और आदर करने लगे थे जिनकी पूजा उनकी माता द्वारा की जाती थी। राम और सीता की कहानी उसको बहुत पसन्द थी।

१८७६ ई० में नरेन्द्र ने प्रथम श्रेणी में हाई स्कूल पास किया। इस समय तक वह बंगाली और हिन्दी का काफ़ी साहित्य पढ़ चुके थे। इतिहास उनका प्रिय विषय था।

उनकी स्मरण शक्ति अद्भुत थी और वह किसी पुस्तक के प्रथम और अन्तिम पैराग्राफ पढ़कर उस पुस्तक के विषय को समझ जाते थे।

हाईस्कूल पास करने के बाद उन्होंने प्रेज़ीडेन्सी कालेज, कलकत्ता में प्रवेश ले लिया। एक साल के बाद उन्होंने जनरल असेम्बलीज इन्सटीच्यूशन में जिसकी स्थापना स्काटिश जनरल मिशनरी बोर्ड ने की थी, प्रवेश ले लिया। यह संस्था बाद में स्काटिश चर्च कालेज कहलायी। इस संस्था के अंग्रेजी के प्रोफेसर और प्रिन्सिपल हेस्टी से उन्होंने पहली बार श्री रामकृष्ण का नाम सुना।

कालेज के प्रथम दो वर्षो में उन्होंने पश्चिमी दर्शन और यूरोपियन राष्ट्रों का इतिहास पढ़ा। अंग्रेजों के ग्रीन द्वारा लिखित इतिहास को याद करने में उन्हें केवल तीन दिन लगे। इसी समय के आस पास उनका श्री रामकृष्ण से भी परिचय हुआ और उनके मन में धार्मिक जिज्ञासाओं ने जन्म लिया।

उस समय बंगाल में ब्रह्मोसमाज का बहुत प्रचार था, जिसकी स्थापना राजा राम मोहन राय (१७७४–१८३३) द्वारा की गयी थी। इस संस्था ने मूर्ति पूजा, कर्मकाण्ड और पुजारियों जैसी रूढ़िवादी हिन्दू धर्म की रीतियों को त्याग दिया था। वह निराकार ईश्वर की पूजा पर बल देते थे।

राजा राम मोहन राय के पश्चात ब्रह्मो समाज के मुख्य नेता देवेन्द्र नाथ टैगोर (१८१७–१९०५) उपनिषदों के बहुत भक्त थे। दूसरे नेता केशव चन्दर सेन (१८३८–१८८४) का झुकाव ईसाई मत के सिद्धान्तों और कर्मकाण्ड की ओर था। इन नेताओं के प्रभाव के कारण ब्रह्मोसमाज में मूर्ति पूजा एकदम समाप्त हो गई **किन्तु पूजा पद्धति के अतिरिक्त ब्रह्मोसमाज एक सुधारवादी आन्दोलन भी हो गया और उसने अपना पूरा बल स्त्रियों के उद्धार के लिये लगा दिया। सती प्रथा का उन्मूलन, विधवा विवाह और कम आयु की शादियों का बहिष्कार, ब्रह्मोसमाज का मुख्य कार्यक्रम बन गया।** नरेन्द्र भी इसी समाज के सदस्य बनकर अपनी आत्मा की शान्ति खोजने लगे, परन्तु वह शान्ति उन्हें इस सुधारवादी आन्दोलन में दिखाई नहीं दी।

इसी समय उनके विवाह का प्रस्ताव चला परन्तु उस ओर उनकी कोई रुचि नहीं थी और उन्होंने मन ही मन सन्यासी होने का मन बना लिया था। **कुछ ही समय के बाद नरेन्द्र का मन ब्रह्मोसमाज की प्रार्थनाओं और संगीत सभाओं से ऊबने लगा। वह तो सचमुच में ईश्वर दर्शन और ईश्वर प्राप्ति करना चाहते थे।** इस विषय में उन्होंने जब देवेन्द्रनाथ से बात की तब उन्होंने नरेन्द्र को रामकृष्ण परमहंस के पास जाने का सुझाव दिया जिनके विषय में वह पहले ही प्रोफेसर हेस्टी से सुन चुके थे। और नरेन्द्र श्री रामकृष्ण के पास पहली बार नवम्बर १८८१ में पहुंचे।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस –

विवेकानन्द के आध्यात्मिक गुरु श्री रामकृष्ण परमहंस उन सन्तों में से थे जिन्होंने अपनी साधना से उच्च आध्यात्मिकता प्राप्त की थी। विद्वता के नाम पर वह नितांत निरक्षर थे और उन्होंने जो कुछ भी सीखा था वह अपने संसर्ग में आने वाले सन्यासियों और भक्तिपूर्ण गीतों से सीखा था। कहा जाता है कि ६ वर्ष की आयु में ही उनको समाधि जैसी अवस्था प्राप्त हो गयी थी। १६ वर्ष की आयु में वह अपने भाई के पास कलकत्ता आ गये किन्तु वहां भी उन्होंने पढ़ाई लिखाई में कोई रुचि नहीं ली। ईश्वर साक्षात्कार की उनको तीव्र इच्छा थी।

दक्षिणेश्वर के काली मन्दिर में उनको पुजारी का स्थान मिल गया। वहां पर नित्य ही काली पूजा होती थी। रामकृष्ण बड़ा मन लगाकर भक्ति के गीत गाया करते थे और उस भक्ति में विह्वल हो जाते थे। कहा जाता है कि जब उनको माता के दर्शन होते थे तो वह चेतनाशून्य होकर फर्श पर गिर पड़ते थे। यह भी कहा जाता है कि उन्होंने अनेक मतानुसार ईश्वर पूजा की थी और थोड़े ही समय में वह उनमें सिद्धहस्त हो गये थे। इनमें तंत्र साधना, वैष्णव साधना, ईसाई साधना और इस्लाम साधना भी थी। कहा जाता है कि इस्लाम की साधना करते समय उन्हें गौ मांस खाने की तीव्र इच्छा हुई। उन्होंने कुत्ते के शरीर में प्रवेश कर एक मृत गौ का मांस खाया। उन्हें इस साधना में मोहम्मद साहब के दर्शन होना भी बताया जाता है।

इन विभिन्न मतों की साधना द्वारा उन्हें निश्चय हो गया था कि यह सभी मत अनेक मार्गों से चलकर एक ही बिन्दु पर ले जाते हैं। उनको यह भी विश्वास हो गया था कि पृथ्वी पर उनका अवतरण इसी ध्येय से हुआ है कि वह एक नये धार्मिक संगठन की नींव डालें जो उन सभी धर्मों पर आधारित हो जिनकी साधना वह कर चुके थे।

जन्मजात हिन्दू को रामकृष्ण की इन कथाओं में कुछ भी अस्वाभाविक नहीं लगता। परन्तु वास्तविकता के कठोर तल पर उनका आध्यात्मिक अनुभव अत्यन्त भावुकतापूर्ण परन्तु अव्यवहारिक लगता है।

इस्लाम में पशु बलि अनिवार्य धार्मिक कर्तव्य है, जैन मत में वह घोर पाप है। इस्लाम में मूर्ति पूजा से जघन्य कोई पाप नहीं। निस्सन्देह अल्लाह इसको क्षमा नहीं करेगा कि उसका कोई सहभागी ठहराया जाय और इसके सिवा जो कुछ (दूसरा पाप) है उसे जिसके लिये चाहेगा क्षमा कर देगा। और जो कोई अल्लाह का सहभागी ठहराये उसने बहुत बड़ा गुनाह गढ़ा। (कुरान ४:४८)

.....यदि तुमने शिर्क किया (अल्लाह के स्थान पर अथवा उसके साथ किसी दूसरे की उपासना की) तो तुम्हारा किया धरा अकारथ जायेगा और निश्चय ही तुम घाटा उठाने वालों में से हो जाओगे। (कुरान ३६:६५)

माता–पिता, भाई–बन्धु मित्र इत्यादि भी यदि वे मूर्ति पूजक हों तो त्याज्य हैं।

ए ईमान वालों अपने बापों और अपने भाइयों को अपना मित्र न बनाओ यदि वे ईमान की अपेक्षा कुफ्र (मूर्ति पूजा) को पसंद करें और तुममें से जो कोई उनसे मित्रता का नाता जोड़ेगा तो ऐसे ही लोग ज़ालिम होंगे। (कुरान ६:२३)

हे ईमान वालों ! ईमान वालों के मुकाबले में काफिरों को मित्र न बनाओ. .....(कुरान ४:१४४)

सय्यद कुत्व सत्य ही कहते हैं एक मुसलमान के माता पिता भाई पत्नी और कबीले के लोग उसके रिश्तेदार नहीं है जब तक कि उनकी प्राथमिक रिश्तेदारी अल्लाह से न हो। अर्थात वह मुसलमान न हों।

मोहम्मद साहब को अपनी मूर्ति पूजक माता की कब्र पर उनके लिये प्रार्थना करने की अनुमति भी अल्लाह द्वारा नहीं दी गयी थी।

नबी के लिये और ईमान वालों के लिये उचित नहीं है कि वे मूर्ति पूजकों के लिये क्षमा की प्रार्थना करें चाहे वे उनके नातेदार ही क्यों न हों .... (कुरान ६:११३)

अबू हुरैरा से हदीस है कि पैगम्बर ने कहा था "मैंने अल्लाह से अनुमति मांगी थी कि मैं अपनी माता के लिये क्षमा प्रार्थना करूँ किन्तु उसकी इजाजत मुझे नहीं मिली। (फिर) मैंने अल्लाह से उनकी कब्र पर जाने की अनुमति मांगी और वह मुझे मिल गई। (सही मुस्लिम २१२६)

शहंशाह अकबर के मृत शरीर पर नमाज़ पढ़ने से शाही काजी ने इसलिये इन्कार कर दिया था कि उसने मरते समय कलमा (इस्लाम का अनिवार्य वाक्य)पढ़ने से मना कर दिया था। जवाहर लाल नेहरू के मृत शरीर पर कुरान पाठ करते समय जो मुस्लिम नेता मौजूद थे उनको एक फतवे द्वारा कुरान को अपमानित करने का दोषी माना गया था।

कुरान में लगभग ६० आयतें है जो इस्लाम में विश्वास न करने वालों और मूर्ति पूजकों की कठोर भर्त्सना करती हैं। लखनऊ के विख्यात मदरसे के सर्वेसर्वा अली मियां के अनुसार एक धर्मनिष्ठ मुसलमान के लिये इस्लाम से प्रेम करना ही पर्याप्त नहीं है **उसे गैर इस्लाम से घृणा करना भी आवश्यक है।**

ऐसी विपरीत प्रकृति वाले दो मतों को एक ही बिन्दु पर ले जाने वाला सिद्ध करने वाले रामकृष्ण परमहंस की साधना पर विश्वास करना कठिन है। मुस्लिम विद्वानों का स्पष्ट मत तो यह है कि ऐसा कहने वाला व्यक्ति मृत्युदण्ड का भागी है। मुस्लिम काल में केवल यह कहने मात्र से कि इस्लाम सच्चा है और फिर इस्लाम ग्रहण करने से इन्कार करने पर अथवा इस्लाम और हिन्दू मत दोनों को समान रूप से सत्य कहने पर अनेक लोगों को मृत्यु दण्ड दिया गया था।

रामकृष्ण के भक्तों द्वारा प्रचारित उनके इस प्रकार के भ्रमोत्पादक विश्वासों और अपने पारिवारिक पाश्चात्य संस्कारों का प्रभाव विवेकानन्द के जीवन पर स्पष्ट दिखायी देता है। उसकी विस्तृत विवेचना करते समय हम आगे चलकर देखेंगे कि स्वामी विवेकानन्द की समय समय पर परस्पर विरोधी बातों का मूल कारण उनका यह द्विगुणात्मक व्यक्तित्व ही है।

जीवन लक्ष्य का निर्धारण –

विवेकानन्द अपने सार्वजनिक जीवन का उद्देश्य निश्चित करते हैं: कन्याकुमारी के पास समुद्र के बीच एक चट्टान पर बैठकर। वह भारत के करोड़ों निर्धन भूखे, नंगे देशवासियों के कष्टों से द्रवित हो जाते हैं। उसको दूर करने के लिये वह पश्चिमी देशों, विशेषकर अमेरिका में जाकर अपने वेदान्त ज्ञान के बदले में विज्ञान और प्राविधिकी लाकर उन कष्टों को दूर करने का निश्चय करते हैं। उद्देश्य की प्राप्ति प्रारम्भ होती है शिकागो शहर में जाकर पार्लियामेन्ट ऑफ रिलीजन्स को अपने अब विश्वविख्यात "मेरे अमेरिकन भाइयों और बहनों" सम्बोधन से। पार्लियामेन्ट में उपस्थित सभी लोग इस सुदर्शन युवा, गेरुवे वस्त्रधारी सन्यासी के इन अद्भुत वाक्यों को सुनकर खड़े होकर और ताली बजाकर उनका स्वागत करते हैं। आगे का इतिहास सभी को मालूम है।

विवेकानन्द अपना दूसरा जीवनोद्देश्य बताते हैं एक ऐसा भारत जिसका मस्तिष्क वेदान्त का हो और शरीर इस्लाम का।

एक विदेशी विद्वान कहते हैं कि भारत के इस्लामीकरण का इससे बेहतर तरीका नहीं हो सकता। हिन्दू मस्तिष्क भारत में इस्लाम के बढ़ते चरणों को एटमबम, सैटेलाइट, मिसाइल बनाकर बल देने के लिये और उसकी बाहुओं को भारत में बचे खुचे हिन्दू पन को पीछे ढकेल कर इस्लामी धर्म संस्कृति और राज्य स्थापित करने के लिये बलशाली बना कर (B.J.P. visa-vis Hindu Resurgence by Keonraad Elst, p-84 - Voice of India, Delhi)

स्वामी विवेकानन्द के विचार समय समय पर काफी बदलते रहे हैं। फिर भी अमेरिका जाने से पहले अपने एक मित्र को लिखे गये पत्र से उनकी उस समय की मनोस्थिति का कुछ आभास होता है : "मान लो कुछ निष्काम सन्यासियों का ऐसा वर्ग तैयार हो जाय जो **अछूतों से लेकर उच्च वर्ण तक के बच्चों को शिक्षा देते और उनकी दशा सुधारते गांव गांव घूमे–और यह शिक्षा कोई पोथियों की शिक्षा न होकर नक्शों, मैजिक लैनटर्न, ग्लोब इत्यादि द्वारा मौखिक रूप से दी जाय तो क्या उसका अच्छा प्रभाव नहीं पड़ेगा ? दरिद्र तो स्कूल जाने में भी सक्षम नहीं हैं। हमें स्कूल को उनके पास ले जाना पड़ेगा।** उन्हें कविता पाठ सिखाने से कुछ नहीं होगा-हमारे राष्ट्र ने अपना आत्माभिमान खो दिया है। जनसाधारण को जगाकर ही वह वापिस लाया जा सकेगा।"

यदि स्वामी विवेकानन्द ने अथवा उनके द्वारा स्थापित रामकृष्ण मिशन और उसके सन्यासियों ने हिन्दुओं की सुशिक्षा के इस प्रोग्राम को किंचित भी कार्यान्वित किया होता या उसका प्रयास भी किया होता तो यह उनकी बड़ी भारी उपलब्धि होती। परन्तु अमेरिका और विदेशों में अपनी ख्याति प्राप्त होने पर हम उनका इस कार्य की ओर कोई भी ध्यान आकृष्ट होते नहीं पाते, न उनके अनुयाइयों का।

इस कार्य के लिये धन कैसे जुटाया जाय इस पर विचार करने से उनके सामने धनाढ्य और उदार अमेरिका का चित्र घूम गया जहाँ से अतुल दान राशि प्राप्त हो सकती थी। वहाँ के लोग जाति पाँति के विचारों से मुक्त थे। वह अमेरिका के जिज्ञासु लोगों में भारत के पुरातन ज्ञान प्रसार के बदले में विज्ञान और प्राविधिकी लाकर न केवल विदेशों में भारत के प्रति सम्मान उत्पन्न करेंगे अपितु अपने लोगों में भी आत्म बल की उन्नति करेंगे।

स्वामी विवेकानन्द निश्चय ही विदेशों में वेदान्त के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न करने में सफल रहे परन्तु वह इस विषय में भूल कर बैठे कि कूटनीति में पारंगत अमेरिका अथवा दूसरे ईसाई देश भारतवासियों को ईसाई बनाने के कार्यक्रम से विमुख होकर स्वयं वेदांत दर्शन को स्वीकार करेंगे। वेदांत के प्रति उनकी जिज्ञासा केवल जिज्ञासा तथा मौलिक उपयोगिता तक ही सीमित रही। **उन्होंने भारत वर्ष में हिन्दुओं के ईसाई मत में धर्मान्तरण करने के मिशनरी प्रोग्राम में किसी प्रकार की कोताही नहीं होने दी।** जहां तक ग्रामवासियों में शिक्षा के प्रसार कार्य के लिये सन्यासी वर्ग का निर्माण था उनका यह कार्यक्रम देश विदेश में रामकृष्ण मठ बनाने और उनमें विलासपूर्ण जीवन बिताने वाले सन्यासियों तक सीमित रह गया। इन सन्यासियों का प्रचार कार्य भी उच्च वर्ग के लोगों में वेदान्त प्रचार के बौद्धिक प्रवचन तक सीमित रहा। रामकृष्ण मिशन ने अस्पताल तो चलाये परन्तु ग्रामवासी जनसाधारण में ज्ञान प्रसार का जो स्वप्न विवेकानन्द ने देखा था उसके कार्यान्वयन का प्रारम्भ तक नहीं हो पाया। इस प्रकार विवेकानन्द के कार्य का प्रभाव उच्च वर्ग के लोगों और जनसाधारण की रोगों में सेवा शुश्रुषा तक ही सीमित रहा।

पारस्परिक विपरीत मंतव्य –

'टीचिंग्स ऑफ स्वामी विवेकानन्द'' नामक पुस्तक के सम्पादक क्रिस्टोफर इशरबुड अपनी भूमिका में लिखते हैं : स्वामी विवेकानन्द परस्पर विरोधी बाते कहने में तनिक भी संकोच नहीं करते थे। वह बिना किसी तैयारी के आशु व्याख्यान देते थे। इन क्षणों में श्रोताओं और वातावरण के अनुसार ही उनकी वाणी फूट पड़ती थी। यह उनका स्वभाव था। वह इसकी किंचित भी चिन्ता नहीं करते थे कि वह आज जो कह रहे हैं वह कल उनके द्वारा कही गई बात के नितान्त विपरीत है।''

निस्संदेह उनके शब्दों ने सहस्रों व्यक्तियों को अंतः प्रेरणा दी है। उनके

जीवन को दिशा दी है। किन्तु वह हिन्दू समाज में न तो कोई सुधार ला सके न भारत की स्वतंत्रता में कोई योगदान दे सके। यद्यपि जनता में व्याप्त घोर दरिद्रता को देखकर वह द्रवित हो जाते थे और शक्ति भर उनको राहत पहुंचाने में सहायता भी करते थे परन्तु उनके परस्पर विरोधी चिंतनों के कारण वह वेदांत के आध्यात्मिक प्रचार और कुछ सेवा संस्थानों के गठन के अतिरिक्त देश और समाज को कोई ठोस कार्यक्रम नहीं दे सके। उनके चिंतन में संभ्रान्ति के कुछ स्पष्ट उदाहरण निम्नलिखित है :

गुरुढम –

उनका कहना थाः "किसी व्यक्ति विशेष में अत्यधिक विश्वास मानसिक कमजोरी और मूर्ति पूजा को जन्म देता है।"

किन्तु अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस के विषय में उनकी प्रशंसा उनको ईश्वरीय अवतार की श्रेणी में ला बिठाती है। "यद्यपि सहस्रों वर्षों से अनेक पैगम्बर हमारे बीच आते रहे हैं परन्तु उनमें से किसी का व्यक्तित्व भी इतना महान नहीं जितना रामकृष्ण परम हंस का है।

"हम निश्चय पूर्वक नहीं कह सकते कि राम और कृष्ण कभी वास्तविक व्यक्ति रहे हैं। किन्तु मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि रामकृष्ण परमहंस ईश्वर के अवतार हैं।"

रामकृष्ण की मृत्यु के समय का वर्णन करते हुये वह कहते हैं : (अंतिम क्षणों में गुरु जी के विस्तर के पास खड़े) मेरे मन में प्रश्न कौंधा : क्या स्वामी सचमुच ईश्वर के अवतार हैं ?" वह ध्यान पूर्वक परमहंस के मुख की ओर देखे जा रहे थे। धीरे धीरे उनके होठ हिले और उन्होंने साफ साफ़ शब्दों में कहाः "ओह मेरे नरेन! क्या तुम्हें अभी भी विश्वास नहीं होता ? समझ लो कि जो भूतकाल में राम और कृष्ण के रूप में पैदा हुआ था वही इस समय इस शरीर में रामकृष्ण के रूप में जन्मा है।"

वह (विवेकानन्द) फिर दोहराते हैंः "भगवान रामकृष्ण का अवतार इसलिये हुआ है कि वह संसार को दिखा सकें कि आर्यो का सत्य मत क्या है ?" और वह कैसे ? काली की पूजा द्वारा!

काली के विषय में डा० राधा कृष्णन के विचार : "प्राचीन संस्कृत साहित्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि काली अनार्यों की उपास्य देवी है। (आर्यों की नही) महाभारत के अनुसार उसे मदिरा, मांस और पशुबलि में आनन्द आता है। ७०० ई० में काली पूजन में मानव और पशु बलि के उदाहरण मिलते हैं। शुद्रमकलाकर (१५ वीं शताब्दी ई०) विंध्याचल में मिर्जापुर स्थित देवी के विषय में कहता है कि वह किरातों और दूसरी जंगली जातियों की देवी है जिसका पूजन मलेच्छ और ठग करते हैं।" **(हिन्दू वीव ऑफ लाइफ–पृ०–३३)**

मूर्ति पूजा

विवेकानन्द कठोर शब्दों में मूर्ति पूजा का विरोध करते हैं:

"ऊँचा हो या नीचा, सद्चरित्र हो अथवा दुश्चरित्र प्रत्येक व्यक्ति को सर्वशक्तिमान निराकार ईश्वर की ही पूजा करनी चाहिये। जो जन्मता है न मरता है। उसी की पूजा करो। सभी मूर्तियों को नष्ट कर दो। यदि तुम सुख प्राप्त करने के इच्छुक हो तो यह सब घंटे घड़ियाल गंगा में प्रवाहित कर दो (मंदिरों के) दरवाज़े खोलना और बंद करना, (मूर्तियों को) कई बार स्नान कराना, कपड़े पहनाना, भोग लगाना सब बकवास है। जबकि जीवित ठाकुर बाहर ठंडे में ठिठुर रहे हों इस प्रकार की पूजा केवल ढोंग है।"

उनका यह भी विचार है कि **"मूर्ति पूजा अर्ध विकसित मस्तिष्क के लोगों द्वारा आध्यात्मिक ऊंचाइयों को छूने का प्रयास है। हमारे शास्त्र कहते हैं कि वाह्य पूजा, पदार्थ पूजा अध्यात्म में ऊपर जाने वाले जीने की पहली सीढ़ी है।** मूर्तियां और मन्दिर आध्यात्मिक शैशवकाल की बैसाखियां मात्र हैं किन्तु उसे (साधक को) ऊपर और ऊपर उठते जाना चाहिये।"

किन्तु वास्तविकता क्या है ? पहली वास्तविकता यह है कि **सभी शास्त्रों के प्रमाण वेद ही हैं और वेद मूर्ति पूजा का स्पष्ट निषेध करते हैं। गीता में भगवान कृष्ण मूर्ति पूजा और जड़ पदार्थों की पूजा का निषेध करते हैं। दूसरे ग्रंथ यदि मूर्ति पूजा का विधान करते हों तो वह वेद विरुद्ध होने के कारण मान्य नहीं हो सकती।** मूर्ति पूजक जीवन भर मूर्ति पूजक ही बने रहते हैं। उनके लिये वही प्रथम और अंतिम सीढ़ी होती है। पहले उनके गुरू रामकृष्ण और बाद में स्वयं विवेकानन्द मृत्यु पर्यन्त मूर्ति पूजक बने रहें। "१५ अगस्त १८६६ को स्वामी (रामकृष्ण परम हंस) का कष्ट असह्य हो गया। .....१६ अगस्त की प्रातःकाल उन्होंने ज़ोर से तीन बार अपनी प्रिय काली के नाम का उच्चारण किया और शरीर छोड़ दिया।"

इससे तुलना करें महर्षि दयानन्द के अन्तकाल की : सारा शरीर छालों से ढका था। अपार कष्ट था। श्वास लेने और बोलने में कठिनाई अनुभव हो रही थी। ३० अक्टूबर १८८३ को दीपावली के दिन सायंकाल महर्षि ने भक्तों से पूछा : "कौन सा पक्ष, कौन सी तिथि, क्या वार है ?" उन्हें बताया गया कि कृष्ण पक्ष का अन्त, शुक्ल पक्ष का आदि, अमावस मंगलवार है। यह सुनकर महर्षि ने चारों ओर दृष्टिपात किया और भक्तों से कहा, "सब दरवाज़े, सब खिड़कियां खोल दो। सामने से सब लोग हट जांय" ऐसा ही किया गया। महर्षि ने आंख बन्द करके सस्वर वेद मंत्रों का पाठ किया। परमात्मा की स्तुति की। गायत्री मंत्र का पाठ किया। फिर तीन बार कहा : "प्रभु तेरी यही इच्छा है। तेरी इच्छा पूरी हो। तैने अच्छी लीला की।" पश्चात सीधे लेट गये। फिर करवट लेकर एक गहरी सांस लेकर बाहर फेंक दी। चेहरे पर

एक ज्योति उभरी और आत्मा प्रभु में विलीन हो गई।

स्वयं स्वामी विवेकानन्द जीवन पर्यन्त मूर्ति पूजक बने रहे। परन्तु उनका कहना था कि **ईश्वर अनादि निराकार और सर्व व्यापक है। यह विचार मात्र कि वह साकार है ईश्वर निन्दा का पाप है। ईश्वर (सर्वव्यापक होने के नाते) मूर्ति में भी है परन्तु मूर्ति ईश्वर है यह झूँठ है। परन्तु वास्तविक जीवन में वह मूर्ति को ईश्वर मानते रहे। अमरनाथ की तीर्थ यात्रा का उनका वर्णन देखें:**

गुफा के पिछले भाग में बर्फ की शिव प्रतिमा बनी थी। स्वामी (विवेकानन्द) ने गुफा में प्रवेश किया। उनकी पूर्ण देह भाव विह्वलता से कांप रही थी .....उन्होंने उस प्रतिमा के सामने साष्टांग प्रणाम किया। वह लगभग मूर्छित हो गये। **उन्हें साक्षात शिव के दर्शन हुये। उन्होंने कहा प्रतिमा साक्षात शिव थी।** (जबकि वह कह चुके हैं कि ईश्वर को साकार कहना ईश्वर निन्दा का पाप है) ....." मुझे इससे पूर्व इससे अधिक सुन्दरता के दर्शन नहीं हुये थे।"

विवेकानन्द अंतिम समय तक मूर्ति पूजा करते रहे। इससे क्या हम समझे कि अध्यात्म की पहली सीढ़ी से ऊपर जाने का उन्होंने कोई प्रयास नहीं किया अथवा उस प्रयास में सफल नहीं हुये ?

अपने निर्वाण के दिन ४ जुलाई १६०२ ई० को..... उन्होंने सब खिड़की और द्वार अंदर से बंद कर लिये। प्रातः ८ बजे से १२ बजे तक ध्यान स्थित रहे। **फिर काली की स्तुति में एक सुंदर गीत गाया**..... सायंकाल ७ बजे..... उन्होंने शिष्य को बुलाकर सब द्वार और खिड़कियां खुलवा दीं। फर्श पर एक घंटे बाई करवट शान्त लेटे रहे। एक घंटे के अंत में उन्होंने करवट ली। एक गहरा निश्वास निकला और प्राण पखेरू उड़ गये।

हमारे चारों शंकराचार्य और अधिकांश धर्माचार्य जीवन पर्यन्त मूर्ति पूजा करते रहते हैं। क्या वह भी अध्यात्म की निम्नतम् सीढ़ी पर ही संतोष प्राप्त कर लेते हैं ? नहीं। मूर्ति पूजा कोई सीढ़ी नहीं है। वह आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग न होकर घोर अवनति का मार्ग है जिसमें एक बार भटककर व्यक्ति जीवन भर भटकता रहता है।

आत्म संयम –

वैदिक मत में इन्द्रिय निगृह अध्यात्म की पहली शर्त है। धर्म के १० लक्षणों में मनु ने दमः और इन्द्रिय निग्रह २ लक्षण बताये है। गीता के १६ वें अध्याय में भगवान कृष्ण ने इन्द्रियों का दमन और प्राणी मात्र पर दया दैवी गुण बताये हैं। स्वामी विवेकानन्द इस विषय में अपनी घोर असफलता स्वीकार करते हैं। " ..... जब मैं मांस खाता हूँ तो मैं जानता हूँ कि मैं ठीक नहीं कर रहा हूँ। किन्तु मैं अपनी कमज़ोरी को सिद्धान्त के ऊपर स्थान नहीं दे सकता।"..... "कौन अस्वीकार कर

सकता है कि मांस खाना निश्चय ही बर्बरता है और शाकाहार ही सात्विक है। जो भी आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करना चाहते हैं उन्हें तो केवल शाकाहार ही करना चाहिए।"

इस्लाम और ईसाइयत के विषय में विवेकानन्द के विचार –

विवेकानन्द को इस विषय में भी हम उतना ही भ्रमित पाते है जितना अनेक दूसरे विषयों में। निम्नलिखित उद्धरणों से मालूम होता है कि वह इन मतों के मूलभूत सिद्धांतों से नितांत अनभिज्ञ थे। मोहम्मद साहब ने कहा है : मुझे लोगों से युद्ध करने का (अल्लाह से) आदेश हुआ है जब तक कि वह यह सत्यापित न करे कि सिवाय अल्लाह के दूसरा उपास्य नहीं है, यह स्वीकार न करें कि मैं अल्लाह का संदेश वाहक हूँ और उस सब में भी विश्वास न करने लगे जो मेरे द्वारा लाया गया है।" (सही मुस्लिम हदीस सं०–३१) "मुसलमान अल्लाह की पार्टी है और गैर मुसलमान शैतान की पार्टी है" (कुरान ५८:२२, १६) **"युद्ध करो उनसे जब तक कि मूर्ति पूजा समाप्त न हो जाय और केवल इस्लाम ही (सब विश्व में) स्थापित न हो जाय (कुरान ३:१६३) युद्ध तुम्हारे लिये अनिवार्य कर दिया गया है भले ही वह तुम्हें अरुचिकर हो (कुरान २:२१६)**

विवेकानन्द स्वीकार करते हैं : "इस्लाम मुसलमानों को उन सब को वध करने की अनुमति देता है जो उनके मत के नहीं है.....। मुसलमानों ने आकर हिन्दू भारतवासियों का कत्ले आम किया।

किन्तु यह सब कह कर विवेकानन्द कहते है : "मोहम्मद मानव भाई चारे और बराबरी के पैगम्बर थे।"

"इस्लाम में जनतंत्र और बराबरी पर विवेकानन्द मुग्ध थे। **उन्हें दृढ़ विश्वास हो गया था कि "बिना इस्लाम की सहायता के वेदान्त दर्शन चाहे वह कितना ही उत्कृष्ट क्यों न हो मानव समाज के लिये बिल्कुल बेकार हैं।"**

....."हमारी मातृ भूमि के लिये इन दो दर्शनों (इस्लाम और हिन्द धर्म)..... का संगम ही एक मात्र आशा है।" इन दो परस्पर विपरीत धाराओं का अल्लाह और शैतान की पार्टी का संगम किस प्रकार सम्भव है ? यह विवेकानन्द ने नहीं बताया – बता भी नहीं सकते थे क्योंकि यह असम्भव है। गाँधी भी जीवन भर इसके प्रयास करते रहे और अपनी असफलता के लिये कभी अपने को कभी आर्य समाज को और कभी मुस्लिम नेताओं को कोसते रहे। काश उन्होंने और विवेकानन्द ने कुरान और हदीस पढ़ी होती तो विभाजन होकर भारत के एक तिहाई भाग का इस्लामीकरण न होता और न दस लाख निर्दोष बच्चे, बूढ़े, स्त्रियां मारे जाते। (देखें लेखक की पुस्तक "भारत के इस्लामीकरण के चार चरण")

विवेकानन्द हिन्दुओं के धर्मान्तरण और उससे उत्पन्न होने वाले खतरे

से अपरिचित नहीं है। "प्रत्येक हिन्दू के (अपने धर्म के) बाहर जाने का अर्थ यह नहीं कि एक हिन्दू कम हो गया। उसका अर्थ है कि एक शत्रु और बढ़ गया।" परन्तु इस भयानक धर्मान्तरण को रोकने का न वह कोई उपाय सुझाते हैं न प्रयास करते हैं। उल्टे इन परस्पर शत्रु दर्शनो के संगम को ही देश की एक मात्र आशा बताते हैं।

अपने द्वारा संगठित रामकृष्ण मिशन के नियमों में वह कहते है: "इस का (रामकृष्ण मिशन का) ध्येय ".....भिन्न मतानुयाइयों में मित्रता की स्थापना करना है यह जानते हुये कि यह सभी मत एक ही अमर सनातन धर्म के अनेक रूप हैं।" उनका भी ध्येय था वही असंभव, असंगत, सर्वधर्म स्वरूपता और एकता।

फिर वही अव्यवहारिकता –

"यदि तुम्हें अपने धर्म के प्रति इतना ही प्रेम और आदर है जितना अपनी माता के लिये तो तुम किसी भी हिन्दू को ईसाई बनाना सहन नहीं कर सकते। फिर भी तुम प्रतिदिन यह होते देखते हो। कहाँ गया तुम्हारा विश्वास ? कहां गई तुम्हारी देश भक्ति ? प्रतिदिन मिशनरी तुम्हारे सामने हिन्दू धर्म की निन्दा करते हैं। गाली देते हैं। कितने हैं तुम में से जो उसके बचाव के लिये खड़े होते हैं। जिनको ऐसे लोगों पर सात्विक क्रोध आता है? जिनका रक्त उबाल खाता है ? किन्तु फिर वही ढाक के तीन पातः **"हमारे साथ उनका व्यवहार कितना ही पशुवत क्यों न हो उनकी भाषा कितनी ही गंदी क्यों न हो हम उनके लिये चर्चों और मस्जिदों का निर्माण करते रहेंगे।"**(विवेकानन्द इन इन्डिया)

दयानन्द आर्य समाज के दस नियमों में पांच नियम यह बताते है :

१ सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

२. सब काम धर्मानुसार अर्थात सत्य और असत्य को विचार करके करना चाहिए।

३. सब से प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथा योग्य अर्थात शत्रु से शत्रुवत तथा मित्र से मित्रवत शठे शाठ्यं समाचरेत) बर्तना चाहिये।

४. अविद्या का नाश ओर विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

५. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

अपने धर्मशास्त्रों के विषय में भी विवेकानन्द निश्चयमना नहीं है। वह कभी कुछ कहते हैं कभी कुछ।

"हिन्दू धर्म के मुख्य सिद्धांत वेदों के नैतिक, ध्यान संबंधी और दार्शनिक दर्शन पर टिके हैं।" "वेद तमाम विषयों में प्रत्येक काल और समय में अंतिम प्रमाण

हैं। यदि वेदों पुराणों स्मृतियों अथवा दूसरे शास्त्रों में मतभेद पाया जाय तो वेदों को प्रमाण मान कर उससे भिन्न कुछ भी मान्य नहीं हो सकता।" (सोसाइटी कल्चर एंड सोशलिज्म पृ०–१६)

"दूसरे शास्त्र समय के साथ साथ बदलते हैं परन्तु वेद नहीं बदलते" (डायलॉग विध स्वामी विवेकानन्द पृ०–६४)

"वेद सभी सत्य विद्याओं के आदि स्रोत हैं।"

और अब विवेकानन्द का एकदम विपरीत मत :

"मैं वेदों में से उतने को ही स्वीकार करता हूँ जितना बुद्धिगम्य है। वेदों के अनेक भाग एक दूसरे के विपरीत बोलते हैं।" (विवेकानन्द जी की कथायें पृ०–१२२)

"वेदों के अनेक मंत्र दैवी प्रेरणा से उत्पन्न नहीं माने जा सकते क्योंकि वह ऐसा कर्मकाण्ड निर्धारित करते हैं जिससे मानवता को हानि पहुंचे" (विवेकानन्द वार्तालाप पृ०–४७) वह कौन से मंत्र हैं ? एक बेबुनियाद वक्तव्य।

" कुछ वेद मंत्रों में हास्यास्पद कहानियां है" (विवेकानन्द इन इण्डिया पृ०–६५) फिर वही बात। पहले कही गई बात के विरीत।

परस्पर विरोधी बाते कहना स्वामी विवेकानन्द का स्वभाव था।

विवेकानन्द अंग्रेजी जानते थे। उसके वह उत्तम वक्ता थे। उन्होंने अपने समकालीन प्रचलित हिन्दू धर्म का ज्ञान फैलाने के लिये पश्चिमी देशों को अपना कार्य क्षेत्र चुना। उससे विदेशों में हिन्दू धर्म के प्रति लोगों की जिज्ञासा जागी। भारत का मस्तक ऊँचा हुआ। किन्तु विवेकानन्द समाज सुधारक नहीं थे। हिन्दू समाज में व्याप्त बुराइयों के उन्मूलन के लिये जिनके कारण वह सहज ही मुसलमान और ईसाइयों के दुष्प्रचार के शिकार होकर धर्मान्तरित हो रहे थे विवेकानन्द का कार्य लगभग शून्य ही रहा।

लम्बी गुलामी के फलस्वरूप हमारा स्वभाव बन गया है कि यदि कोई स्वदेशी विद्वान किसी बात को कहता है तो हम उसको तिरस्कृत कर देते हैं किन्तु जब वही बात किसी पश्चिमी विद्वान द्वारा हमारे सम्मुख लायी जाती है तो हम उसे न केवल स्वीकार कर लेते है अपितु अपने स्वदेशी विद्वान को उसका श्रेय न देकर उस पश्चिमी विद्वान की ही प्रशंसा करते हैं। दयानन्द संस्कृत के अपूर्व विद्वान थे। उसके अतिरिक्त दूसरी भाषा केवल गुजराती उन्हें आती थी। यद्यपि थियॉसाफ़िकल सोसाइटी के संस्थापक कर्नल आलकॉट तथा मैडम ब्लावटस्की ने उनसे अमेरिका आने का अनेक बार अनुरोध किया वह विवेकानन्द की भाँति विदेशों में प्रचार के लिये नहीं गये। न उन्होंने राजनीति का कार्य क्षेत्र चुना। उन्होंने अपना सम्पूर्ण ध्यान प्रचलित धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन में लगाकर सिद्ध किया कि सनातन वैदिक

धर्म ही तर्क और विज्ञान की कसौटी पर खरा उतरता है और इस कारण वही मानने योग्य है। उनका मिशन ही बन गया प्रचलित हिन्दू धर्म में स्वार्थी लोगों द्वारा मिलाई गई कुरीतियों और अन्ध विश्वासों को मिटा कर हिन्दू समाज को इतना बलशाली बना देना कि वह इस्लाम और ईसाई धर्मों से न केवल अपना बचाव कर सके, अपितु उनके मतानुयाइयों को भी सत्य क प्रकाश दिखाकर उनमें व्याप्त अंधविश्वासों को निर्मूल कर दें। ऐसा होने पर मत मतान्तरों के झगड़े स्वतः ही समाप्त हो जायेंगे।

दयानन्द के व्यक्तित्व में जहां लोकमान्य का संगठन और देश प्रेम है गाँधी का स्वराज्य प्रेम है, विवेकानन्द का ज्ञान और अध्यात्म है वहीं साथ ही साथ हिन्दू समाज में प्रचलित दुर्गुणों, अन्ध विश्वासों को दूर करने के लिये ओज और संकल्प भी है। वह गाँधी की तरह अंग्रेजी राज्य से छुटकारा पाने की घोषणा तो करते हैं किन्तु उसके लिये किसी का तुष्टीकरण न कर सबके साथ यथायोग्य व्यवहार करने का नियम निर्धारित करते हैं। सांप्रदायिकता के विष को मिटाने के लिये वह गाँधी की भाँति मुल्ला मौलवियों की खुशामद नहीं करते। अपने तथा दूसरों के मत को तर्क और विज्ञान की कसौटी पर परखने, सत्य को अपनाने और असत्य को त्यागने के लिये प्रेम पूर्वक पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर बैठने और विचार विमर्श करने का आह्वान करते हैं। हिन्दू समाज को धर्मान्तरण से बचाने के लिए वह अछूतों और दलितों को जो मुल्ला और पादरियों के धर्मान्तरण अभियान के लक्ष्य हैं राजनीतिक अधिकारों की बैशाखियां देकर उनका उत्थान करने की नहीं सोंचते अपितु उन्हें सवर्ण लोगों की भांति समान वेदाध्ययन तथा शिक्षा का अधिकार देकर अपने साथ बिठाते हैं। यही कारण है कि आज भी आप किसी भी अछूत वर्ग के विद्वान व्यक्ति से बात करे वह ब्राह्मणों, सवर्णों, गाँधी, कांग्रेस और हिन्दू धर्म को भले ही कोसता हो दयानन्द और आर्य समाज के प्रति उसके मन में आपको प्रेम और श्रद्धा ही दिखायी देगी। दयानन्द मन नहीं जीतते है। वह ज्ञान की मशाल लेकर अनेक मतानुयाइयों के मस्तिष्क के अन्धकारमय कोनों में प्रवेश करते हैं।

उपरोक्त दृष्टिकोण से हम समझते हैं कि दयानन्द की प्रासंगिकता आज विवेकानन्द, लोकमान्य तिलक और गाँधी जी से कहीं अधिक हैं। हम समझते है कि दयानन्द के मार्ग को अपनाकर भारत में प्रचलित सभी मुख्य मतों का तुलनात्मक अध्ययन प्रत्येक स्कूल में अनिवार्य होना चाहिये। स्पष्ट है कि इस अध्ययन में प्रत्येक मत में व्याप्त अंध विश्वासों को रेखांकित करना और उनका उन्मूलन करना ही ध्येय होना चाहिए।

भारत में धार्मिक शिक्षा का अर्थ यह हो गया है कि भारत के भावी मुसलमान और ईसाई वर्ग के नागरिकों को उनके पैतृक हिन्दू धर्म के प्रति घोर घृणा और हिंसा की शिक्षा दी जाती है। भले ही उस शिक्षा से उनमें वह सब

अन्धविश्वास, क्रूरता और दूसरे मत मतान्तरों के प्रति घृणा घर कर जाय जिनके उन्मूलन की हमारा संविधान अपेक्षा करता है। साधारण विचार से ही यह बात स्पष्ट हो जायगी कि ऐसी शिक्षा द्वारा धर्मनिरपेक्ष नागरिकों का निर्माण नहीं किया जा सकता। इस मार्ग से ऐसे नागरिक उत्पन्न नहीं किये जा सकते हैं जो भारतीय होंगे और केवल भिन्न भिन्न पूजा पद्धतियों के कारण ही हिन्दू, मुसलमान अथवा ईसाई कहे जा सकेंगे। सुशिक्षा द्वारा ही दूसरे मत की अच्छी बातें हमको अच्छी और अपने मत की बुरी बाते बुरी लग सकती है। भारत जैसे देश में जहाँ अनेक मतों के अनुयाई रहते हों परस्पर शांति, सद्भाव और सहनशीलता स्थापित कर उसके अतीत की गौरवमय पंथनिरपेक्षता से सम्बन्ध जोड़ना बिना इस प्रकार की सुशिक्षा के असम्भव है। केवल दयानन्द ही इसको अनिवार्य समझते हैं और बार–बार उस पर बल देते हैं। न केवल समझते और कहते हैं अपितु निर्भीकता पूर्वक ऐसा करते भी हैं।

स्वामी विवेकानन्द के सम्पूर्ण जीवन काल पर दृष्टि डालें तो वह वेदांत के एक गौरवपूर्ण विद्वान, सफल साधक और प्रचारक तो हैं परन्तु समाज सुधारक नहीं हैं। हिन्दू समाज को अंधविश्वासों और उन कुरीतियों से उभारने में उनकी भूमिका नगण्य है जिसका शिकार होकर वह पतोन्मुख होता रहा है। हिन्दू समाज को ईसाई और इस्लाम मत प्रचारकों के आक्रमण से बचाने के लिये भी वह कुछ नहीं कर पाये क्योंकि उन्होंने इन मतों का कोई अध्ययन नहीं किया था। अध्ययन न होने के कारण वह इस भयंकर और विनाशकारी भ्रम के शिकार रहे कि यह दोनो मत भी दूसरे भारतीय मतों की भाँति ईश्वर प्राप्ति के भिन्न–भिन्न उपासना मार्ग हैं और इसलिये हिन्दुओं द्वारा अपने मत की भाँति समादर के अधिकारी हैं। जिन मतों का ध्येय ही उनके अल्लाह अथवा गॉड द्वारा हिंदू काफिरों का जड़ मूल से उन्मूलन निर्धारित किया हुआ हो, जो कुफ्र (मूर्ति पूजा) और शिर्क (बहुदेवता पूजा) को अक्षम्य पाप मान कर उसको न केवल बौद्धिक प्रचार द्वारा अपितु लोभ, ताड़ना और हिंसा द्वारा भी नेस्तनाबूद करना अपना दैवी कर्तव्य मानते हों, उन मतों से मूर्ति और अहिंसा के पुजारी हिन्दुओं को सावधान न करने का पाप रामकृष्ण मिशन करता रहा है और आज भी कर रहा हैं।

हिन्दू धर्म को इन आक्रामक धर्मान्तरण में विश्वास करने वाले और उस कार्य को संपादन करने के लिये करोड़ो रूपये और लाखों प्रचारक लगाने वाले इन मतों से रक्षा करने के लिये कोई भी प्रयास विवेकानन्द और उनके द्वारा हिन्दू समाज के करोड़ो रूपयों से स्थापित सैकड़ों मठों द्वारा नहीं किया गया। उनके द्वारा प्रकाशित साहित्य में रामकृष्ण परमहंस को ईश्वर का अवतार और विवेकानन्द को स्पष्ट ईश्वर दर्शन करने वाला सिद्ध अवतारी पुरुष तथा इस्लाम और ईसाई मतों को

गौरान्वित करने वाली सैकड़ों पुस्तकें और ट्रेक्ट मिलेंगे। ईश्वर प्राप्ति के लिये भक्ति योग, राज–योग इत्यादि की पुस्तकों के विद्वतापूर्ण अनुवाद और समीक्षायें मिलेगी परन्तु रूढ़िवाद, अंधविश्वास, सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध **अथवा हिन्दू के अस्तित्व पर मड़राते खतरे और उससे बचने के सुझाओं पर कदाचित एक पन्ना भी नहीं मिलेगा।** मिल भी कैसे सकता है।

जबकि विवेकानन्द का बलपूर्वक कहना है :

१. बिना इस्लाम की सहायता के वेदान्त दर्शन चाहे वह कितना ही उत्कृष्ट क्यों न हो मानव समाज के लिये बिल्कुल ही बेकार् है।

२. हमारी मातृ भूमि के लिये इन दो दर्शनों (इस्लाम अथवा ईसाई) और हिन्दू .....का संगम ही एक मात्र आशा है।

३. हमारे साथ उनका व्यवहार कितना ही पशुवत है। उनकी भाषा कितनी ही गंदी हो हम उनके लिये चर्चों और मस्जिदों को निर्माण करते रहेंगे (जहाँ वह उन्हें हमको पशु समझने, लूटने, मारने, मन्दिरों को तोड़ने और हमारी स्त्रियों के साथ बलात करने की शिक्षा मिलती रहे) हम उन पर यह प्रमाणित कर देंगे कि अस्तित्व की सुरक्षा घृणा करने से नहीं प्रेम द्वारा ही सुरक्षित की जा सकती है।

हमारा दुर्भाग्य ही यह है कि हम उन से दया, प्रेम और सौहाद्र की आशा १००० वर्ष से करते रहे हैं और बदले में बार–बार धोखा खाकर हर प्रकार का अपमान, अत्याचार और गुलामी खरीदते रहे हैं। संसार का कोई दूसरा देश ऐसी मूर्खता की बात नहीं करता। फिर इसमें क्या आश्चर्य है कि पूरे विश्व में भारत ही ऐसा देश है जो २००० साल तक लगातार गुलाम रहा है। अर्धशिक्षित और बर्बर जातियां भी इतने लंबे समय तक गुलाम नहीं रहीं।

सन्दर्भ

१. कम्प्लीट वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानन्द।
२. स्वामी विद्यानन्द सरस्वती : द गास्पेल ऑफ स्वामी विवेकानन्द।
३. रोम्यॉ रोला : द लाइफ आफ विवेकानन्द।

मोहनदास करम चंद गाँधी

एक विदेशी लेखक पैट्रिक फ्रेन्च ने गाँधी जी के विषय में लिखा है कि "वह गौतम बुद्ध के पश्चात सर्वाधिक प्रसिद्ध व्यक्ति और २० वीं शताब्दी के सर्वाधिक प्रभावशाली राजनीतिक योद्धा थे। अन्याय के विरुद्ध शान्तिपूर्ण विरोध तथा सत्य और सहनशीलता के उनके संदेश के कारण विख्यात वैज्ञानिक आइन्सटाइन से लेकर नोबल पुरस्कार विजेता दलाई लामा तक ने संसार को उनकी इस देन की प्रशंसा की है।"

एक दूसरे अमेरिकन विद्वान विनसेंट शीन ने, जिसका गाँधी जी से वैयक्तिक संपर्क रहा था, उनके विषय में लिखा है कि उनके (गाँधी) जैसा दूसरा व्यक्ति जो सभी मनुष्यों से बराबरी का व्यवहार करता हो हमारे काल में नहीं हुआ। उसके विषय में हम जो कुछ भी जानते हैं उससे हम कह सकते हैं कि वह सुक्रात की भांति हमारे समय के सर्वोत्तम और सर्वाधिक बुद्धिमान व्यक्ति थे।

उनके वरिष्ठ सहयोगियों ने उनकी वैयक्तिक विलक्षणता के विषय में कहा है कि "उनमें मिट्टी के बने लोगों को नायक बना देने की अद्भुत क्षमता थी।"

फ्रांस के विख्यात दार्शनिक और विद्वान रोम्यां रोलॉ ने तो यहां तक कह डाला कि एक समय ऐसा आयेगा जब लोगों को विश्वास ही नहीं होगा कि हाड़ मांस का बना कोई ऐसा व्यक्ति इस पृथ्वी पर कभी सचमुच चलता फिरता था।

उनके व्यक्तित्व के चुम्बकत्व से अप्रभावित रहना कठिन था। उनकी अनुपस्थिति में उनको गाली देने वाले लोगों को उनके समक्ष उपस्थित होते ही मोम की भांति पिघल कर उनके चरण स्पर्श करते लेखक ने अपनी आंखों से देखा है।

आगा खॉ महल में कारावास काल में जब गाँधी उपवास कर रहे थे तो उनके अंग्रेज डाक्टर की आंखों में भाव विह्वलता के आंसू आने और उनको कठिनता से रोक पाने का डा० सुर्शीला नैयर ने अपनी पुस्तक "बापू के कारावास की कहानी" में आंखों देखा वर्णन किया है। उस डाक्टर का कहना था "यह तो ईसा के क्रास पर चढ़ाये जाने की कहानी दुहराई जा रही है।"

यह गाँधी का एक पक्ष है। परन्तु उनके व्यक्तित्व के और भी पक्ष हैं। विनसेंट शीन जिन्हे हम ऊपर उद्धृत कर चुके हैं यह भी कहते हैं कि "जैसी खुली पुस्तक उनका जीवन है वैसा किसी दूसरे व्यक्ति का नहीं है। वह जो भी कहते थे अथवा करते थे उससे संसार तुरन्त अवगत हो जाता था। उनकी नब्ज़ की धड़कन और शौच क्रिया तक का विवरण लिखा जाता था। वह अपने जीवनकाल में ही बीसवीं शताब्दी के औपचारिक महात्मा स्वीकार कर लिये गये थे जिन्हें निरंतर कैमरे

के लंस और फ्लैश लाइटों के बीच रहना पड़ता था। जब वह जागते थे, तो लाखों लोग उनके साथ जागते थे। जब वह उपवास करते थे तो लाखों लोग उनके साथ भूखे रहते थे।उन्होंने मानव समुदाय के एक बड़े भाग को दिशा दी। उनका चरित्र परिवर्तन कर दिया। इतिहास और साम्राज्यों के भाग्य को बदल डाला। **परन्तु हमें ऐसा कोई दूसरा व्यक्ति देखने को नहीं मिलता जिसके विषय में इतना सब कुछ जानते हुये भी हम कुछ नहीं जानते।"**

गौतम बुद्ध से उनकी तुलना करने वाले पैट्रिक फ्रेंच भी गाँधी जी के इस दोहरे चरित्र के विषय में कहते हैं कि **"स्वतंत्रता के लिये भारत की लंबी लड़ाई में गाँधी सर्वाधिक रहस्यमय और असंगत (परस्पर विरोधी) व्यक्ति हैं। वह सत्य के पुजारी हैं परन्तु बहुधा उसको पहचानने में असफल रहते हैं। वह चाटुकारिता (खुशामद) को नापसंद करते हैं परन्तु उसको बढ़ावा देने में कोई कोर कसर नहीं उठा रखते। कदाचित इतिहास के वह सब से अधिक चित्रित व्यक्ति हैं फिर भी कभी कभी उनके उद्देश्यों को, उनके कारणों को यहां तक कि उनके वास्तविक विचारों को भी समझना दुष्कर हो जाता है। ..... गाँधी का सत्य कोई स्थायी यथार्थता नहीं है वह एक सामयिक अवधारणा है जिसे वह अपनी सुविधानुसार तोड़ मरोड़ लेते हैं।"**

एक समय अपने देशवासियों द्वारा सर्वाधिक प्रिय और प्रशंसित गाँधी अपने उन्हीं अनेक देशवासियों के सर्वाधिक घृणा के पात्र बन जाते हैं। उनके उपवास के समय "गाँधी को मर जाने दो" के नारे अप्रत्याशित सत्य हैं। विभाजन की घोषणा के पश्चात होने वाली उनकी प्रार्थना सभाओं में अनेक लोग "गाँधी हिमालय पर चले जाओ" के नारे लगाते हैं। उन सभाओं में कुरान के पाठ पर घोर आपत्ति की जाती है यहाँ तक कि सभा बिना प्रार्थना किये विसर्जित कर दी जाती है। गाँधी का वेदनामय रुदन "जो लोग पहले मेरी बात सुनने को आतुर रहते थे आज मेरी आवाज भी सुनना पसंद नहीं करते।" उनकी घोर लोक–अप्रियता दर्शाते हैं। सरोजनी नायडू ने कितना सत्य कहा था। "गाँधी मर चुके हैं उनकी जीवन तपस्या का शव उनके सामने पड़ा है।" यदि गोडसे ने उनको वध कर उन्हें पुर्नजीवन न दिया होता तो कदाचित गाँधी के असफल जीवन की ही कहानियां शेष रह जातीं।

परन्तु ध्यान से देखने और सोचने पर यह उतना अद्भुत नहीं है। इतिहास साक्षी है कि सिकन्दर के समय से आज तक भारतवासी हिन्दुओं का **त्याग और तितिक्षा का प्रदर्शन** करने वाले व्यक्तियों के प्रति घोर आकर्षण रहा है। सिकंदर के काल में "कालानास" और उसके साथी केवल इस कारण पूजनीय माने जाते थे कि वह जड़ वस्तुओं की भांति नदी के किनारे वनों में जाड़े,गर्मी, बरसात में निर्वस्त्र पड़े रहते थे। आज भी गेरुये वस्त्रों में अथवा निर्वस्त्र रहने वाले संत महात्मा हिन्दुओं के सहज आदर और अन्धानुकरण के पात्र बन जाते हैं। इस प्रकार के वस्त्रधारी लोगों

की योग्यता अथवा पात्रता पर साधारण हिन्दू संदेह नहीं करता न उसकी जाँच ही करता है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि भारत में सभी सन्यासी अथवा लंगोटी धारी अथवा गेरुये वस्त्रधारी धूर्त हैं। निश्चय ही उनमें अनेक महापुरुष भी होंगे। दयानन्द और विवेकानन्द गेरुये वस्त्रधारी सन्यासियों की उस श्रेणी के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। हमारा तात्पर्य केवल यह है कि हिन्दू समाज में लंगोटी धारी, तपस्वी, त्यागी, व्रतधारी **दिखने वाले** लोगों के प्रति अंध भक्ति है। मुस्लिम राज्य काल में सूफियों ने और ईसाई राज्य काल में सूफियों और पादरियों ने यही सब ढोंग रच कर बड़ी संख्या में हिन्दुओं का धर्मान्तरण किया है। (देखें लेखक की पुस्तक : "भारतीय मुसलमानों के हिन्दू पूर्वज) ।

जब गाँधी जी जैसे विदेशों में शिक्षित और विख्यात वयक्ति ने भारतवासियों की घोर निर्धनता से और गौ हत्या से द्रवित होकर मात्र घुटनों तक की धोती, तीसरे दर्जे का सफ़र, आजीवन ब्रह्मचर्य और गौ दुग्ध के त्याग का व्रत लिया तो अपने इस नये रूप के कारण वह सहज ही हिंदुओं की अंध श्रद्धा के पात्र बन गये। विशेष रूप से जब उन्होंने हिन्दुओं में प्रसिद्ध व्रत अहिंसा, सत्य, आस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिगृह (संग्रह न करने) के धारण करने की सार्वजनिक प्रतिज्ञा की और उस पर आचरण करना प्रारम्भ कर दिया तो हिन्दुओं का उनके प्रति अगाध स्नेह, आदर और विश्वास हो जाना स्वाभाविक था। यहां हम "हिन्दुओं" शब्द का प्रयोग जान बूझ कर कर रहे हैं। मुसलमानों ईसाइयों और अंग्रेजों ने हिन्दुओं पर उनके सम्मोहन के राजनीतिक परिणामों की तो चिंता की वह उनकी आध्यात्मिक और नैतिक श्रेष्ठता से कभी प्रभावित नहीं हुये अपितु कभी कभी तो उन्होंने गाँधी जी के आध्यात्मिक अहम का और हिन्दुओं पर चमत्कारिक प्रभाव का अनुचित लाभ भी उठाया। खिलाफत के समय मौ० मोहम्मद अली द्वारा उनको सरकार सरकार कहने और उनके चरण चुंबन करने और बाद में उनको एक चोर और व्यभिचारी मुसलमान से भी घटिया घोषित करने से यह स्पष्ट है। इसी प्रकार पाकिस्तान को ५५ करोड़ रूपया देने और मुसलमानों द्वारा कलकत्ता, पाकिस्तान, नोआखाली इत्यादि स्थानों पर हिन्दुओं तथा सिखों पर अत्याचार की प्रतिक्रिया स्वरूप भारत में साम्प्रदायिक दंगों को और मुसलमानों के भारत से पलायन को रोकने के लिये ब्रिटिश वाइसराय द्वारा उनसे आमरण उपवास घोषित करवा कर किया गया।

उनके हत्यारे नाथूराम गोडसे द्वारा उन पर घातक प्रहार करने से पहले उनके श्रद्धा पूर्वक चरण स्पर्श करना उनके इस दोहरे चरित्र की एक अच्छी तस्वीर पेश करता है। ३० जनवरी १९४८, समय सायंकाल ५.१५, स्थान बिरला हाउस, दिल्ली। अद्भुत दृश्य है। एक दृढ़ संकल्प हत्यारा और निस्संदेह किसी समय उसकी प्रशंसा और आदर का पात्र रहा उसका लक्ष्य गाँधी आमने सामने हैं। हत्यारा गाँधी जी द्वारा भारत के प्रति की

गई अपूर्व सेवाओं के लिये उनके प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करते हुये उनके चरण स्पर्श करता है और दूसरे क्षण ही अपनी दृष्टि में देश के प्रति किये गये घोर अन्याय के जुर्म में उनके वृद्ध शरीर में तीन गोली उतार कर उनका वध कर देता है। वह अपने बचाव का कोई प्रयास नहीं करता। चुपचाप अपनी भरी पिस्तौल समेत अपने को कानून के हाथों सौंप देता है। वह जानता था कि इस कृत्य के कारण उसकी मृत्यु निश्चित है। वह यह भी जानता था कि इस कृत्य के कारण वह अपने देशवासियों की दृष्टि में अति घृणित व्यक्ति बनने जा रहा है। फिर भी वह इस क्रूर कृत्य को करता है।

दिल्ली में और भारत व पाकिस्तान के विभिन्न भागों में करोड़ों लोग थे जो उस क्षण मन से गांधी को मृत देखना चाहते थे। विभाजन के कारण १० लाख निर्दोष लोगों की हत्या, लाखों बलात्कार और एक करोड़ लोगों के बेघरबार हो जाने का दोषी वह गांधी को मानते थे।

इतना बड़ा मानव संहार और अत्याचार दोनों विश्व युद्धों को मिलाकर भी नहीं हुआ था। इस अत्याचार और संहार की जिम्मेदारी निश्चय रूप से गाँधी जी पर है जिनके प्रति हिन्दुओं का असीम विश्वास और भक्ति थी। वह अंत समय तक घोषणा करते रहे कि देश का बंटवारा उनके मृत शरीर पर ही होगा और जब उस घोषणा के पूरा करने का समय आया तो जैसा कि सत्य से मुंह छिपाने के लिये उसे तोड़ने मरोड़ने का उनका स्वभाव था वह कहने लगे कि यदि मुसलमान देश का बंटवारा चाहते हैं तो उसे वाइसराय अथवा कोई और कैसे रोक सकता है ? यदि यही बात उन्होंने छः महीने पहले ही कह दी होती तो निश्चय ही लाखों हिन्दू जो उनका विश्वास कर पाकिस्तानी क्षेत्रों में बने रहे वहां से शांतिपूर्वक प्रस्थान कर भारत चले गये होते।

जिन्नाह ने १९४० में ही यह बात स्पष्ट कर दी थी कि मुसलमान और हिन्दू भिन्न भिन्न और विपरीत संस्कृति और विश्वासों को मानने वाली अलग अलग कौमें हैं। उनका सह–अस्तित्व संभव नहीं है और इस कारण वह विभाजन से कम किसी दूसरे विकल्प को स्वीकार नहीं करेंगे। **"We shall have India divided or India destroyed"**

इस्लाम के मूल सिद्धान्तों से परिचित किसी भी व्यक्ति के लिये यह बात दिन की भांति स्पष्ट होनी चाहिये थी। इस्लाम और गैर इस्लाम और उसमें भी मूर्ति पूजकों का संबंध अंधेरे और प्रकाश जैसा है। दोनों का सहअस्तित्व उस समय तक संभव नहीं है जब तक उनकी मूल प्रकृति बनी रहेगी। इस्लाम का जन्म ही गैर–इस्लाम को जड़ से नष्ट करने के लिये हुआ है। उसके सारे ढांचे का निर्माण उसे इस कार्य के लिये सक्षम बनाने के लिये किया गया है। जहां भी इस्लाम को गैर इस्लाम के साथ रहना पड़ता है वह परिस्थिति के अनुसार अनेक कारगर उपायों द्वारा उसके स्थान पर अपना वर्चस्व और अपना शरियत कानून स्थापित करने की

निरन्तर चेष्टा करता रहता है क्योंकि यही उसका मुख्य धर्म है। इसके लिये सबसे प्रभावी और अनुभूत उपाय है गैर–मुस्लिमों की तुलना में अपनी जन्मदर को दुगनी तिगुनी रखना। साइप्रस और रूस इस प्रक्रिया के ताजा उदाहरण हैं। अंततः वह इस चेष्टा में देर सबेर सफल हो जाता है, समय भले ही कुछ वर्षों का हो अथवा शताब्दियों का।

इसलिये भारत का विभाजन तो उसके भाग्य में उसी दिन लिख गया था जिस दिन हिन्दुओं द्वारा पहले मुसलमान को भारत में पदार्पण करने दिया गया था। इस विभाजन के लिये हम गाँधी, जिन्नाह अथवा ब्रिटिश सरकार को दोषी नहीं मानते। वह तो भारत में इस्लाम के प्रवेश की स्वाभाविक परिणति थी। इस्लाम जिस देश में प्रवेश करता है उसे देर सबेर इस्लाम–शासित देश और उसके निवासियों को मुसलमान बना कर ही छोड़ता है भले ही उसमें उसे सहस्रों वर्ष ही क्यों न लगें। (देखें लेखक की पुस्तक – भारत के इस्लामीकरण के चार चरण (हिन्दी) और **Must India Go Islamic** (अंग्रेजी)।

यदि हिन्दुओं को सम्पूर्ण भारत का दारुल इस्लाम (मुस्लिम शासित देश) बनना मंजूर नहीं था तो उनके सामने १९४७ के विभाजन के समय जैसे पाकिस्तान मुस्लिम होम लैंड बन रहा था भारत को हिन्दू होम लैंड (हिन्दू राष्ट्र और हिन्दू राज्य) घोषित करने से उत्तम कोई दूसरा विकल्प नहीं था। आबादी की अदला बदली द्वारा ही भारत में हिन्दू धर्म और हिन्दू प्रजा की इस्लाम से रक्षा की जा सकती थी। हिन्दुओं को इस्लाम रूपी इस आपदा से सदा सदा के लिये छुटकारा पा जाने का यह एक स्वर्णिम अवसर था।

वरिष्ठ पत्रकार स्व० गिरिलाल जैन का यह कथन नितांत सत्य है कि १००० वर्ष बाद १९४७ में हिन्दुओं को भारत में फिर से अपनी संस्कृति को स्थापित करने का सुअवसर प्राप्त हुआ था परन्तु, उन्होंने उस अवसर को गंवा दिया। कारण थे गाँधी।

महान आश्चर्य यह है कि पाकिस्तान से अपना सम्मान, धर्म और जान बचा कर भाग कर भारत आने वाले हिन्दू और उनके वंशज राजनीतिज्ञ आज फिर गाँधी जी के हिन्दू–मुस्लिम सह–अस्तित्व और सर्वधर्म समभाव अथवा सर्वधर्म समादर का शोर मचाते हैं। वह यह नहीं समझते या समझना नहीं चाहते कि यदि इस्लाम को यह स्वीकार्य होता तो उनको पाकिस्तान से भागना क्यों पड़ता ?

गाँधी और उनके दर्शन की सौगंध खाने वाले नेताओं का दोष यह था और अब भी है कि वह अपने हिन्दू भक्तों को इस्लाम से बेखबर रखते रहे हैं। उनमें यह भ्रम पालते रहे हैं कि सभी धर्म प्रेम और अहिंसा पर बल देते हैं। इस कारण उनका सहअस्तित्व सम्भव है और वह समान आदर के पात्र हैं। जब इस मूढ़ता से उत्पन्न कड़वे फल उनके सामने आये तब भी उन्होंने विभाजन के कटु सत्य के यथार्थ को

स्वीकार न कर हिन्दुओं को पाकिस्तान नामी हिन्दू वध स्थल से समय रहते निकलने का आह्वान नहीं किया। इतना ही नहीं **गाँधी अपनी वैयक्तिक प्रतिष्ठा के लिये हिन्दुओं को पाकिस्तान में बने रहने का उपदेश देते रहे जिसको मान कर वह वहीं मर खप गये। विभाजित हिन्दू भारत से उन्होंने मुसलमानों को पाकिस्तान नहीं जाने दिया जिसके कारण आज फिर वही विभाजन पूर्व की स्थिति उत्पन्न हो गई है।**

धर्म के नाम पर विभाजन के पश्चात दोनों देशों में आबादी की शांतिपूर्ण अदला बदली से यह समस्या सदैव सदैव के लिये समाप्त हो जाती। **जिन्नाह और अम्बेडकर के कहने के बावजूद गाँधी ने इसे नहीं माना** और आज ५० वर्ष बाद हिन्दू भारत १९४७ से भी कहीं अधिक भीषण साम्प्रदायिकता की समस्या लिये खड़ा है। इस आने वाली दूसरी आंधी का अंदाज़ा मौ० इमाम बुखारी के एक साक्षात्कार में दिये गये वक्तव्य से लग सकता है। उन्होंने कहा बताते हैं:

" हिन्दुस्तान में भी जैसा कि अन्दाज़ है २०–२५ वर्षों में मुसलमान अक्सरियत में (Majority) हो जायेंगे। तब यह मुल्क भी मुस्लिम मुल्क कहलाएगा और सिर्फ तभी यहां सही मायनों में सेक्युलरिटी भी होगी। ..... १९४७ के बाद से ही हिन्दुस्तान में मुसलमानों पर इन्तहा जुल्म हुए हैं। यहां बेगुनाह मुसलमान कत्ल किए जा रहे हैं। ..... हिन्दू राज आने का डर मुसलमानों को भी है। अगर ऐसे ही हालात रहे तो एक दिन मुसलमान अपनी हिफ़ाज़त के लिए अलग होमलैंड की मांग करेंगे। **बिहार, यू०पी, दिल्ली, असम, बंगाल वगैरह मुसलमानों से भरे पड़े हैं। मुसलमान कहेंगे कि उन्हें एक इलाके में जमा करो और मुस्लिम होमलैण्ड बनाओ।** खुदा न करे यह दिन आए, लेकिन **हालात यह दिन ज़रूर ला देंगे।"**

भारत में अपने राजनीतिक जीवन के प्रारम्भ में ही गाँधी जी ने घोषणा की थी : "मैं अपने जीवन को दो ध्येयों की प्राप्ति के लिए समर्पित कर चुका हूँ : **हिन्दू मुसलमानों में स्थायी एकता और सत्याग्रह।"**

इन दोनों ही विषयों में वह केवल असफल ही नहीं रहे अपितु उनके जीवन भर के प्रयासों का विपरीत फल निकला। किन्तु यह तथाकथित सत्य का पुजारी अपनी असफलता और भयानक परिणामों को स्वीकार करते हुये भी अपनी आत्म वंचना के कारण अपने द्वारा प्रतिपादित इन सिद्धान्तों के बेतुके पन को स्वीकार करने का साहस नहीं जुटा सका।

हिन्दू–मुस्लिमों में स्थायी एकता –

हिन्दू मुस्लिम एकता की मृग मरीचिका को सत्य प्रमाणित करने के लिए वह मुसलमानों द्वारा निर्दोष हिन्दुओं पर किये गये अत्याचारों को नकारते रहे अथवा अपने स्वभावानुसार तोड़ मरोड़ कर पेश करते रहे। १९१६ के लखनऊ पैक्ट के मुख्य

सूत्रधार गाँधी जी थे। इसके फलस्वरूप मुसलमानों को हिन्दुओं की कीमत पर अनेक सुविधायें दी गईं। उनका विस्तार से वर्णन करना यहां सम्भव नहीं है। विख्यात इतिहासकार डा० ईश्वरी प्रसाद ने अति संक्षेप में इस पैक्ट के दुष्परिणामों को इन शब्दों में व्यक्त किया है : "इतिहास में लखनऊ पैक्ट को सदैव कांग्रेस की भयंकर भूल की शक्ल में स्मरण किया जायगा। यह मुस्लिम तुष्टीकरण के लिये हिन्दुओं के साथ विश्वासघात से कम नहीं था।"

खिलाफ़त के समय अम्बेडकर द्वारा 'कूटनीति में पारंगत' कहे गये मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं के प्रति सद्भावना के दिखावे को यथार्थ समझकर गाँधी फूले नहीं समाये। मोहम्मद अली द्वारा पैर चूमने और 'सरकार सरकार' कहने के बदले में वह अफगानिस्तान के अमीर को भारत पर आक्रमण करने के लिये आमंत्रण भेजने में भी शरीक हो गये।

इसके पश्चात खिलाफ़त आन्दोलन की समाप्ति पर (क्योंकि भारत के अतिरिक्त किसी भी दूसरे मुस्लिम देश ने उसे स्वीकार नहीं किया) १९२१ ई० में मालावार में ५००० हिन्दुओं के कत्ल और २०००० हिन्दुओं के बलात धर्म परिवर्तन पर भी वह परदा डालने का पाप कर बैठे। उन्होंने मोपलाओं की बर्बरता की स्पष्ट निन्दा करने के स्थान पर कह डाला : वह धर्म भीरू लोग हैं जो उसके लिये युद्ध कर रहे हैं जो उनके विचार में धर्म है और उस रीति से युद्ध कर रहे है जो उनके विचार में धर्मसम्मत है।"

उन्होंने इन अत्याचारों का कोई प्रतिकार नहीं किया । १९२४ में कोहाट में भीषण साम्प्रदायिक दंगा हुआ। वहाँ हिन्दू केवल ५ प्रतिशत थे। उनमें से १५० हिन्दू बध कर दिये गये। शेष की प्राण रक्षा के लिए अंग्रेजी शासन ने उन्हें रावलपिण्डी स्थानांतरित कर दिया। गाँधी जी ने वहाँ जाकर स्वयं छान बीन करने के बाद कहा : "दंगे मुसलमानों के इस बात पर रुष्ट होने के कारण हुये कि हिन्दू लोग हिन्दू पुरुषों और विवाहित हिन्दू महिलाओं के धर्मान्तरण से अप्रसन्न थे ..... हिन्दुओं पर भीषण अत्याचार हेतु मुसलमानों के पास कोई बहाना नहीं था।" भविष्य में हिन्दुओं पर इस प्रकार के अत्याचार मुसलमान न कर सके इसका उपाय गाँधी ने क्या सोचा ?

उन्होंने प्रायश्चित स्वरूप २१ दिन का उपवास किया। उन्होंने स्वीकार किया।

"मेरी गलती! क्यों ? क्या मुझ पर यह लांछन नहीं लगाया जा सकता कि मैंने हिन्दुओं के साथ विश्वासघात किया है ? मैंने उनसे कहा था कि वे अपने पवित्र स्थानों की रक्षा के लिए अपना तन और धन मुसलमानों को सौंप दें। आज भी मैं उनसे कह रहा हूँ कि वे अपने झगड़े अहिंसा के मार्ग पर चलकर निपटायें। भले ही

मर जाँय, मगर मारें नहीं। और फल क्या निकला ? कितनी अधिक बहिनें मेरे पास शिकायतें लेकर आयीं। हिन्दू महिलाओं को मुसलमान गुण्डे अधिक त्रस्त कर रहे हैं। मुझे एक महिला का पत्र मिला है – जिस प्रकार उसके नन्हें मुन्नों पर अत्याचार किया गया उसे मैं कैसे सहन करू ? मैंने उनसे कहा था कि वे निष्काम भाव से मैत्री करें। आज मैं असमर्थ हूँ। उस आश्वासन को पूरा नहीं कर सकता। मेरी कोई नहीं सुनता। **लेकिन आज भी हिन्दुओं से मैं यही कहूंगा कि भले ही मर जाओ मारो मत।**" कैसा हास्यास्पद उपाय है ? न उन्होंने बल पूर्वक धर्मान्तरण किये गये हिन्दुओं की वापसी पर बल दिया न भविष्य में इस प्रकार की गुण्डागर्दी को रोकने का कोई उपाया सोचा न प्रयास किया।

मई सन् १९२६ तक गाँधी जी की निराशा उनके निम्नलिखित शब्दों से पता लगती है –

"मैं अपनी अयोग्यता स्वीकार कर चुका हूँ। मैं स्वीकार कर चुका हूँ कि एक डाक्टर की हैसियत से मैं इस मर्ज़ (हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य) को ठीक करने के लिए सही नुस्ख़ा तजवीज़ करने में असफल रहा हूँ।" इस अनुभव के पश्चात भी अपने अन्ध भक्त हिन्दुओं को वही असफल नुस्खा पिलाते रहने वाले गाँधी क्या हिन्दुओं के प्रति विश्वासघात के घोरतम पाप के दोषी नहीं माने जायेंगे ?

मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं का धर्मान्तरण अभियान चलाने और अनेक स्थानों पर अत्याचार करने के फलस्वरूप स्वामी श्रद्धानन्द ने जब हिन्दू संगठन और शुद्धी आन्दोलन चलाया तो गाँधी जी के किसी समय के भक्त मौलाना अब्दुल बारी कहने लगे : "शुद्धि आन्दोलन को कुचलने के लिये हम प्रत्येक सम्भव प्रयास करेंगे .....मैं स्पष्ट रूप से कह देना चाहता हूँ कि प्रत्येक विपक्षी व शत्रु से यहां तक कि अंग्रेजों से भी सुलह हो सकती है परन्तु इस्लाम का परित्याग करने वालों के साथ सुलह असम्भव है..... **हम सांपों और बिच्छुओं के साथ रह सकते हैं किन्तु उन लोगों के साथ नहीं जो इस्लाम धर्म को छोड़ देते हैं, या जो उनको इसके लिए प्रेरित करते हैं।**"

गाँधी जी के पास अब्दुल बारी के उत्तेजनात्मक वक्तव्यों की शिकायत पहुंची तो उन्होंने कहा: "मैं तो अब्दुलबारी को खुदा का निष्पाप शिशु समझता हूँ।" और उन्होंने शुद्धि और हिन्दू संगठन के जन्मदाता श्रद्धानन्द के साथ–साथ आर्य समाजियों को झगड़ालू और आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द को भी निन्दा करने से नहीं छोड़ा।

उन्होंने लिखा : स्वामी श्रद्धानन्द जी पर भी अविश्वास किया जाता है। मैं यह जानता हूँ कि उनकी वक्तायें भड़काने वाली होती हैं। परन्तु वे हिन्दू मुस्लिम एकता में भी विश्वास करते हैं। .....परन्तु वे जल्दबाज़ हैं और शीघ्रता से क्रोध के आवेग में आ जाते हैं। उन्हें आर्य समाजिक स्वभाव विरासत में मिला है। स्वामी

दयानन्द सरस्वती के लिये मेरे हृदय में बड़ा सम्मान है। मैं समझता हूँ कि उन्होंने हिन्दू धर्म की बड़ी सेवा की है। .....परन्तु उन्होंने हिन्दू धर्म को संकीर्ण बना दिया है। मैंने आर्य समाज की बाइबिल सत्यार्थ प्रकाश को पढ़ा है ..... मैंने इस प्रकार के महान सुधारक के हाथ से लिखी इससे अधिक निराशाजनक और कोई पुस्तक नहीं पढ़ी। उन्होंने संसार भर के एक अत्यन्त विशाल और उदार धर्म को संकुचित बना दिया है। .....(आर्य समाजियों के) संकुचित और दुराग्रही होने के कारण वे और मतों के लोगों से लड़ाई ठान लेते हैं ..... **शुद्धि करने का वर्तमान ढंग हिन्दू मुस्लिम ऐक्य को बिगाड़ने का एक प्रधान कारण है। मेरी सम्मति में हिन्दू धर्म में कहीं भी ऐसी शुद्धि का विधान नहीं है। (अर्थात मुसलमान तो अपने धर्मानुसार हिन्दुओं को मुसलमान बनाते रहें परन्तु हिन्दू उन धर्मान्तरित बंधुओं को भी हिन्दू धर्म में वापिस न लें जो उसके इच्छुक हैं)।** मेरी हिन्दू प्रकृति मुझसे कहती है कि सब धर्म थोड़े बहुत सच्चे हैं .....मुझे पता लगा है कि मुसलमान और आर्य समाजी दोनों ही स्त्रियों को भगाकर अपने धर्मों में लाने का प्रयास करते हैं।"

दयानन्द द्वारा अन्य मत मतान्तरों की समीक्षा के विषय में उन्होंने लिखा कि 'उन्होंने (दयानन्द ने) अनजाने में जैन धर्म, इस्लाम और ईसाइयत और स्वयं हिन्दू धर्म को अशुद्ध रूप में प्रकट किया है। जिन लोगों को इन मतों का सरसरी ज्ञान भी है वह सुगमता से इन अशुद्धियों को मालूम कर सकते हैं' आदि आदि।

साथ ही साथ गाँधी जी ने इस्लाम की प्रशंसा में लिखाः "जब पश्चिम अन्धकार के गर्त में पड़ा था, पूर्वी क्षितिज पर एक तारा चमका और समस्त संसार को उसने प्रकाश और सुख पहुंचाया। इस्लाम कोई झूठा मज़हब नहीं है। अगर हिन्दू इसे सच्चे दिल से शान्तिपूर्वक पढ़ें तो वे इसका उतना ही आदर करेंगे जितना मैं करता हूँ। ..... **इस्लाम पर आक्रमण होते हैं और मैं मुसलमान भाइयों से मैत्री रखना चाहता हूँ। इसीलिये मैंने उनके धर्म का पक्ष लिया।** सबको अपना धर्म औरों से श्रेष्ठ मालूम होता है। इसी कारण हिन्दू धर्म मुझे झूठा नहीं लगता अपितु सबसे श्रेष्ठ प्रतीत होता है।"

यहाँ गाँधी जी ने दो सत्य बोलकर अपना वास्तविक चरित्र उजागर कर दिया । पहला यह कि वह मुसलमानों का पक्ष इसलिये नहीं लेते थे कि उनका पक्ष सत्य पर आधारित था अपितु इसलिये कि वह किसी न किसी प्रकार प्रकार मुसलमानों से मैत्री बनाये रखना चाहते थे। दूसरा यह कि उनको हिन्दू धर्म उसके मूल सिद्धांतों की श्रेष्ठता के कारण अच्छा नहीं लगता था अपितु केवल इस कारण कि उनका जन्म हिन्दू परिवार में हुआ था ।

ऐतिहासिक तथ्य है कि केवल यह बात कहने पर कि इस्लाम भी सच्चा है और मेरा धर्म भी सच्चा है मुस्लिम काल में हिन्दुओं को मृत्यु दण्ड दिया जाता था। ख्वाजा निज़ामुद्दीन अहमद द्वारा लिखित तबकाते अकबरी खण्ड–१

पृ०–३२२–३२३ के अनुसार सिकन्दर लोदी के काल में बोधन ब्राह्मण के यह कहने पर कि इस्लाम सच्चा धर्म है और मेरा धर्म भी सच्चा है उसे इस्लाम स्वीकार करने को कहा गया और न मानने पर उसका वध कर दिया गया। स्पष्ट है कि गांधी जी को यह इतिहास मालूम नहीं था अथवा वह जानबूझकर इसकी उपेक्षा करते थे। क्योंकि जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है कि वह मुसलमानों से मैत्री रखना चाहते थे और इसलिये उनके धर्म का पक्ष लेते थे।

गाँधी जी के उपरोक्त वक्तव्य में एक बड़ा भारी दोष और भी है। हिन्दू मुस्लिम दंगे शुद्धि के कारण प्रारम्भ नहीं हुए क्योंकि शुद्धि आन्दोलन तो इन दंगों द्वारा हिन्दुओं के बलात धर्मपरिवर्तन के पश्चात और उनके फलस्वरूप प्रारम्भ हुआ। आर्य समाजियों पर मुसलमान स्त्रियों को भगाने का दोष तो नितान्त बेबुनियाद था। गाँधी जी के अतिरिक्त यह आरोप आर्य समाज पर कभी नहीं लगाया गया। मुसलमानों द्वारा भी नहीं। लगता है गाँधी जी ने अपने मुस्लिम मित्रों के कहने भर से ऐसा वक्तव्य दे दिया।

जो भी हो शीघ्र ही गाँधी जी को भी इस्लाम के शुद्ध रूप का ज्ञान हो गया। उनके पैर चूमने वाले और 'सरकार सरकार' कहने वाले मोहम्मद अली ने "अपने मजहबी विश्वास के अनुसार एक चोर और व्यभिचारी मुसलमान को भी गाँधी जी से उत्तम बताया।"

अहिंसा की राजनीति

सत्याग्रह –

गाँधी जी ने जिन दो उद्देश्यों के लिये अपना जीवन समर्पित किया था उनमें से प्रथम अर्थात हिन्दू और मुसलमानों में स्थायी एकता के प्रयासों का परिणाम हम देख चुके हैं। अब हम उनके दूसरे ध्येय सत्याग्रह के परिणाम को इतिहास के प्रकाश में देखने का प्रयास करेंगे।

गाँधी जी ने सत्याग्रह का प्रयोग सर्व प्रथम दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेजों के विरुद्ध किया। उस देश में ईसाई लगभग ७० प्रतिशत हैं, हिन्दू २ प्रतिशत, मुसलमान १ प्रतिशत, यहूदी १ प्रतिशत, शेष २६ प्रतिशत वहां के आदि निवासियों के वंशज हैं। राज्य शक्ति ईसाइ अंग्रेजों के हाथ में थी।

गाँधी जी का अहिंसात्मक सत्याग्रह ईसाई अंग्रेज सत्ता के विरुद्ध था। यद्यपि ईसाइयों ने भी अपने प्रारम्भिक काल में ईसाई मत के प्रचार प्रसार के लिये अन्य धर्मावलम्बियों पर कुछ कम बर्बर अत्याचार नहीं किये परन्तु धीरे धीरे वह इस प्रकार के अत्याचारों से विरत होते गये। भारत में भी जहां मुसलमानों ने अपने राजनीतिक विरोधियों की आँखों को लोहे की गरम सलाखों से फुड़वाना, खाल खिंचवाना, जीभ कटवाना, हाथी के पैरों से कुचलवाना, आरे से चिरवाना तथा चर्खी

पर हाथ पैर खिंचवा कर अलग कर देना जैसे प्राण दंड के क्रूर तरीके उपयोग में लाये अंग्रेजों ने फांसी अथवा तोपों से उड़वाने जैसे कम से कम कष्ट दायक उपाय मृत्यु दंड के लिये इस्तेमाल किये।

गाँधी जी के अहिंसात्मक सत्याग्रह के सामने ईसाई अंग्रेज लाचार हो गये। जेनरल स्मट्स ने अपनी लाचारी जिन शब्दों में व्यक्त की उन में गाँधी जी की सफलता का राज़ छिपा है। उसने कहा : " यदि तुम हथियार उठा कर हम से लड़ने आते तो हम तुम से निपट लेते मगर तुम तो निहत्थे होकर हमारे सामने अपने को कष्ट देकर हमें चुनौती देते हो। इस स्थिति का सामना हम कैसे करें?"

महात्मा गाँधी को आधुनिक काल में अहिंसा को राजनीति में प्रयोग का पितामह कहा जायगा। विश्व उनको इसीलिये जानता भी है। उन्होंने पाशविक शक्ति का विरोध आत्मिक शक्ति से करने का सुझाव दिया और दक्षिण अफ्रीका तथा भारत में भी किसी सीमा तक उनका प्रयोग सफल हुआ। किन्तु इन दो प्रयोगों की सफलता से यह सिद्ध नहीं हो जाता कि गाँधी के इस प्रयोग को सब स्थितियों में और सभी आतताइयों के विरुद्ध सफलतापूर्वक इस्तेमाल किया जा सकता है। नादिरशाह, तैमूर और हिटलर इत्यादि मानव शरीर में साक्षात शैतान जैसे लोगों से अहिंसात्मक विरोध की सफलता की आशा करना कितना हास्यास्पद है यह बताने की आवश्यकता नहीं है। यह ऐसा ही है कि जैसे किसी भेड़िये अथवा बाघ के सामने किसी भेड़ बकरे का सत्याग्रह करना अथवा उपवास पर बैठ जाना।

गाँधी जी ने स्वयं कहा है कि उनका अहिंसा प्रयोग उन्हीं लोगों के विरोध में सफल हो सकता है जिनके मन में सत्याग्रही के लिये कुछ नरम कोना हो अर्थात उनमें कुछ मानवता शेष हो। गाँधी जी का विरोध दक्षिण अफ्रीका और भारत में जिन अंग्रेजों से था वह सभी निहत्थे सत्याग्रहियों पर गोली चलाने में संकोच करते थे। कल्पना करें यदि साउथ अफ्रीका में गाँधी जी का पाला नादिरशाह अथवा हिटलर से पड़ा होता तो क्या उनको अपने अहिंसात्मक प्रयोग करने का दूसरा अवसर मिला होता ?

विरोधियों के प्रति सहिष्णुता –

गाँधी जी सहिष्णुता अर्थात अपने से विपरीत विचारधारा वाले व्यक्ति के विचारों के प्रति सहनशीलता का उपदेश देते रहते थे। उसे अपने जीवन में चरितार्थ कर दिखाने के लिये अपने भाषण और लेखन में वह सदा अति विनम्र भाषा का प्रयोग करते थे। परन्तु वास्तविकता यह है कि वह ऐसे लोगों को कभी क्षमा नहीं करते थे। उनको सर्वथा निष्प्रभावी कर देने में वह कोई कोर कसर नहीं उठा रखते थे। भले ही उन लोगों का ध्येय भी निःसंदेह वह ही रहा हो जो उनका था: भारत को विदेशी शासन से मुक्त करना। उनकी इच्छा के विरुद्ध सुभाष चन्द्र बोस,

सीतारमैया को हरा कर कांग्रेस प्रधान चुन लिये गये तो उन्होंने इसे अपनी वैयक्तिक प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया। जब तक सुभाष कांग्रेस से बाहर नहीं हो गये और उनके प्रिय जवाहर उनके उत्तराधिकारी नहीं बन गये उनको चैन नहीं पड़ा। यही हाल पटेल का और भूला भाई देसाइ का भी हुआ।

दयानन्द, श्रद्धानन्द और आर्य समाज के प्रति उनके अन्याय का वर्णन हम पहले ही कर आये हैं।

लोकमान्य तिलक के भी 'शठे शाठ्यं समाचरेत' सिद्धांत की वह सदैव कटु आलोचना करते रहे।

क्रान्तिकारियों के विषय में तो वह ब्रिटिश शासन से सहयोग तक करने लगे । वह नहीं चाहते थे कि भारत को स्वतंत्र कराने का सेहरा उनके और उनके अहिंसा तथा सत्याग्रह के अतिरिक्त किसी और के सिर बंधे।

लॉर्ड इरविन ने अपनी डायरी में लिखा है: "दिल्ली में जो समझौता हुआ उससे अलग और अंत में मिस्टर गाँधी ने भगत सिंह का उल्लेख किया, उन्होंने फांसी की सजा रद्द करने के लिये कोई पैरवी नहीं की। पर साथ ही उन्होंने वर्तमान परिस्थिति में फांसी को स्थगित करने के विषय में भी कुछ नहीं कहा। (फाइल नं०–५–४५/१६३१ के० डब्लू–२, गृह विभाग राजनीति शाखा रहबर: 'गाँधी बेनकाब' पृष्ठ–१७२)

२० मार्च को गाँधी वाइसराय के गृह सदस्य हर्बर्ट इमरसन से मिले। इमरसन ने अपनी डायरी में लिखा – मि० गाँधी की इस मामले में अधिक दिलचस्पी नहीं मालूम हुई। मैंने उनसे कहा यदि फांसी के फलस्वरूप अव्यवस्था नहीं हुई तो वह बड़ी बात होगी। मैंने उनसे कहा वह कुछ करें ताकि अगले कुछ दिनों में अव्यवस्था सम्भव न हो और लोगों को उग्र व्याख्यानों से रोकें। इस पर उन्होंने अपनी स्वीकृति दे दी और कहा – मुझसे जो कुछ भी हो सकेगा मैं करूँगा। (फाइल नं०–३३/१–१६३१)

गाँधी का पत्र – (१ दरियागंज, दिल्ली, २०.३.१६३१)

प्रियवर इमरसन,

अभी अभी आपका जो पत्र मिला उसके लिये धन्यवाद। आप जिस सभा का उल्लेख कर रहे है उसका मुझे पता है। हर एहतियात ले ली है और आशा है कोई गड़बड़ी नहीं होगी। मैं सुझाव देता हूँ कि पुलिस का कोई दिखावा न किया जाय और सभा में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न हो। रही उत्तेजना सो तो होगी ही। इस उत्तेजना को सभा के जरिये निकल जाने देना उचित होगा। (फाइल नं०–४–२२/१६३१)

भारत को स्वतंत्र कराने का श्रेय उनके उत्तराधिकारी कांग्रेसी गाँधी जी को देते हैं। परन्तु यह कथन कितना सत्य अथवा असत्य है ? इस विष्य पर तीव्र

मतभेद है। इसके सशक्त प्रमाण हैं कि अंग्रेज गाँधी के सत्याग्रह और उपवासों से डरकर भारत नहीं छोड़ गये। अंग्रेजों की स्थिति १६४२ में भारत छोड़ो आन्दोलन के समय जितनी नाजुक थी उतनी युद्ध जीतने के बाद नाजुक नहीं रही थी। १६४२ में अंग्रेजी सरकार युद्ध में बार बार हार रही थी। स्वयं ब्रिटिश द्वीप समूह पर जर्मन आक्रमण हो रहे थे और वहां की जनता त्रस्त थी। न तो समुद्र पर न आकाश पर उनका वर्चस्व रह गया था। पूर्व में जापानी सेनायें उनके साम्राज्य को रौंदती चली आ रही थीं। अन्डमान निकोबार उनके हाथ से निकल चुके थे। ऐसी नाजुक स्थिति में भी अंग्रेजों ने १६४२ के भारत छोड़ो आन्दोलन को कुछ महीनों में ही कुचल कर जो शान्ति स्थापित कर दी थी वह १६४६ तक बदस्तूर कायम थी। १६४६ में अंग्रेज युद्ध जीत चुके थे। ऐसी सुखद स्थिति में होते हुए यह कहना विश्वास योग्य नहीं है कि अंग्रेजों ने गाँधी जी के सत्याग्रह अथवा उपवासों से डरकर भारतवासियों को स्वतंत्र कर दिया।

अब यह बात सर्वत्र ही मान ली गई है कि अंग्रेजों ने भारत छोड़ने का मन मुख्य रूप से तीन घटनाओं के कारण बना लिया था। (१) जापानियों द्वारा बंदी भारतीय सैनिकों का सुभाष की इंडियन नेशनल आर्मी में भरती हो कर ब्रिटिश शासन के प्रति निष्ठा की शपथ को नकार देना। (२) भारतीय समुद्री सेना में विद्रोहियों द्वारा केवल सरदार पटेल के आह्वान पर ही हड़ताल से काम पर वापिस जाना। इन दो घटनाओं से अंग्रेजों का अपनी भारतीय सेनाओं पर से विश्वास उठ गया। इन्हीं के बल पर मुट्ठी भर अंग्रेज भारत पर राज्य करते रहे थे। उनकी जनसंख्या इतनी नहीं थी कि वह विलायत से कोई बड़ी सेना ले आते। ऐसी दशा में उन्होंने इस विचार से कि सद्भावनापूर्ण स्वतंत्रता देकर भारत में अपने आर्थिक हितों की रक्षा कर लेना उनके भविष्य के लिये अच्छा होगा भारत को आजाद कर देने का निश्चय किया।

उनके इस निश्चय का तीसरा कारण था अमेरिका और रूस का विश्व युद्ध के पश्चात नम्बर एक और दो के स्थान पर विश्व शक्ति के रूप में उभरना। दोनों ही अंग्रेजों, डचों, फ्रांसीसियों के साम्राज्यवादी ढांचे के विरुद्ध थे। तीसरी शक्ति चीन भी इन युरोपिय शक्तियों का एशिया तथा अफ्रीका से निष्कासन ही अपने हित में उत्तम समझता था। इस स्थिति ने साम्राज्यवाद की न केवल भारत में अपितु विश्व में ही जड़ खोद डाली।

गाँधी जी का वास्तविक योगदान –

गाँधी जी से पहले स्वतंत्रता आन्दोलन कुछ बुद्धिजीवियों, कमेटियों और प्रस्तावों तक सीमित था। गाँधी जी ने अपने व्यक्तित्व से उसे एक जन आंदोलन बना दिया। यही गाँधी जी का भारत की आजादी में और विश्व में साम्राज्यवाद की जड़ खोदने में महत्वपूर्ण योगदान है। परन्तु हिन्दू समाज के विनाश में उनके

योगदान की कहानी बहुत लंबी है। इसका दयनीय पक्ष यह है कि वह स्वयं अपने कथनानुसार धर्मनिष्ठ हिन्दू थे और इस युग के सबसे अधिक विख्यात हिन्दू थे। उनके जीवन के इस अद्‌भुत परन्तु अनिष्टकारी पक्ष को भी देखना आवश्यक है।

कदाचित गाँधी जी के चमत्कारिक व्यक्तित्व की अनुपस्थिति में तर्क और नये तथ्यों की ठंडी कसौटी पर उनके चिंतन और कार्यो के विश्लेषण से हमें गाँधी जी के उस रहस्यमय पक्ष का कुछ ज्ञान संभव हो जाय जो उनकी चकाचौंध के कारण साधारण हिन्दू की दृष्टि से छिपा रहा है।

पारिवारिक पृष्ठ भूमि तथा प्रारम्भिक काल –

गाँधी जी का जन्म २ अक्टूबर १८६६ ई० को गुजरात प्रान्त में पोरबन्दर के एक वैश्य परिवार में हुआ। इनका जन्म का नाम मोहनदास था। घर में प्यार से मोहनिया कहा जाता था। गुजरात में गाँधी पंसारी को कहते हैं। इस परिवार के लोग कभी पंसारी का धंधा करते थे। इसलिये गाँधी पारिवारिक नाम हो गया। गुजरात में बेटे के नाम के साथ पिता का नाम भी लगाया जाता है। इसलिये मोहनदास का पूरा नाम मोहनदास करम चन्द गाँधी हुआ क्योंकि करमचन्द इनके पिता का नाम था। पोरबन्दर उस समय एक देशी राज्य था और एक अच्छा बन्दरगाह था।

गाँधी जी अपने पिता की शिक्षा के बारे में लिखते है : "पिता जी की शिक्षा केवल अनुभव की थी जिसे आज हम गुजराती की पांचवी पोथी की पढ़ाई कहते हैं। **इतिहास भूगोल के ज्ञान से तो वह बिल्कुल कोरे थे। धार्मिक शिक्षा नहीं के बराबर थी पर मन्दिर में जाने और कथा आदि सुनने से जो धर्म ज्ञान (अथवा अंध विश्वासी श्रद्धा – लेखक) असंख्य हिन्दुओं को सहज में मिल जाता है वह इन्हें मिला।"**

गाँधी जी ने अपनी आत्म कथा प्रौढ़ावस्था में लिखी थी। स्पष्ट है कि मन्दिर में जाने और कथा आदि सुनने को गाँधी जी जीवन भर धर्म ज्ञान समझते थे।

अपनी मां पुतलीबाई के बारे में उन्होंने लिखा है : " माताजी साध्वी स्त्री थीं। बड़ी भावुक। पूजा पाठ के बिना कभी भोजन न करतीं। **वैष्णों मन्दिर पर रोज़ जातीं। मैंने जबसे होश संभाला याद नहीं पड़ता कि उन्होंने चातुर्मास्य का व्रत कभी छोड़ा हो।**

अपने माता पिता दोनों ही के विषय में गाँधी जी ने लिखा है कि वह बहुत व्यवहार कुशल थे। फिर अपने विषय में उन्होंने लिखा है: **"मुझे साधारणतः स्कूली किताबों के सिवा और कुछ पढ़ने का शौक न था।" गाँधी जी की आत्म कथा में कहीं भी भारतीय इतिहास, वेद और उपनिषद का जिक्र नहीं है। उसमें व्रत हैं, मन्दिर हैं, भूत–प्रेतों का भय है, राम रक्षा स्तोत्र तथा अन्ध विश्वास और मूढ़**

श्रद्धा की पोषक पौराणिक कथायें है। उसमें तीव्र परन्तु मूढ़ भावुकता से ओत प्रोत श्रवण कुमार और महाराज हरिश्चन्द्र की कहानियां हैं। जिनको सुनकर उनकी आंखों में "आज भी आंसू आ जायेंगे।"

युवा श्रवण कुमार अपने अन्धे माता–पिता को कांवर में बिठाकर तीर्थ यात्रायें कराता फिरता है। स्पष्ट ही न माता–पिता को और न श्रवण कुमार को यह पूछने की फुर्सत है कि तीर्थ यात्रायें मानव जीवन में किस प्रकार उपयोगी हैं ? क्या वह तीर्थ यात्री का अथवा समाज का रत्ती भर भी भला करती हैं ? उनका लाभ तो केवल आवागमन से सम्बन्धित भाड़ा गाड़ियों के मालिकों और पूजा के व्यवसाय में लगे पंडे पुजारियों को ही मिलता है।

हरिश्चन्द्र अपनी हठ को पूरा करने के लिये और अपने को सत्यवादी सिद्ध करने के लिये अपनी स्त्री और पुत्र को गुलामी में बेंच देते हैं। यह सतयुग की कथायें हैं। इस भ्रष्ट कलयुग में भी यह भारतीय दण्ड संहिता के अनुसार मानवता विरोधी घोर अपराध है। किन्तु गाँधी जी को भावुकतावश इसमें कोई दोष दिखाई नहीं देता।

गाँधी जी को अपने बचपन में जो घोर पौराणिक संस्कार अपने परिवार से मिले थे उनको सुसंस्कृत करने का न उन्होंने कभी प्रयास किया और न वह कभी बदल पायें। वह लिखते हैं: रामायण श्रवण मेरे आत्यन्तिक प्रेम की बुनियाद है। मैं आज तुलसीदास की रामायण को भक्ति मार्ग का सर्वोत्तम ग्रन्थ मानता हूँ। (आत्म कथा पृ०–५१)....."**राजकोट में मुझे अनायास सब सम्प्रदायों के प्रति समान भाव रखने की शिक्षा मिली। हिन्दू धर्म के प्रत्येक सम्प्रदाय के प्रति समान भाव रखना सीखा क्योंकि माता–पिता हवेली जाते, शिवालय जाते और राम मन्दिर भी जाते और हम भाइयों को भी ले जाते या भेजा करते।**

"इसके सिवा पिता जी के पास जैन धर्माचार्यों में से कोई न कोई सदा आते रहते .....मुसलमान और पारसी मित्र भी जो अपने अपने धर्म के बारे में चर्चा किया करते थे .....इस सारे वातावरण का असर मेरे ऊपर यह हुआ कि सब धर्मों के प्रति मेरे मन में समभाव उत्पन्न हो गया।"

स्पष्ट है कि गाँधी जी ने सभी धर्मो के लोगों से अपने अपने धर्म की प्रशंसा ही सुनी थी। उन्होंने जीवन में कभी उनके मूल ग्रन्थों को देखकर उनका तुलनात्मक अध्ययन नहीं किया था। इन धर्मों के अनुयाइयों के व्यवहार का इतिहास क्या रहा है उसे भी पढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं समझी। न उनके अंधेरे पक्ष को देखने का **उन्हें कोई अवसर प्राप्त हुआ था। इस कारण वह जीवन भर एक भ्रम में फंसे रहे और उसी भ्रम का प्रचार करते रहे। वह भ्रम था कि "सभी धर्म सच्चे हैं। सभी समान रूप से सच्चे हैं। सभी प्रेम और अहिंसा पर बल देते हैं।" किसी भी अहिन्दू धर्म के धर्माचार्य द्वारा यह बात नहीं कही गई है – स्वयं उनके नजदीकी**

मुसलमानों और ईसाइयों ने भी इस बात को स्वीकार नहीं किया। कर भी नहीं सकते थे क्योंकि उनके धर्म तो गैर धर्मों के अनुयाइयों से घोर घृणा की शिक्षा देते हैं। यदि आवश्यक हो और परिस्थिति अनुकूल हो तो हिंसा की भी।

उनके जैसे विख्यात और आदर प्राप्त हिन्दू महात्मा द्वारा इस भ्रामक प्रचार का लगातार तीस वर्ष प्रचार करने का असर हिन्दुओं पर ही पड़ा और उसका दुष्फल हिन्दू समाज को भोगना पड़ा और पड़ रहा है। **वास्तविकता यह है कि धर्मों की पहचान ही उनके दूसरे धर्मों से विरोध के कारण होती रही है। मोटी सी बात ही ले लें तो मूर्ति खण्डन को अति पुण्यशाली कर्म तथा कर्तव्य समझने वाला मूर्ति पूजा को अक्षम्य पाप और मूर्ति पूजक को मूत्र तथा विष्ठा से भी अधिक नापाक समझने वाला इस्लाम धर्म का अनुयायी मूर्ति पूजक हिन्दू धर्म से कैसे प्रेम कर सकता है ? कैसे उसे सम्मान और श्रद्धा दृष्टि से देख सकता है ? अदृश्य जीव जन्तुओं की भी हिंसा न करने वाला जैन पशुबलि चढ़ाने वाले हिन्दू अथवा इस्लाम मत को समान आदर कैसे दे सकता है ? गौमांस को सर्वोत्तम भोजन समझकर खाने वाले ईसाई और मुसलमान और गौभक्ति और गौरक्षा को मुख्य धर्म मानने वाले हिन्दू एक दूसरे के धर्म को समान आदर कैसे दे सकते हैं ?** गाँधी जी के इस दृष्टिकोण के दोष के कारण ही भारत विभाजन में उनकी मुख्य भूमिका रही है, यद्यपि वह स्वयं सदैव विभाजन का विरोध करते रहे। यह बात आगे चलकर और भी विस्तार से देखी जायेगी।

इस प्रकार की सुनी सुनायी धारणाओं पर आधारित विश्वास के कारण उन्होंने दयानन्द जैसे विद्वान समाज सुधारक की निंदा की जिसने न केवल वेद और उपनिषदों का अपूर्व ज्ञान प्राप्त किया था अपितु इस्लाम और ईसाई मत की धर्म पुस्तकों का भी अध्ययन कर पहली बार उनकी तुलनात्मक समीक्षा की थी। और उसी के फलस्वरूप हिन्दू समाज को इन मतों के खतरे से सावधान किया था।

दयानन्द ऋषिकृत ग्रन्थों, वेदों, उपनिषदों आदि को प्रमाण मानते थे। उन रीति–रिवाजों और विश्वासों को जो इन ग्रन्थों के विरुद्ध थे हिन्दू धर्म में स्वार्थी लोगों द्वारा महाभारत के पश्चात के पतन काल में धर्म ग्रन्थों में की गई मिलावट समझते थे। उनकी प्रबल धारणा थी कि ऋषिकृत ग्रन्थों में मानवता, विज्ञान, नैतिकता विरोधी आदेश अथवा विचार नहीं हैं और उनके ऋषिकृत होने की यही पहचान और गारन्टी है। गाँधी जी परम्परागत सुनी सुनाई बातों, पौराणिक कथाओं तुलसीदास रामायण के भक्ति पक्ष इत्यादि और अपनी आत्मा की आवाज को ही धर्म समझते थे। इसी कारण श्रद्धानन्द को गाँधी जी की बात काटने के लिए कहना पड़ा था मेरी भी एक आत्मा है और उसकी भी एक आवाज है।

गाँधी जी ने १६ वर्ष की आयु में मैट्रिक पास किया जिस आयु में भारत में आज भी अनेक युवक बी०ए० पास कर लेते हैं।

विलायत में भी गाँधी जी ने कतिपय धार्मिक पुस्तकों और अपनी पाठ्य पुस्तकों के अलावा कुछ नहीं पढ़ा। हंसराज रहबर तीखा व्यंग्य करते हुए लिखते हैं : "दरअसल पढ़ने की खास जरूरत भी नहीं थी। परीक्षा पास करने के लिये डिनर खाने पड़ते थे और 'सभ्यता' सीखनी पड़ती थी। गाँधी ने भी डिनर खाये और परीक्षा पास कर ली। **पौराणिकता के जिस खोल में बन्द गाँधी विलायत गया था उसी में बन्द स्वदेश लौट आया।"**

२६ जनवरी, १६३६ को गोखले एजूकेशन सोसाइटी के स्कूल ऑफ पॉलिटिक्स एंड एकानामिक्स में भाषण देते हुये दूसरी बातों के साथ अम्बेडकर ने एक महत्वपूर्ण बात गाँधी युग के विषय में कही थी जिसका उद्धृत करना समीचीन होगा। उन्होंने कहाः रानाडे का युग (गाँधी युग की अपेक्षा) ईमानदार और प्रबुद्ध था। रानाडे के समय में नेता भारत के आधुनिकीकरण के प्रयास कर रहे थे। वह शलीनता पूर्ण ढंग के कपड़े पहनते थे। ऐसा राजनेता जो विद्वान और अध्ययन शील न हो असहाय कंटक समझा जाता था। उस युग में लोग अपना समय अध्ययन में और जीवन की यथार्थता को समझ कर अपने जीवन को अपने अध्ययन और अनुसंधान के प्रकाश में ढालने में व्यतीत करते थे। गाँधी युग में नेता अर्धनग्न (धोती) रहने में गर्व अनुभव करते हैं। वह भारत को पुरातनता का जीवित नमूना बनाने में लगे हैं। **राजनेता के लिये विद्वता आवश्यक नहीं समझी जाती। लोगों ने अध्ययन करना छोड़ दिया है।"** अम्बेडकर के अनुसार गाँधी युग भारत का अंध युग कहा जायगा।

नोटः पाठक निष्पक्ष होकर विचार करें तो देखेंगे कि जहाँ लोकमान्य तिलक, लाजपत राय, विपिन चन्द्र पाल, गोखले, मालवीय इत्यादि नेता विद्वता के क्षेत्र में अपना सानी नहीं रखते थे, गाँधी जी केसहस्रों भक्त नेताओं में मूर्धन्य विद्वान और विचारक कठिनता से दो चार मिलेंगे और उन्हीं से (नेहरू को छोड़ कर शेष सभी से) गाँधी अप्रसन्न रहे।

गाँधी जी की चर्चा हम अम्बेडकर का अध्ययन करते समय भी यथास्थान करेंगे।

इस प्रकार के वातावरण में जन्मे और पले व्यक्ति की जो दशा यथार्थ से सामना पड़ने पर होती है वही गाँधी जी की भी हुई। अपने पहले मुकदमें में जब वह जिरह के लिए खड़े हुए तो : "पैर कांपने लगे, सिर घूमने लगा, मुझे मालूम हुआ कि सारी अदालत घूम रही है। सवाल क्या पूछूँ यह सूझ नहीं पड़ता था। जज हंसा होगा वकीलों को तो मज़ा आया ही होगा पर मेरी आंखे क्या कुछ देख पाती थीं ?"

इतने वर्ष विलायत में रहने के पश्चात गाँधी जी का इस प्रकार का व्यवहार और बाद में उनकी सहस्रों लोगों को मुग्ध कर देने वाले व्यक्तित्व और वाणी का विकास एक चमत्कार ही लगता है। न्यायालय में अपने पहले अनुभव के पश्चात

गाँधी जी मुकदमें लड़ने के स्थान पर दोनों पक्षों में समझौता कराने का ही व्यवसाय करने लगे। सहस्रों वर्षें में अर्जित उनकी पारिवारिक व्यवसायी बुद्धि इस कार्य के लिये सर्वथा उपयुक्त थी। सुलह समझौते में वास्तविक स्वामी को शान्ति स्थापित करने के लिये कुछ न कुछ रियायत करनी ही पड़ती है और झूठा दावा करने वाले दुराग्रही, काइयां दावेदार को कुछ न कुछ प्राप्त हो ही जाता है।

इसी समझौता परक कार्यशैली के कारण सत्य और अहिंसा के नाम पर गाँधी जी जीवन भर झूठे, धौंसिया और ताकतवर पंक्षों की रज़ा मनावन करते रहे और अपने कमज़ोर भक्तों को दबाते रहे। उनके इस स्वभाव से और हिन्दू समाज पर उनके व्यापक प्रभाव के कारण इस समाज को गाँधीवाद से जो हानि उठानी पड़ी उस पर कुछ विचार आगे चलकर उपयुक्त स्थान पर करेंगे।

गाँधी जी एक मुस्लिम व्यवसाई के घरेलू मुकदमों की पैरवी करने हेतु अफ्रीका गये। वहां एक अपमानजनक वैयक्तिक घटना ने उन्हें वकालत से मोड़कर एक महान सन्त और राजनीतिज्ञ के पद पर ला बिठाया। ट्रेन में सफर करते समय प्रथम श्रेणी का रेलवे टिकट होते हुए भी एक अंग्रेज यात्री के कहने पर पुलिस ने सामान समेत गाड़ी से उठाकर उनको प्लेट फार्म पर फेंक दिया। दक्षिण अफ्रीका के प्रारम्भिक जीवन में श्वेतों द्वारा पग पग पर उनको अपमानित होना पड़ा और यहीं से उनका राजनीति में प्रवेश प्रारम्भ हुआ। **आगे चलकर गाँधी जी ने स्वीकार किया कि दक्षिण अफ्रीका की ट्रेन की यह घटना उनके जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना थी।**

इस विषय में गाँधी और अम्बेडकर में एक अद्‌भुत सादृष्यता है। गाँधी ने दक्षिण अफ्रीका में गोरो द्वारा अपमान के जो घोर कड़वे घूट पिये थे उनके कारण गोरो के प्रति उनका रोष और उनके विरुद्ध जीवन पर्यन्त संघर्ष इसी अपमान की स्वाभाविक उपज थी। परन्तु गाँधी सदैव चतुराईपूर्वक गोरों के प्रति किसी रोष अथवा घृणा से इन्कार करते रहे।

अम्बेडकर की पूरी राजनीति सवर्ण हिन्दुओं द्वारा अछूतों के प्रति घृणित और अपमानजनक व्यवहार के विरुद्ध क्षोभ पर आधारित थी। परंतु उन्होंने कभी भी उस क्षोभ को छिपाने का ढोंग नहीं किया। इन अर्थों में अम्बेडकर गाँधी से अधिक सत्याचारी माने जायेंगे। इसीलिये इस लेख के आरम्भ में गाँधी जी की विलक्षण सत्यता पर कुछ विद्वानों द्वारा जैसी टीका टिप्पणी उद्‌घृत की गई है वैसा आरोप अम्बेडकर पर कभी नहीं लगाया गया। न दयानन्द पर। यदि कुछ दोष लगाया भी गया है तो वह अत्यधिक स्पष्ट भाषी होने का ही लगाया गया है।

गाँधी जी महात्मा बने –

स्वराष्ट्र में गोडाल एक छोटी सी रियासत थी। इसके राजा ने गाँधी को

दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के लिए कुछ रूपया भेजा था। भारत लौटने पर गोखले की सलाह से गाँधी राजा को धन्यवाद देने गोडाल गये। वहाँ की राज सभा में राज वैद्य जीव राम कालीदास ने गाँधी को महात्मा की उपाधि प्रदान की और पीले कपड़े पर छपा संस्कृत और गुजराती में मान पत्र भेंट किया। (हंसराज रहबरः 'गाँधी बेनकाब पृ०–१३३)

गाँधी जी सदैव ही दुष्टता, असत्य और हिंसा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करते रहे। किसी भी विदेशी विजेता की भांति अंग्रेजों ने भी भारत का आर्थिक शोषण किया किन्तु मुस्लिम शासकों की भांति उन्होंने उनके पूजा स्थलों और उपास्य देवी देवताओं की मूर्तियों को नहीं तोड़ा। आतंक फैलाने के लिये निरपराध लोगों का कत्ले आम नहीं करवाया। उनकी खोपड़ियों के स्तूप नहीं बनाये। उन्हें गुलाम बनाकर बाज़ारों में नहीं बेचा। उनकी बहू बेटियों को बलात अपने विलास की वस्तु नहीं बनाया। परन्तु हम देखेंगे कि अंग्रेजों द्वारा की गई क्रूरता और हिंसा में ही उन्हें दोष दिखाई देते थे। एक सहस्र वर्षों तक और अपने काल में भी मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं पर किये गये अत्याचारों पर उन्होंने कभी उंगली नहीं उठाई।

अम्बेडकर ने इस विषय में लिखा है कि "यद्यपि गाँधी जी किसी भी और प्रत्येक हिंसात्मक कार्य की निन्दा करने से नहीं चूकते थे, उन्होंने कभी भी मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं के विरुद्ध की गयी हिंसा पर उनका जवाब तक भी तलब नहीं किया। उन्होंने अपने मुस्लिम सहयोगियों पर उस हिंसा की निन्दा करने के लिए भी ज़ोर नहीं डाला।"

इसलिये हमें यह कहने के लिये विवश होना पड़ता है कि सत्य और अहिंसा के प्रति उनकी प्रतिबद्धता सैद्धान्तिक न होकर चयनात्मक थी जो परिस्थितियों के साथ बदलती रहती थी। आगे चलकर इसके अनेक उदाहरण मिलेंगे। कोई आश्चर्य नहीं कि लार्ड वैवेल सहित अनेक अंग्रेज उनकी इस शैली को धूर्तता कहते थे।

एक भ्रमित व्यक्तित्व –

गाँधी के भ्रमित व्यक्तित्व पर जोधपुर विश्व विद्यालय के दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर एम०एम०कोठारी ने एक पूरी पुस्तक ही लिखी है – "क्रिटीक ऑफ गाँधी"। प्रकाशक हैं: क्रिटीक पब्लिकेशन्स ६८५, ५ वीं उमेद हास्पिटल रोड, जोधपुर – ३४२ ००३ । पुस्तक गाँधी जी के चरित्र के उन पक्षों को उजागर करती है जिनके कारण २० वीं शताब्दी का यह सर्वाधिक चर्चित और प्रशंसित व्यक्ति अपने द्वारा स्थापित सभी सिद्धान्तों में संसार का सर्वाधिक असफल व्यक्ति रहा। जो अपने को शान्ति और अहिंसा का दूत कहता था परन्तु जिसकी दोषपूर्ण नीतियों के कारण

इतनी हत्यायें हुई जितनी दोनों विश्व युद्धों में मिलाकर नहीं हुई थीं। निर्दोष स्त्री पुरुषों और बच्चों पर इतने अत्याचार हुये जितने हिटलर मुस्सोलिनी और स्टालिन द्वारा मिलाकर भी नहीं हुये थे।

इस प्रकार के अध्ययन और उसके परिणामों को गाँधी में अगाध विश्वास रखने वाले देव विरोध (Blasphemy) कह सकते हैं परन्तु प्लेटो के वाक्य के अनुसार (किसी विश्वास का) खण्डन ही उसको शुद्ध करने की मुख्य और महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। जो खंडन (तर्क) की अग्नि से शुद्ध होकर नहीं निकला, वह महाबली शासक होते हुये भी भयानक रूप से अशुद्ध माना जायगा। इसलिये राम कृष्ण परम हंस ने कहा था "महात्मा पर दिन में भी दृष्टि रखो और रात में भी" क्योंकि महात्मा के आवरण में यदि एक ओर भगवान हो सकते हैं तो दूसरी ओर शैतान भी। प्रो० कोठारी की पुस्तक को इसी दृष्टि से पढ़ना चाहिये।

वैसे तो गाँधी जी ने अनेक भ्रम पाल रखे थे परन्तु इन में चार मुख्य थे :

१– कि वह वास्तव में एक महान आत्मा थें और गौतम बुद्ध तथा ईसा मसीह की भांति विशेष धर्म स्थापना के लिये पृथ्वी पर भेजे गये थे।

२– कुछ व्रतों के पालन द्वारा (अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य)"महात्मा" अपराजेय आत्मिक शक्ति उपार्जन कर लेता है और इसके द्वारा मानव समाज को बदल देने अथवा उसके मार्ग को विशिष्ट दिशा देने में सक्षम हो जाता है।

३– क्योंकि उन्होंने इन व्रतों का पालन किया था, उन्हें यह शक्ति प्राप्त हो गई थी और वह अपनी इच्छा दूसरों से मनवा सकते थे।

४– इस्लाम और ईसाई मत भी प्रेम और अहिंसा पर बल देते हैं। इसलिये इन धर्मो के और दूसरे धर्मो के अनुयाइयों में स्थायी एकता संभव है।

गाँधी जी धीरे धीरे अपने अवतारी अथवा पैगम्बर होने पर विश्वास करने लगे थे। "मैं चाहता हूँ कि तुम दैव की इस आवाज को सुनो जो मैं प्रतिध्वनित कर रहा हूँ"। "मैं तो केवल एक ट्रांसमीटर हूँ जो ईश्वर द्वारा भेजे गये संदेश को प्रतिध्वनित कर रहा है"। "मेरा विश्वास है कि मैं ईश्वरीय आदेशों का पालन कर रहा हूँ।"

पैगम्बरों की भांति सीधे सीधे ईश्वर से वार्ता का अनुभव – १९३५ में २१ दिन के उपवास के विषय में उन्होंने लिखा था – "मैं पहले दिन रात को जब सोने गया तो अगले दिन से उपवास प्रारम्भ करने की घोषणा का मेरा लेश मात्र भी विचार नहीं था। रात के लगभग १२ बजे मुझे जैसे किसी ने जगा दिया हो और सहसा ही मेरे कान में कहा – तुम्हें उपवास करना है। मैंने पूछाः कितने दिन ? आवाज़ आई–२१ दिन। मैंने पूछा "कब ?" उत्तर मिला "कल"। उनके भक्तों ने तुरन्त उनका ईश्वर से सीधे सीधे वार्ता सम्बन्ध होने का प्रचार प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने

गाँधी जी से पूछा कि जो आवाज़ उन्होंने सुनी थी वह कैसी थी। गाँधी जी ने उत्तर दिया – "वह ईश्वर की वाणी थी। मेरे लिये वह उतनी ही यथार्थ थी जितना मेरा अस्तित्व"।

२५ अगस्त, १९३४ को उन्होंने लिखा था : इन उपवासों के लिये मैं ज़िम्मेदार नहीं हूँ। .....मैं उन्हें इसलिये सहन कर पाता हूँ कि यह एक ऊँची शक्ति के आदेश से करने पड़ते हैं।"

सितम्बर, १९४७ में किसी ने उनसे पूछा कि क्या वह उपवास करने का विचार कर रहे हैं उनका उत्तर था – "मैं प्रकाश के लिये प्रार्थना कर रहा हूँ। कदाचित आज रात मुझे स्पष्ट आदेश प्राप्त हो जाय।" जनवरी १९४८ में अंतिम उपवास के समय उन्होंने कहा था – मैं सावधानी से कान लगाये अंतरात्मा के आदेश सुनने का प्रयास कर रहा हूँ। उपवास के मध्य उन्होंने मनु से कहा था– मैं ईश्वर के अधीन हूँ। उसी के आदेश से यह उपवास कर रहा हूँ। जब उसकी इच्छा होगी तभी यह समाप्त होगा" ..... मेरा एक मात्र पथ प्रदर्शक अथवा अधिनायक ईश्वर है वह सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी है ..... मैं उसी के हाथों में हूँ।

वास्तविकता क्या थी ? **लारी कालिन्स और डामनीक लैपियरे ने अपनी पुस्तक माउंटवैटन एंड पार्टीशन ऑफ इंडिया में पृ०–५२ पर स्पष्ट लिखा है कि गाँधी जी के अहम को जगाकर जिसने उपवास के लिये उन्हें प्रेरित किया था वह माउंटवैटन था – ईश्वर नहीं।**

विश्व इतिहास में अपनी अवतारी भूमिका में वह अपने अवतरण का मुख्य ध्येय, सत्य, अहिंसा को सत्याग्रह के नाम से सर्वशक्तिशाली सिद्ध करना समझते थे। इसके द्वारा वह क्रूर से क्रूर, हिंसा के पुजारी को पराजित करना सम्भव समझते थे। उनके अनेक वाक्य उनके इस भ्रम को उजागर करते हैं –

१– 'सत्याग्रह के शब्द कोष में "शत्रु" शब्द नहीं है।'

२– 'सत्याग्रही पराजय कभी स्वीकार नहीं करता।'

३– 'सत्याग्रही कभी असफल नहीं होता।'

४– 'अहिंसा कभी असफल नहीं होती। वह अपराजेय है।'

५– 'वीरों को शस्त्रास्त्रों की आवश्यकता बहुत कम होती है।'

६– 'वीरता मारने में नहीं मरने में है। अहिंसावादी परिणामों की चिन्ता नहीं करते।'

उनका कहना था : मैं अत्याचारी की तलवार को दूसरी तलवार से कुंठित करने में विश्वास नहीं करता। भौतिक शक्ति द्वारा उसका विरोध न कर मैं उसे निराश ही करूँगा। मैं जिस आत्मिक विरोध से उसका सामना करूँगा उससे वह स्तंभित हो जायगा। पहले वह चकाचौंध हो जायगा और फिर उसकी शक्ति को

स्वीकार करने पर बाध्य हो जायगा जिसके होने पर उसकी भी आत्मोन्नति होगी"।

दो और उदाहरण प्रस्तुत हैं – गुण्डों और हत्यारों के बारे में जब उनसे शिकायत की गई तो उन्होंने कहा–

"उनमें (गुण्डे में) और तुम में एक ही आत्मा है। वह तुम्हारे हाथों मारा जाय उससे यह उत्तम है कि तुम उसके हाथों मारे जाओ"। चोरों और डाकुओं से रक्षा का उपाय देखिये : **"समझो कि वह (चोर डाकू) एक रोग से ग्रस्त हैं। अपने दरवाजे और खिड़कियां (उसकी सुविधा के लिये) खुली छोड़ दो। अपना कीमती सामान उसके सुविधाजनक स्थान पर सजा दो। वह यह सब देखकर चकित हो जायगा। पश्चाताप करेगा आपसे क्षमा मांगेगा। चुराई हुई वस्तुयें वापिस कर देगा। चोरी करना छोड़ देगा और आपका गुलाम हो जायगा।"** पता नहीं कितने गाँधी भक्तों ने उनकी इस शिक्षा का अनुसरण किया है।

पंजाब से भाग कर आये शरणार्थियों को उनका उपदेश देखिये– **"यदि पंजाब के सभी पंजाबी बिना बदले में मारे स्वयं कत्ल हो गये होते तो पंजाब का नाम अमर हो जाता"**। नोआखाली के उन लोगों को जिनके पुरुष और बच्चे उनकी आंखों के सामने वध कर दिये गये थे और उनकी बहू बेटियों का निकाह उनके कातिलों से पढ़वा दिया गया था उनका संदेश था : **"यदि हिन्दुओं ने आखिरी व्यक्ति के मरने तक साहस दिखाया होता तो वह हिन्दू धर्म की मुक्ति और इस्लाम की शुद्धि का दिन होता"**।

अधिक उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं। गाँधी के अनुयाइयों ने सत्ता प्राप्त होने पर कितना साहस दिखाया अथवा दिखा रहे हैं वह उनमें से केवल कुछ की सुरक्षा पर प्रति वर्ष व्यय किये जा रहे धन के आंकड़ों से स्पष्ट हो जायगा –

जवाहर लाल नेहरू	–	आंकड़े उपलब्ध नहीं है।
इंदिरा गाँधी	–	आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं।
राजीव गाँधी	–	आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं।
वी०पी० सिंह	–	७.२ करोड़ रूपये।
चन्द्रशेखर	–	७.२ करोड़ रूपये।
नरसिंह राव	–	१६.२ करोड़ रूपये।
सोनिया गाँधी परिवार	–	५.४५ करोड़ रूपये।
देवेगोड़ा और परिवार	–	१४.४ करोड़ रूपये।
इन्दर कुमार गुजराल	–	६.०२ करोड़ रूपये।

(स्रोत – इंडिया टुडे ३१–५–६७)

सब मिलाकर वैयक्तिक सुरक्षा पर भारत के नागरिकों की गाढ़ी कमाई का ७५ करोड़ रूपया प्रतिवर्ष व्यय होता है।

भारत की प्रति व्यक्ति आय है मात्र २१७ डालर, लगभग ८००० रूपये वार्षिक।

यह है गाँधीवादियों का समाजवाद और गाँधीवाद पर विश्वास। भ्रमित गाँधी के अहिंसा और सर्वधर्म समभाव के खोखले नारों ने हिन्दू को भले ही भ्रमित किया हो विश्व के किसी दूसरे व्यक्ति अथवा समुदाय को प्रभावित नहीं किया यद्यपि अहं ग्रस्त गाँधी बुद्ध और ईसा मसीह बनने की महत्वाकांक्षा लिये अनेक राष्ट्रों को उसका उपदेश देते रहे –

चीन को	–	२७.८.१९३८ को
जेकों को	–	१५.१०.१९३८ को
बहादुर पोलैंड निवासियों को	–	८.९.१९३९ को
प्रत्येक ब्रिटिश नागरिक को	–	२.७.१९४० को
प्रत्येक ब्रिटिश नागरिक को	–	११.५.१९४२ को
प्रत्येक जापानी को	–	१८.७.१९४२ को
बिहार को	–	२९.९.१९४६ को
बिहार को	–	६.११.१९४६ को
दक्षिण अफ्रीका को	–	२५.५.१९४७ को

गाँधी जी के सत्याग्रह के रोग से होने वाले दुष्परिणामों की फ़हरिस्त बहुत लम्बी है। केवल कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे।

भारत में ९०० के लगभग भाषायें बोली जाती हैं। यदि भाषा पर आधारित राज्यों में देश का विभाजन किया जाय तो कदाचित एक एक तहसील जितना एक एक राज्य बनेगा।

गाँधी जी के साथ जो ७९ शिष्य डंडी मार्च पर गये थे उनमें एक थे पोट्टी श्रीरामालू। २० अक्टूबर, १९५२ को वह इस मुद्दे को लेकर आमरण उपवास पर बैठ गये कि एक अलग आन्ध्र प्रदेश बनाया जाय। जवाहर लाल और उनका मंत्रिमंडल भाषाई प्रान्तों के अलगाववादी जोखिम को खूब समझता था और उनके विरुद्ध था। परन्तु १५ दिसम्बर १९५२ को रात्रि ११.२० पर पोट्टी श्रीरामालू की भूख हड़ताल से मृत्यु हो गई। बस फिर क्या था। विप्लव का लावा फूट पड़ा। रेलगाड़ियां लुट गईं। २ करोड़ की हानि राष्ट्र को हुई। **गाँधीवादी श्री रामालू की अहिंसात्मक भूख हड़ताल से उत्पन्न घोर हिंसा से घबरा कर १८ दिसम्बर को मंत्रिमंडल ने मजबूर होकर "आन्ध्र प्रदेश" बनाये जाने की स्वीकृति दे दी। १९६६ में पंजाब भाषाई प्रांत बना। उसका हिन्दी भाषी हरियाणा से झगड़ा समाप्त होने का नाम नहीं लेता।**

राष्ट्रहित के बड़े बड़े कार्यों में जैसे राष्ट्रीय मार्ग, रेलवे लाइन, नहर अथवा बांध इत्यादि में स्थानीय लोगों की भूमि का अधिग्रहण अनिवार्य होता है। लाभ

बहुधा उनको न मिलकर दूरस्थ क्षेत्रों में पहुंचता है। स्थानीय लोगों के असंतोष का लाभ उठाकर अथवा किसी दूसरे बहाने से (पर्यावरण आदि) कोई भी चालाक व्यक्ति भूख हड़ताल पर बैठ कर रातो रात नेता बन जाता है। मुख्य मंत्री और प्रधानमंत्री उसकी जान बचाने के लिये दौड़ने लगते हैं। वह समाचार पत्रों की सुर्खियों में छा जाता है। जनहित के यह बड़े प्रोजेक्ट ठप हो जाते है अथवा उन पर निर्माण कार्य में देरी होने के कारण व्यय बढ़ जाता है। इंजीनियरिंग के यह विशाल जनहित के कार्य "सत्याग्रह" की दया पर बनने बिगड़ने लगते हैं।

टिहरी डैम इस सत्याग्रह का एक उत्तम उदाहरण है। बरसात के दिनों में गंगा अथाह पानी सागर में ले जाकर डाल देती है। उस समय उस पानी की सिंचाई के लिये आवश्यकता नहीं होती। टिहरी डैम जैसी योजनाओं द्वारा ही इस पानी को इकट्ठा कर बरसात के बाद आवश्यकतानुसार सिंचाई और बिजली उत्पादन के लिये उपयोग में लाया जा सकता है। टिहरी डैम गंगा की एक शाखा भागीरथी पर २६०.५ मीटर ऊंचा मिट्टी पत्थर का डैम बनाकर २६१५०००००० घन मीटर बरसाती पानी को इकट्ठा करने की योजना है। इससे २.७० लाख हेक्टेयर अतिरिक्त भूमि की सिंचाई होगी और १००० मेगावाट बिजली का उत्पादन होगा। १९८६ में इस योजना का मूल्य १३४६ करोड़ रूपये आंका गया था। योजना देश के सर्वोच्च प्राविधिक विशेषज्ञों और संस्थानों के परामर्श और छानबीन के बाद बनाई गई थी। रूसी विशेषज्ञों ने भी इसको जांच परख लिया था। परन्तु एक स्थानीय नेता के "सत्याग्रह" के कारण यह योजना कभी चलती है कभी बंद हो जाती है। न मरने दी जाती है न परवान चढ़ने दी जाती है। इस बीच राष्ट्र का लगभग १००० करोड़ रूपया इस पर खर्च हो गया बताते हैं। बढ़ती कीमतों के कारण इसका मूल्य सुरसा के मुँह की भाँति बढ़ता जाता है।

अब स्थिति यह है कि छात्र नकल रोकने अथवा पर्चा कठिन होने पर सत्याग्रह करते हैं तो व्यापारी व्यापार सम्बन्धी किसी छोटी मोटी बात को लेकर। बस, ट्रक और इंजन ड्राइवर जब चाहे चक्का जाम कर देते है। डाक्टर आये दिन सत्याग्रह करते हैं और चिकित्सालयों का कार्य ठप हो जाता है। बिजली कर्मचारी बिजली, पानी वाले पानी, टेलीफोन वाले संचार व्यवस्था जब चाहे खराब कर देते हैं। वकील जब चाहे न्यायालय बंद करवा देते हैं। सरकार इस "सत्याग्रह" रूपी हथियार के सामने बेबस है। अनुशासनहीनता का दूसरा नाम "सत्याग्रह" हो गया है।

इसका दूसरा पक्ष भी है। वी०पी०सिंह बहुधा गाँधी का नाम जपा करते हैं। उनके प्रधानमंत्रित्व काल में जाति के नाम पर आरक्षण को लेकर लगभग २० नवयुवकों ने आत्म दहन कर लिया। यह आत्म दहन इस गाँधीवादी का मन पिघलाने में सफल नहीं हुये किन्तु यही वी०पी० सिंह अपने यू०पी के मुख्य

मंत्रित्वकाल में एक मुसलमान उप–सम्पादक की हत्या पर जिसका कारण वैयक्तिक था उसके घर भागे गये और सरकार की ओर से उसके परिवार को एक अच्छी रकम भेंट कर आये।

जैसा गाँधी जी ने स्वयं स्वीकार किया है उनका सत्याग्रह और उपवास का हथियार केवल उनके विरुद्ध कारगर होता है जो सत्याग्रही के प्रति स्नेह रखते हैं। अमानवीय अत्याचारी के विरुद्ध वह अप्रभावी है। इसका सीधा अर्थ यह है कि नैतिक मूल्यों को मानने वाले उन लोगों को जो आपसे स्नेह रखते है अथवा दयालु हैं आप सत्याग्रह और उपवास के नाम पर ब्लैक मेल कर सकते हैं। गाँधी जी सदैव यही करते रहे। वह अनेक बार बदले की अग्नि में जलते हुये हिन्दू और सिखों से मुसलमानों की रक्षा के लिये, और अंग्रेजों के विरुद्ध उपवास का प्रयोग करते रहे परन्तु जिन्नाह और उनके अनुयाइयों की मांगों के विरुद्ध अथवा मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं की हत्या के विरुद्ध उन्होंने कभी अपने इस ब्रह्मास्त्र का उपयोग नहीं किया क्योंकि वह जानते थे कि उनके विरुद्ध वह सफल नहीं हो सकता था।

सत्यवादन –

गाँधी जी वास्तव में कितने सत्यवादी थे? उनके सत्यवादन में तोड़ मरोड़ की प्रवृत्ति का अनेक लोगों ने अनुभव किया है। परस्पर विपरीत बातें कहना निश्चय ही सत्य वादन नहीं कहा जा सकता है। गाँधी जी की इस प्रवृत्ति की शिकायत अनेक लोगों ने की है। यद्यपि गाँधी जी स्वयं अप्रासंगिकता को झूठ की संज्ञा देते थे और वैसा बोलने को मना करते थे वह स्वयं अपनी सुविधानुसार उसका प्रयोग कर लेते थे। उनकी इस विलक्षणता के विषय में अनेक लोगों के अनुभव आरम्भ में ही लिखे जा चुके हैं।

एक बार एक पत्रकार ने उनसे पूछा "आपकी नीति क्या है ?" उन्होंने कहा "मैं पांच वाक्यों में उसको लिख सकता हूँ"। पत्रकार ने जब उनका लिखित पर्चा पढ़ा तो वह यह देखकर दंग रह गया कि प्रत्येक वाक्य पहले वाले वाक्य के विपरीत था।

लार्ड वैवेल ने उनके साथ एक मीटिंग के बाद कहा बताते हैं – "वह मुझसे आधा घंटा बात करते रहे परन्तु मैं नहीं बता सकता कि वह चाहते क्या थे ? उनके प्रत्येक वाक्य के दो अर्थ हो सकते थे।"

एक ही सांस में दो परस्पर विरोधी बातें कहने के कुछ और नमूने देखिये–

विभाजन के विरुद्ध –

१– विभाजन एक नितांत असत्य है। उसके सिद्धांत को स्वीकार करना मेरे लिये परमात्मा को अस्वीकार करने जैसा है।

२– भारत के टुकड़े करने से पहले मेरे टुकड़े कर दो।

३– वह मेरे टुकड़े टुकड़े कर सकते हैं परन्तु वह मुझसे उसको (विभाजन को) स्वीकार नहीं करा सकते जिसे मैं ठीक नहीं समझता।

४– यदि कांग्रेस विभाजन स्वीकार करती है तो वह मेरी मृत देह पर ही ऐसा कर सकती है। जीवित रहते मैं उसे कभी स्वीकार नहीं करूंगा।

५– यदि पूरा भारत भी जल कर भस्म हो जाय तब भी हम पाकिस्तान की स्वीकृति नहीं देंगे।

६– भारत के टुकड़े करने से पहले तुम (मुसलमानों) को मेरे शरीर के टुकड़े करने पड़ेंगे।

७– मैं स्वयं जिन्नाह से यह कहला कर रहूंगा कि पाकिस्तान की यह तमाम बात हास्यास्पद है।

विभाजन के पक्ष में –

१– अहिंसा वादी होने के नाते मैं मुसलमानों की भारत के विभाजन की मांग का बलपूर्वक विरोध नहीं कर सकता।

२– यदि आठ करोड़ मुसलमानों की यही (पाकिस्तान) इच्छा है तो विश्व की कोई भी शक्ति उसे रोक नहीं सकती – न हिंसा द्वारा और न अहिंसा द्वारा।

३– यदि भारत के भाग्य में विभाजन बदा है तो मैं उसे रोक नहीं सकता मुसलमानों को अपनी शर्ते मनवाने का पूर्ण अधिकार है।

४– मुसलमानों को आत्म निर्णय का उतना ही अधिकार है जितना दूसरे भारत वासियों को।

पहले सात झूंठ न बोल कर गाँधी जी ने यह चार सत्य पहले ही बोल दिये होते तो दस लाख निरपराध लोग क्यों मारे जाते और एक करोड़ परिवार क्यों उजड़ते।

खिलाफत आन्दोलन की बागडोर संभालने और उसे भारतवासियों के लिये जीवन मरण का प्रश्न बनाने में भी गाँधी जी के विलक्षण सत्य के दर्शन होते हैं। **खिलाफत आन्दोलन का ध्येय था : पदच्युत तुर्की खलीफा को फिर से पदासीन करना और तुर्की साम्राज्य से स्वतंत्रता प्राप्त मुस्लिम देशों को फिर उसके अधीन लाना। इसका अर्थ : भारत में विदेशी राज्य अनैतिक था परन्तु गैर–तुर्की देशों पर तुर्की राज्य न केवल नैतिक था अपितु आवश्यक था।**

ब्रह्मचर्य के प्रयोग –

गाँधी जी के अहिंसा और सत्य के प्रयोगों के पश्चात उनके ब्रह्मचर्य के प्रयोगों की छानबीन भी प्रासंगिक है। गाँधी जी ने ३६ वर्ष की आयु में पूर्ण बह्मचर्य का व्रत ले लिया था। उनके सत्य और अहिंसा व्रतों की भांति उनका ब्रह्मचर्य व्रत

भी विलक्षण था। अमृत कौर को एक पत्र में उन्होंने लिखा था : मेरे ब्रह्मचर्य की परिभाषा यह है: जिसके विचार में कामुकता नहीं .....जो नंगी स्त्रियों के साथ (बिना काम वासना के) लेट सकता हो।" नंगी स्त्रियों और लड़कियों के साथ लेटना उनके ब्रह्मचर्य ब्रत का जैसे एक अभिन्न कर्म था। उसको न्याय संगत ठहराते हुये उन्होंने प्रो० बोस को लिखा था : मेरी पत्नी जब मेरी काम वासना का शिकार होती थी तब वह मुझसे हीन होती थी। जब बहिन की भांति वह मेरे साथ नंगी लेटती थी तो उसमें हीनता नहीं होती थी.....**मैं आशा करता हूँ कि तुम नंगी स्त्रियों के साथ मेरे लेटने के कारण मुझ पर कामुकता को दोष नहीं लगाओगे।**

इससे स्पष्ट है कि बह्मचर्य व्रत लेने के बाद गाँधी अपनी नंगी पत्नी के साथ तथा अनेक दूसरी स्त्रियों के साथ लेटते थे। इस विषय में उनकी पौत्री मनु कुछ अधिक ही चर्चित हो गई थी। उनके कुछ मित्रों ने जिनको गाँधी जी का यह व्यवहार आपत्ति जनक लगता था ठक्कर बापा को उनके पास उन्हें इस व्यवहार से विरत करने के लिये भेजा। मनु ने ठक्कर बापा का समर्थन किया। गाँधी उस समय मान गये परन्तु मनु का व्यवहार उन्हें अच्छा नहीं लगा। वह बेचैनी अनुभव करते रहे जब तक कि उन्होंने फिर से यह व्यवहार चालू नहीं कर दिया।

गाँधी जी को भले ही इस प्रकार नंगी स्त्रियों के साथ लेटने में कोई अपराध बोध न होता हो उन स्त्रियों को इसमें अपराध बोध होता था। एक स्त्री ने प्रो० निर्मल बोस के पूछने पर गाँधी जी के साथ नंगी लेटने की बात से इन्कार किया। परन्तु गाँधी जी ने स्वीकार किया कि वह उस स्त्री के साथ नंगे लेटते थे। इस स्त्री के झूठ बोलने का कारण अपराधबोध ही था इससे कौन इन्कार कर सकता है।

हो सकता है कि गाँधी जी सामान्य लोगों की कामुक प्रकृति से ऊपर उठ गये हों। हो सकता है उन्होंने काम पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली हो। परन्तु जिन स्त्रियों को वह नंगी अपने पास लिटाते थे क्या वह भी पूर्ण काम–विजय कर चुकी थी ? ऐसा लगता है कि ऐसा नहीं था क्योंकि उनमें से अनेक हिस्टीरियाग्रस्त हो गई थीं ? अपनी इस काम विजय की बार बार अनेक नंगी स्त्रियों के साथ लेट कर परीक्षा लेना साधारण मनुष्यों की बुद्धि के परे की बात है। हिन्दू धर्म ग्रन्थों में युवा पुत्र को अपनी युवा माता और बहिन के साथ भी एकांत में बैठना वर्जित है। गाँधी जी अपने को धर्मनिष्ठ हिन्दू कहते थे। मनु के अनुसार धर्म की कसौटी है श्रुतिः स्मृति, सदाचारः स्वस्य प्रियआत्मनः। जिसको समाज दुराचार समझता हो वह सदाचार नहीं कहा जा सकता। गीता कहती है कि जैसा जैसा आचरण बड़े लोग करते हैं वैसा वैसा ही आचरण साधारण लोग भी करते हैं। गाँधी जी निश्चय ही जन साधारण के लिये ब्रह्मचर्य व्रत का बहुत ही कुत्सित रूप प्रस्तुत कर रहे थे।

यह एक स्वीकार्य तथ्य है कि अनेक लोग यौन विकृतियों के शिकार होते हैं। कुछ ऐसे कार्य जिनका साधारण लोगों की दृष्टि में काम वासना से कोई भी

सम्बन्ध नहीं कुछ यौन विकृतियों के शिकार लोगों को काम संतुष्टि देते हैं। गाँधी जी ३६ वर्ष की आयु में जिस समय पुरुष का पुरुषत्व चरम सीमा पर होता है प्राकृतिक सम्भोग को हठ पूर्वक तिलांजली दे बैठे थे। यह जाना माना तथ्य है कि कभी कभी प्राकृतिक मनोवेगों को हठ पूर्वक अथवा दूसरे कारणों से दबाने से मानसिक विकृति दोष उत्पन्न हो जाते हैं। क्या यह सम्भव है कि जिस वर्जित कार्य (नंगी स्त्रियों के साथ लेटना) को गाँधी जी अपने ब्रह्मचर्य की विजय समझकर बार बार करने को लालायित रहते थे वास्तव में वह उनका अनजाने में अचेतन मस्तिष्क द्वारा बिना वास्तविक संभोग के विकृत काम वासना को ही संतुष्ट करने का साधन मात्र था ? इस मनोविक्षिप्त भोग संतुष्टि की कामना के कारण वह अनेक लोगों के कहने के बावजूद इस निंदनीय व्यवहार को बंद करने में सक्षम नहीं थे।

विभाजन के बाद भी मुस्लिम तुष्टीकरण –

साम्प्रदायिक विभाजन के बाद भारत में पाकिस्तान से हिन्दू और सिख शरणार्थी लाखों की संख्या में आ रहे थे। उन्होंने पाकिस्तानी पुलिस, सेना और किसी समय अपने अभिन्न मित्र और पड़ोसियों द्वारा अपने निर्दोष बच्चों का वध अपनी स्त्रियों पर बलात्कार और अपहरण होते अपनी आंखों से देखा था। जो करोड़पति थे वह कंगाल हो गये थे। इन्होंने पाकिस्तान के पक्ष में वोट नहीं दिया था। वह विभाजन के गुनाहगार नहीं थे। भारत से मुसलमान भागकर पाकिस्तान जा रहे थे। उनमें ६७ प्रतिशत ने पाकिस्तान के निर्माण के पक्ष में वोट दिया था। वास्तविकता यह है कि पाकिस्तान का निर्माण उन्हीं के वोट से सम्भव हुआ था। उन्होंने पाकिस्तान बनाने का यह सिद्धांत स्वीकार किया था और उस पर आचरण किया था कि हिन्दू और मुसलमान दो राष्ट्र हैं और उनके धर्म की बाध्यता के कारण उनका किसी प्रकार भी हिन्दुओं के साथ सत्ता में साझेदारी अथवा सहअस्तित्व संभव नहीं है।

ऐसी स्थिति में पाकिस्तान के निर्माण के पश्चात किसी भी न्याय के अनुसार उन्हें हिन्दू भारत में रहने का अधिकार नहीं रहा था। दूसरी ओर पाकिस्तान बनने वाले भूभाग में रहने वाले हिन्दुओं ने कभी विभाजन के पक्ष में वोट नहीं दिया था। वह विभाजन हिन्दू भारत में रहने वाले मुसलमानों और हिन्दू भारत के भावी कांग्रेसी शासकों द्वारा उन पर थोपा गया था। इस कारण साधारण न्यायानुसार उन्हें हिन्दू भारत में आने और उसके नागरिक बन कर रहने का पूर्ण अधिकार था।

किन्तु गाँधी और उनके शिष्यों की सरकार केवल उन मुसलमानों के लिये चिंतित थी जो भारत छोड़कर पाकिस्तान भाग रहे थे। पाकिस्तान से भाग कर भारत आने वाले हिन्दुओं के प्रति उसका रवैया यदि निष्ठुर नहीं तो अपेक्षापूर्ण अवश्य था।

पाकिस्तान में भारत के प्रथम उच्चायुक्त श्री प्रकाश ने अपनी पुस्तक "पाकिस्तान के प्रारम्भिक दिन" में इस तथ्य को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है।

उन्होंने लिखा है कि **"मेरी जिम्मेदारी भारत से भागकर पाकिस्तान आने वाले भारतीय मुसलमानों के प्रति थी पाकिस्तान से भाग कर भारत जाने वाले पाकिस्तानी हिन्दुओं के प्रति नहीं।"**

फलस्वरूप पाकिस्तान में हिन्दुओं के खाली मकानों और मन्दिरों में मुसलमान शरणार्थी घुस गये थे और भारत में मुसलमानों द्वारा खाली किये गये मकानों और मस्जिदों में हिन्दू शरणार्थी।

उत्तेजना और बदले की अग्नि से सुलगते ऐसे वातावरण में गाँधी जी ने आमरण उपवास की घोषणा कर दी। **उपवास समाप्त करने की एक शर्त यह भी थी कि सभी मस्जिदें शरणार्थियों से खाली करा ली जाँय।** सायंकाल की प्रार्थना सभाओं में गांधी जी सदैव की भांति कुरान और गीता का पाठ करवाते थे। ईश्वर अल्लाह तेरा नाम गाते थे। उनकी सभा में पाकिस्तान से भागकर आये हुए शरणार्थियों की संख्या भी काफी होती थी। वह आपत्ति करते थे : **"इन कुरान की आयतों का पाठ करने वाले अल्लाह के दीनदारों ने हमारे सामने हमारे परिवार का वध किया है। हमारी बहू बेटियों पर बलात्कार और उनका अपहरण किया है।"** सभा से उनको पुलिस द्वारा भगा दिया जाता था।

आंमरण उपवास से गाँधी की जान बचाने के लिये हिन्दुओं ने मुसलमानों की मारकाट बन्द कर दी। जो मुसलमान पाकिस्तान जा रहे थे वह लौटने लगे। उनके हिन्दू पड़ोसियों ने उनका स्वागत किया। मिठाइयां बांटी। दीपक जलाये। पाकिस्तान में हिन्दुओं पर अत्याचार होते रहे। गाँधी जी की जान बचाने के लिए चिंतित कांग्रेस शासन ने बिना वैकल्पिक इंतजाम किये शरणार्थी परिवारों को मस्जिदों और दूसरे मुस्लिम स्थानों से निकालना प्रारम्भ कर दिया। कड़ाके की ठंड थी। बाहर हल्की बारिश भी होती थी। अनेक बच्चे बीमार भी थे। मानवता को धता बताकर सब को ठंड और बारिश में बाहर निकाल दिया गया। अनेक बच्चों की ठंड से मृत्यु हो गई। परन्तु सत्य और अहिंसा के इस पुजारी का दिल नहीं पसीजा क्योंकि उसके शिकार हिन्दू थे और गाँधी मसलमानों से अपनी धर्म निरपेक्षता का प्रमाण पत्र प्राप्त करना उन मासूम बच्चों के प्राणों से अधिक मूल्यवान समझते थे। अंततः गाँधी जी का यह व्यवहार ही उनकी मृत्यु का कारण बना।

धार्मिक सुधार –

महात्मा गाँधी ने धार्मिक सामाजिक अथवा नैतिक सुधार की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। सभी धर्मों को समान रूप से सच्चे समझने वाले पौराणिक गाँधी से इस प्रकार के सुधारों की कल्पना भी नहीं की जा सकती। वास्तव में धार्मिक, सामाजिक और नैतिक बुराइयों की चर्चा करने वाले दयानन्द अथवा श्रद्धानन्द उनकी निन्दा और कोप के पात्र बने रहे।

सामाजिक सुधार के नाम पर छुआछूत मिटाना और शराब बन्दी में ही उनका कुछ योगदान माना जा सकता है। निःसन्देह इन दोनों समाज सुधारों की ओर उनके आकृष्ट होने का कारण भी उनकी राजनीतिक गतिविधियों का ही भाग कहा जायेगा और अछूत वर्ग के लोग उसको इसी रूप में देखते भी है। अम्बेडकर पर विचार करते समय छुआछूत मिटाने में उनकी भूमिका पर हम विस्तार से प्रकाश डालेंगे।

संदर्भ

१. महात्मा गाँधी : भाई एक्सपेरिमेंट्स विध ट्रुथ।

२. लुई फिशर : द लाइफ ऑफ महात्मा गाँधी।

३. गाँधी : सम्पूर्ण वाङ्मय।

४. हंसराज रहबर – गाँधी बेनकाब।

५. प्रो० एम०एम० कोठारी : क्रिटीक ऑफ गाँधी।

६. ब्रह्मदत्त भारतीः गाँधी एंड गाँधिज्म अन–मास्क्ड।

७. विन्सेंट शीन : गाँधी।

८. डा० सुशीला नेयर : बापू के कारावास की कहानी।

९. प्यारे लाल : द लास्ट फेज।

डा० भीमराव रामजी अम्बेडकर

भीमराव अम्बेडकर का जन्म उस समय के सेन्ट्रल इण्डिया नामक प्रान्त के म्हाऊ स्थान में १४ अप्रैल १८९१ को हुआ। उनके पिता राम जी और पितामह मालोजी अंग्रेजी सरकार की सैनिक सेवाओं में थे और सैनिकों का जैसा स्वभाव होता है वह खेलकूद में निपुण और स्पष्ट भाषी थे। उनके पिता को अंग्रेजी का ज्ञान था और सेवा निवृत्ति के समय उनका पद सूबेदार मेजर का था। वह पिछले लगभग १४ वर्ष से सैनिक स्कूल के प्रधानाध्यापक थे। सन् १८९१ ई० में सेवा निवृत्ति के समय उनको ५० रूपये प्रतिमास पेंशन मिलती थी जो इस समय १९९७ के मूल्यों को देखते हुए ६००० रूपये मासिक के बराबर है। सेवा निवृत्त होने पर वह रत्नगिरि जनपद में दपौली नामक स्थान पर बस गये। १८९४ में उन्हें रत्नगिरि में लोक निर्माण विभाग द्वारा फिर से स्टोर कीपर के पद पर नियुक्ति मिल गई और तत्पश्चात उनका स्थानान्तरण सतारा को कर दिया गया।

राम जी की १४ सन्तानों में भीमराव सबसे छोटे थे। उनकी माता भीमाबाई की मृत्यु १८९६ ई० में हो गयी, जब उनकी आयु केवल ५ वर्ष थी। उसके बाद उनका पालन पोषण उनकी निकट की सम्बन्धी मीराबाई द्वारा किया गया जो उनको बहुत स्नेह करती थीं। राम जी अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति के थे उन्होंने जीवन में कभी भी मांस और मदिरा को छुआ तक नहीं था। वह महात्मा फुले के प्रशंसकों में थे।

राम जी अछूत वर्ग की महार जाति के थे जिनमें कबीर, रामानन्द और नाथ सम्प्रदाय का भक्तिमार्ग प्रचलित था। १८९६ में राम जी कबीर के अनुयाई हो गये थे। वह मार्ग दया, शुभकर्मो और अपने को ईश्वर की इच्छा पर छोड़ देने में विश्वास करता था। भगवान कृष्ण और भगवान राम उनके उपास्य थे। उनकी उपासना में उनको शान्ति मिलती थी। कबीर जाति–प्रथा का खण्डन करते थे इसलिये छुआछूत से उत्पन्न भयानक अपमान और कष्ट भोगने वाले अछूत वर्ग का रुझान कबीर पंथ की ओर हो जाना स्वाभाविक था।

जब भीमराव ५ वर्ष के थे वह दपौली के मराठी स्कूल में अध्ययन हेतु भेज दिये गये। किन्तु जब उनके पिता का स्थानान्तरण सतारा को हो गया तो उन्होंने १९०० ई० में गवर्नमेन्ट हाईस्कूल सतारा में प्रथम कक्षा में प्रवेश ले लिया। स्कूल में उनका नाम भीवा राम जी अम्बावाडेकर था। अम्बावाडे रत्नगिरि जनपद के खेड तालुके में स्थित उनके पूर्वजों का गांव था।

सतारा हाई स्कूल में अम्बेडकर नामक एक ब्राह्मण शिक्षक भीवाराव को बहुत स्नेह करते थे। भीवाराव को मध्यांतर में भोजन करने के लिये अपने गांव भागना न पड़े इसलिए वह अपने घर से अतिरिक्त भोजन लाते थे और

भीवाराव को खिलाते थे। यह ब्राह्मण अपनी जाति प्रथा के अनुसार भीवाराव को स्पर्श करना अनुचित समझते थे और भोजन ऊपर से उसके हाथ में छोड़ देते थे जिससे स्पर्श न हो पाये परन्तु भीवाराव को उनके निस्पृह प्रेम ने इतना प्रभावित किया कि वह जीवन भर अपने को उनका ऋणी समझते रहे और अपने उस ब्राह्मण गुरु के प्रेम और आदर को अक्षुण बनाय रखने के लिए उन्होंने अपने नाम के साथ अम्बेडकर शब्द जोड़ लिया। अम्बेडकर जब राउन्ड टेबिल कान्फ्रेंन्स में लन्दन गये थे तो उनके इस ब्राह्मण गुरु ने पत्र भेजकर उनको शुभकामनायें भेजी थीं।

जन्म से अछूत होने के कारण अम्बेडकर को स्कूल में दूसरे बच्चों से अलग बैठना पड़ता था। वह न उनसे मिल जुल सकता था और न उनके साथ खेल सकता था। **अछूतों को संस्कृत पढ़ने की अनुमति नहीं थी क्योंकि संस्कृत के शिक्षक उनको संस्कृत पढ़ाने के लिये तैयार नहीं होते थे। इसलिये अम्बेडकर को हाई स्कूल में न चाहते हुए भी संस्कृत के स्थान पर फ़ारसी लेनी पड़ी। अम्बेडकर ने खेद प्रकट करते हुए लिखा है कि यद्यपि संस्कृत पढ़ने की मेरी इच्छा बहुत थी परन्तु संस्कृत अध्यापकों की संकुचित मनोवृत्ति के कारण मैं संस्कृत नहीं पढ़ सका।** शिक्षक अछूत बच्चों की कापियों तक को नहीं छूते थे। उनमें से कुछ तो उनसे प्रश्न पूछना या कविता सुनना भी इस भय से पसन्द नहीं करते थे कि उससे वह पतित न हो जाँय। इस प्रकार अम्बेडकर को अछूत होने के कारण अपने शिक्षा काल में ही अनेक अपमानों का पग–पग पर अनुभव होता था।

१९०४ में रामजी की सेवायें सतारा में समाप्त हो गयीं तब उन्होंने बम्बई जाना उचित समझा और वहाँ परेल की एक चाल में एक छोटा सा कमरा लेकर सपरिवार उसमें रहने लगे। उसी कमरे में एक बकरी भी बँधती थी और एक चक्की भी थी।

उस समय अम्बेडकर ४ वीं कक्षा में थे। पहले उन्होंने परेल के मराठा स्कूल में प्रवेश लिया। इस स्कूल में फीस इत्यादि में कोई छूट न होने के कारण उन्हें सरकारी एलफिन्सटन हाई स्कूल में जाना पड़ा। सतारा की भांति यहाँ महार बच्चों के दूसरों बच्चों के साथ खेलने पर कोई पाबन्दी नहीं थी। इसलिये अम्बेडकर खेलकूद में खूब भाग लेते थे। विविध विषयों का अध्ययन उनका व्यसन था। वह बम्बई के चरनी रोड गार्डेन्स में जा कर पढ़ते थे। १४ वर्ष की आयु में उनका विवाह ९ वर्ष की आयु की रमाबाई से हो गया।

१९०७ में उन्होंने मैट्रिक परीक्षा पास की। इस समय उनकी आयु १६ वर्ष की थी जो मैट्रिक पास करने के लिये उस समय न्यूनतम् निर्धारित आयु थी। महार जाति में यह एक अपूर्व घटना थी।

अम्बेडकर ने एलफिन्सटन कालिज में प्रवेश ले लिया। बड़ौदा के महाराजा सायाजीराव गायकवाड़ ने, जो एक उदारवादी शासक थे, उन्हें २५ रू० मासिक की छात्रवृत्ति दी और प्रोफेसर मूलर ने उन्हें पुस्तकें दी।

२ फरवरी १६१३ को उनके पिता की मृत्यु हो गई। इसी वर्ष उन्होंने बी०ए० पास कर लिया और महाराजा बड़ौदा के निमंत्रण पर उनकी रियासत में नौकरी कर ली। वहाँ ऊच्चाधिकारी उच्च जातियों के थे। अम्बेडकर को पग पग पर अपमान सहना पड़ता था। चपरासी तक भी फाइल दूर से फेंकते थे कि कहीं वह उनसे छू न जाँय।

आर्य समाज से परिचय –

अछूत होने के कारण बड़ौदा में उनको रहने के लिये कोई स्थान न मिला। कोई उच्च जाति का व्यक्ति उन्हें किराये पर भी स्थान देने को तैयार न था। ऐसे समय में अपनी जाति द्वारा बहिष्कार का जोखिम उठाकर भी पंडित आत्माराम नामक एक आर्य समाजी ने जो स्वामी दयानन्द का भक्त था और छुआछूत को वैदिक धर्म का कोढ़ समझता था उन्हें अपने पास ठहरा लिया। उनके जीवन में किसी ब्राह्मण द्वारा छुआछूत को चुनौती देकर उन्हें शरण देने के कारण उनका आर्य समाज से प्रथम परिचय हुआ।

महाराजा सायाजी राव ने उन्हें ४ जून १६१३ को बुलाया। विलायत में शिक्षा उपरान्त बड़ौदा राज्य में सेवा करना उन्होंने स्वीकार किया और १६१३ में जुलाई के तीसरे सप्ताह में उन्होंने गायकवाड़ स्कॉलर के रूप में कोलम्बिया युनिवर्सिटी में प्रवेश ले लिया।

कोलम्बिया में वह एक अंतर्राष्ट्रीय क्लब में ठहरे। यहाँ उन पर अछूत होने के कारण कोई पाबन्दी नहीं थी। कोलम्बिया का जीवन आंखे खोल देने वाला था। उस वातावरण में अम्बेडकर के मस्तिष्क का जैसा विकास हुआ वह किसी पश्चिमी विश्वविद्यालय में ही सम्भव था।

अर्थशास्त्र के विश्व विख्यात विद्वान सेलिगमैन उनके प्रोफेसर थे। अम्बेडकर अध्ययनशील तो पहले से ही थे। अब वह पुस्तकों में डूब गये और प्रतिदिन १८ घंटे पढ़ने लगे।

लाजपतराय से भेंट :–

उस समय लाजपत राय अमेरिका में अपना निर्वास काल काट रहे थे। वह प्रतिदिन कालिज पुस्तकालय जाया करते थे। वहीं उनकी दृष्टि भारत से आये इस अछूत युवक पर पड़ी। वह उसकी प्रतिभा से प्रभावित हुये।

लाला लाजपतराय कट्टर आर्य समाजी थे। वह दयानन्द को अपना पिता और आर्य समाज को अपनी माता कहा करते थे। **आर्य समाज का वेद सम्मत**

निश्चित मत था कि ब्राह्मण क्षत्रिय आदि वर्ण व्यवस्था जन्म पर आधारित न होकर कर्म, गुण और स्वभाव पर आधारित है। छुआछूत को वेद विरुद्ध सिद्ध कर उसका उन्मूलन करना और अछूतों, शूद्रों, स्त्रियों को न केवल शिक्षा अपितु वेद शिक्षा दिलाना जो स्वार्थी ब्राह्मणों द्वारा उन्हें वर्जित कर दी गई थी आर्य समाज के मुख्य कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण भाग था।

लाला लाजपत राय और अम्बेडकर उस समय (१६१३–१६१५) भारत में चल रहे राष्ट्रीय पुनर्जागरण आन्दोलनों के विषय में बात किया करते थे। भारत की राजनीति में अभी गाँधी जी का प्रवेश नहीं हुआ था। इस पुनर्जागरण का मुख्य संगठन आर्य समाज था।

जून १६१५ में अम्बेडकर ने एम०ए० पास कर लिया। उनका विषय था "पुरातन भारत में व्यापार"। इस विषय के अध्ययन में उन्हें पुरातन भारत के इतिहास इत्यादि का गहन अध्ययन करना अनिवार्य था।

मई १६१६ में उन्होंने डा० गोल्डेनवाइजर के "मानव विज्ञान सेमिनार" (Anthropology Seminar) में "द कास्ट्स इन इण्डिया: देयर मैकेनिज्म, जिनेसिस एंड डेवलपमेंट" पर एक अत्यंत विद्वतापूर्ण शोध लेख पढ़ा जो मई १६१७ में "इण्डियन एंटीक्विटी" में छपा। इस समय उनकी आयु मात्र २५ वर्ष थी।

अपने इस शोध पत्र में डा० अम्बेडकर ने जिन मुख्य बिन्दुओं पर प्रकाश डाला उनका हम संक्षेप में यहाँ वर्णन करना चाहेंगे।

१. भारत में जाति प्रथा यद्यपि अभी भारत तक ही सीमित है परन्तु उसकी शरारत की कोई सीमा नहीं है। जब तक भारत में जाति प्रथा है हिन्दू अपनी जाति के बाहर दूसरे लोगों से न विवाह करेंगे, न उनसे सामाजिक सम्बन्ध बना सकेंगे। यदि भारतवासी विदेशों में जायेंगे तो यह प्रथा अपने साथ ले जायेंगे और फिर यह स्थानीय न होकर अन्तर्राष्ट्रीय समस्या का रूप ले लेगी।

डा० अम्बेडकर के उपरोक्त कथन की भयंकरता को आज इस लेख के लिखने के लगभग ६० वर्ष पश्चात भारत की मुख्य राजनीतिक समस्या के रूप में देखा जा सकता है। कोई भी राजनीतिक पार्टी जातीयता के इस विष से मुक्त नहीं है। फलस्वरूप शासन में स्थिरता का नितान्त अभाव है । चुनाव के समय प्रत्याशी चुनते समय प्रत्येक पार्टी इस बात को ध्यान में रखती है कि उस क्षेत्र में किस जाति का बाहुल्य है अथवा प्रभाव है। अधिकतर इसी माप दण्ड के अनुसार दूसरी जाति के कुशल और ईमानदार व्यक्तियों को छोड़कर उस विशेष जाति के अयोग्य व्यक्तियों को विधान सभाओं और पार्लियामेंट में भेजना पड़ता है।

२. **अम्बेडकर कहते हैं कि दूसरा कोई देश भी संस्कृति की एकता में भारतीय प्रायद्वीप की तुलना नहीं कर सकता। भारत केवल एक भौगोलिक एकता का नाम नहीं है उससे कहीं अधिक गहरी और सैद्धान्तिक एक दूसरी एकता है – वह निःसंशय उसकी सांस्कृतिक एकता है जो प्रत्येक भारतीय को एक सिरे से दूसरे सिरे तक आच्छादित करती है। किन्तु यह महान एकता जातियों के अलग अलग बंडलों में बंधकर नष्ट होने के कगार पर हैं।**

३. डा० अम्बेडकर इस बात पर बल देते हैं कि बिना अर्न्तजातीय विवाहों के इस दोष को दूर नहीं किया जा सकता। जब तक अर्न्तजातीय विवाह नहीं होंगे जाति प्रथा समाप्त नहीं की जा सकती।

४. अम्बेडकर इस विषय पर प्रकाश डालने में कि जाति प्रथा कैसे प्रारम्भ हुई और उसका भारत के इतिहास पर क्या प्रभाव पड़ा कठिनाई प्रकट करते हुए कहते हैं कि हिन्दू समाज कुछ इस प्रकार की मानसिकता रखता है कि जिसमें इतिहास लेखन का कोई मूल्य नहीं क्योंकि उसके अनुसार संसार केवल एक माया जाल है।

अनेक तर्कों द्वारा अम्बेडकर यह सिद्ध करने का प्रयास करते हैं कि हिन्दुओं के इस दृष्टिकोण के कारण हिन्दू समाज में तीन बुराइयाँ उत्पन्न हुई–

(१) विधवा स्त्री को उसके मृत पति के साथ चिंता पर भस्म हो जाना अथवा कर दिया जाना।

(२) विधवा विवाह का निषेध जो लगभग जीवित मृत्यु के समान है।

(३) अधिक आयु के विधुर लोगों से कम उम्र की अविवाहित लड़कियों का विवाह।

५. अम्बेडकर कहते हैं कि मनु के विरुद्ध चाहे जो कुछ भी कहा जाय यह सत्य है कि ब्राह्मणों ने और चाहे जो भी अपराध किये हों मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि गैर ब्राह्मण समाज पर जाति प्रथा लादना ब्राह्मणों के वश की बात नहीं थी। हो सकता है कि उनके बातूनी दर्शनशास्त्र ने जाति प्रथा के बनने और पनपने में सहायता भले ही की हो किन्तु वह इसके निर्माता नहीं हो सकते। जाति प्रथा के बनाने में उसके समर्थन का कितना ही प्रचार क्यों न किया गया हो उसके फलस्वरूप जाति प्रथा नहीं बन सकती और इसी प्रकार उसके विरुद्ध कितने ही प्रचार क्यों न किये जाँय वह प्रचार मात्र से समाप्त नहीं की जा सकती।

६. यूरोपिय विद्वानों ने जाति को रंगभेद से संबंद्ध किया है। इससे अधिक असत्य बात कोई नहीं हो सकती। क्योंकि यह यूरोपिय विद्वान स्वयं रंग

भेदभाव से ग्रसित थे इसलिए उनको इसके अतिरिक्त कुछ सूझता ही नहीं था। भारत के सभी शासक चाहे वह तथाकथित आर्य जाति के हों अथवा तथाकथित द्रविण हो सब आर्य थे। **भारतवर्ष के निवासियों में आर्य और द्रविड़ के प्रश्न पर कभी कोई विवाद उत्पन्न नहीं हुआ जब तक कि विदेशी विद्वानों ने यहाँ आकर उनके बीच में भेदभाव की रेखा खींचनी प्रारम्भ नहीं की। भारतवर्ष में रंगभेद का कभी कोई महत्व नहीं रहा।**

इसी वर्ष जून १९१६ में उन्होंने पी०एच०डी० की डिग्री के लिये अपना थीसिस (शोध पत्र)"नेशनल डिविडेंड फ़ॉर इण्डियाः ए हिस्टारिक एंड एनालिटिकल स्टडी" लिखा जो वजट पर बहस के समय भारत की विधान सभाओं के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ।

जून १९१६ में अम्बेडकर कोलम्बिया छोड़कर लंदन स्कूल ऑफ इकॉनामिक्स में पढ़ने चले गये और अक्टूबर १९१६ में उन्हें ग्रेज़ इन ऑफ लॉ (Grays Inn of Law) में प्रवेश मिल गया।

अभी एम०एस०सी० (इकानामिक्स) के लिये कार्य करते उन्हें एक ही वर्ष हुआ था कि एक समस्या आ खड़ी हुई। बड़ौदा के महाराज सायाजी राव द्वारा दी गई छात्रवृत्ति समाप्त हो गई थी और कोई दूसरा साधन मिला नहीं। इसलिये लंदन विश्वविद्यालय से यह अनुमति प्राप्त कर कि वह अपनी शेष शिक्षा अक्टूबर १९२१ तक कभी भी फिर पूरी कर सकते हैं वह भारत लौट आये।

जुलाई १९१७ में उनकी नियुक्ति महाराजा बड़ौदा के सैनिक सचिव (मिलिट्री सेक्रेटरी) के रूप में हो गई। ध्येय था उनको रियासत के वित्त मंत्री पद के लिये तैयार करना।

परन्तु उनका अछूत परिवार में जन्म लेना फिर उनके सामने अभेद्य दीवार की भांति आ खड़ा हुआ। उनसे मिलने वाला कोई नहीं था। कोई होटल उनको रखने को तैयार नहीं था। वह अपना व्यक्तित्व छिपा कर एक पारसी सराय में रहने लगे। उनके मातहत और चपरासी उन्हें कोढ़ी की भांति अछूत समझते थे। कागज़ और फ़ाइल मेज़ पर रखने के स्थान पर ऊपर से गिरा दी जाती थीं। पीने का पानी उपलब्ध नहीं था। पता लगने पर पारसियों ने भी उन्हें निकाल बाहर किया। वह पुस्तकालय में जाकर पड़ गये। उन्होंने महाराजा से अपनी कठिनाई बताई। बड़ौदा के दीवान के प्रयास भी असफल हो गये और उन्होंने अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। उनकी समझ में आ गया कि उनकी वैयक्तिक योग्यता भी उच्च वर्ग के हिन्दुओं के हृदय को कोमल करने में असमर्थ है। वह एक वृक्ष के नीचे बैठकर फूट फूट कर रोने लगे। कैसा करुणा जनक दृश्य है ? भारत माँ का एक ऐसा प्रतिभाशाली हिन्दू सपूत जैसा शताब्दियों में कभी कभी ही जन्म लेता है अपने जन्म के कारण हिन्दुओं

द्वारा ही पशुओं से भी बदतर उपेक्षा का शिकार था। उन्होंने जिस कार्य में भी प्रवेश करना चाहा अछूत होने के कारण वही कार्य असम्भव हो गया। इन असहनीय परिस्थितियों से हार थक कर डा० अम्बेडकर नवम्बर १९१७ में बम्बई लौट आये। वहाँ एक पारसी सज्जन की दया से उन्हें दो ट्यूशन मिल गये।

हिन्दू समाज द्वारा अपमानित और अपेक्षित होने पर अमरीका और लंदन के उन्मुक्त ईसाई वातावरण की हवा खाया हुआ डा० अम्बेडकर जैसा विद्वान जो मात्र २५ वर्ष की आयु में एक अर्न्तराष्ट्रीय सेमिनार में इतना विद्वतापूर्ण लेख प्रस्तुत कर सकता था सहज ही ईसाई धर्म स्वीकार कर इस सभी अपमान और तिरस्कार से न केवल छुट्टी पा सकता था अपितु अंग्रेजी शासन में अपनी उन्नति के अप्रत्याशित द्वार भी खोल सकता था। किन्तु अम्बेडकर की नसों में जो उसके योद्धा पूर्वजों का रक्त था वह इस प्रकार का समझौता करने के लिए कैसे तैयार हो सकता था ? अम्बेडकर के साहित्य को पढ़ने से सहज ही यह निष्कर्ष निकलता है कि वह दयानन्द की भाँति हिदू धर्म का लड़ाकू और समर्पित सुधारक था। इसीलिये १९४७ में भारत विभाजन के साथ जिन्नाह के कोरे कागज पर दस्तखत कर अम्बेडकर से अपनी तमाम मांगे लिख देने का सौदा भी अम्बेडकर को स्वीकार्य नहीं हुआ।

नवम्बर १९१८ में उन्हें सिडेनहम कालिज बम्बई में "राजनीतिक अर्थ व्यवस्था" के प्रोफेसर के रूप में स्थान मिल गया। उन्होंने अस्थाई रूप से उसे स्वीकार कर लिया क्योंकि उन्हें अक्टूबर १९२१ से पहले पहले अपनी अधूरी शिक्षा पूर्ण करने के लिये पैसा इकट्ठा कर लंदन लौट जाना था। यद्यपि इस पद पर भी उन्हें अछूत होने के कारण पग पग पर अपमान सहना पड़ता था तथापि अपने विद्वतापूर्ण व्याख्यानों के कारण वह विद्यार्थियों में आदर सम्मान की दृष्टि से देखे जाते थे। उन्हें ४५० रू० मासिक वेतन मिलता था। ११ नवम्बर १९१८ से ११ मार्च १९२० तक उन्होंने ७००० रू० बचा लिये थे। कोल्हापुर के शासक शाहू महाराज ने भी १५०० रू० देकर उनकी सहायता की। मार्च १९२० में उन्होंने अपने पद से इस्तीफा दै दिया।

इसी बीच अम्बेडकर को साउथबरो कमीशन के सामने मताधिकार के प्रश्न पर बोलने के लिये बुलाया गया। आगे आने वाले मॉट फोर्ड रिफार्म इसी साउथ बरो कमीशन की रिपोर्ट के आधार बने। अम्बेडकर ने अछूतों के लिये अलग मत–क्षेत्रों की मांग की। इस समय उनकी आयु लगभग २९ वर्ष थी।

३१ जनवरी १९२० को अम्बेडकर ने एक नयी साप्ताहिक पत्रिका भी प्रकाशित करनी प्रारम्भ की। महाराज कोल्हापुर ने इसको भी १०००/– की आर्थिक सहायता दी। परन्तु पत्रिका चल नहीं पाई।

जून १९२१ को वर्न विश्वविद्यालय द्वारा अर्थशास्त्र की एम०एस०सी० डिग्री के लिये अम्बेडकर का शोध पत्र "प्राविन्शियल डी–सेन्ट्रलाइजेशन ऑफ इम्पीरियल फाइनेन्स इन ब्रिटिश इंडिया" स्वीकार कर लिया गया। १९२२–२३ में कुछ मास उन्होने जर्मनी के बॉन विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के अध्ययन में व्यतीत किये। दिसम्बर १९२३ में उन्होंने लंदन से डी०एस०सी० (एकानामिक्स)की डिग्री प्राप्त की। उनका शोध विषय था "रूपये की समस्याः उसका उद्‌गम और निवारण"। यह पुस्तक के रूप में दिसम्बर १९२३ में पी०एस०किंग एंड कम्पनी द्वारा प्रकाशित की गई। पुस्तक की प्रस्तावना उस समय के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो० कैनान ने लिखी थी। पुस्तक की विद्वता और उपयोग के महत्व को देखकर ठक्कर एंड कम्पनी बम्बई ने उसे मई, १९४७ में प्रथम संस्करण के २४ वर्ष बाद दुबारा "हिस्ट्री ऑफ इंडियन करेंसी एंड बैंकिंग" के नाम से छापा।

अप्रैल १९२३ में अम्बेडकर बैरिस्टर हो गये। लंदन में ब्रिटिश शासन के तत्कालीन भारत सचिव ई०एस० मॉन्टेग और विठ्ठल भाई पटेल से भी इसी समय उनकी भेंट हुई और उन्होंने इन महानुभावों से अछूतों की समस्या पर विस्तृत बातचीत की।

यद्यपि किशोरावस्था से ही अम्बेडकर ने किसी न किसी रूप में हिन्दू समाज में अछूतों की समस्या पर विचार करना और उनकी स्थिति सुधारने का कार्य प्रारम्भ कर दिया था किन्तु १९२३ से वह पूरी तरह अछूतों की राजनीति में प्रवेश कर गये थे।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि अम्बेडकर की मान्यताओं की बुनियाद गाँधी जी की भाँति सुनी सुनाई पौराणिक कथाओं पर आधारित नहीं थी। उन्होंने जिस समस्या को अपने राजनीतिक जीवन का लक्ष्य बनाया और जिसके सुधार पर जीवन भर कार्य किया उसका सम्यक दृष्टि से गूढ़ अध्ययन किया था। वह जो कुछ कहते थे उसके तर्क संगत कारण देते थे। भले ही उनके कुछ विचारों से बहुत से लोग सहमत न हों परन्तु उनकी योग्यता, देशभक्ति, खुले विचारों और अछूतों के प्रति निष्ठा पर कभी कोई प्रश्न चिन्ह नहीं लगा सका। इतना ही नहीं **यद्यपि प्रचलित हिन्दू धर्म ने उन्हें बेहद अपमानित और व्यथित किया था उन्होंने सदैव उस धर्म में सुधार की अपील की। अंत समय तक वह वृहत हिन्दू समाज की क्षति करने से बचते रहे। इस्लाम धर्म और उसके इतिहास का जैसा गूढ़ अध्ययन उन्होंने किया था ऐसा कदाचित आज तक किसी हिन्दू राजनीतिज्ञ ने नहीं किया।** इसी कारण वह इस्लाम से उत्पन्न ख़तरे से हिन्दुओं को बराबर चेताते रहे। **इस्लाम अथवा ईसाई मत ग्रहण न करने का भी कारण यही था कि वह इन दोनों धर्मो को राष्ट्र के लिये घातक समझते थे। इसी कारण उनके विचारों में जो यथार्थवादिता, स्पष्टवादिता, प्रौढ़ता और दृढ़ता मिलती है वह दयानन्द के**

अतिरिक्त किसी दूसरे नेता में नहीं मिलती। आगे चल कर यह बात और भी स्पष्ट हो जायगी।

दयानन्द अम्बेडकर से ६७ साल पहले पैदा हुये थे। उस समय हिन्दी भाषा में जिसे दयानन्द समझते थे इस्लाम और ईसाई मत पर कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं थी जैसा कि अम्बेडकर के समय में अंग्रेजी में उपलब्ध हो गई थीं। इसलिये दयानन्द का इस्लाम मत का विश्लेषण उस गहराई का नहीं है जितना अम्बेडकर का। दूसरी बात यह भी है कि दयानन्द का विश्लेषण केवल धार्मिक दृष्टिकोण से है जबकि अम्बेडकर का सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिकोण से। इस प्रकार हिन्दुओं को इस्लाम के खतरे से चेतावनी देने में अम्बेडकर दयानन्द से आगे निकल गये है यद्यपि दोनों की दिशा एक ही है।

अगले पन्नों में हम इन महापुरुषों द्वारा धार्मिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में किये गये कार्यों का संक्षिप्त विवरण देकर उनकी समीक्षा करेंगे।

अम्बेडकर और आर्य समाज के चिन्तन में मतभेद –

अम्बेडकर का कहना है : " समाज सुधारकों का एक दल है जिन्हें आर्य समाजी कहा जाता है। वह सिद्धान्ततः भारत में प्रचलित सहस्रों जाति भेद के स्थान पर समाज को केवल चार वर्णों में बाँटना स्वीकार करते हैं परन्तु उनका कहना है कि यह वर्ण जन्म से नहीं गुण अर्थात व्यक्ति की योग्यता पर आधारित होने चाहिएँ। मैं प्रारम्भ में ही यह स्वीकार करता हूँ कि यह सिद्धान्त योग्यता के आधार पर होते हुए भी मुझे स्वीकार नहीं है। पहली बात तो यह है कि यदि आर्य समाजी हिन्दू समाज में किसी व्यक्ति का स्थान उसकी योग्यता के अनुसार रखने का पक्षधर हैं तो वह अपने नामों के साथ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र सूचक शब्द क्यों जोड़ते हैं ? एक विद्वान व्यक्ति का सम्मान बिना उसके नाम के साथ ब्राह्मण सूचक शब्द जुड़े हुए होना चाहिए। एक सिपाही का बिना क्षत्रिय सूचक नाम के। यदि यूरोपीय समाज अपने सैनिकों और नौकरों का सम्मान बिना उन पर स्थाई लेबिल लगाये कर सकता है तो हिन्दू समाज को उसमें क्या कठिनाई है? इस प्रश्न पर आर्य समाजियों ने कोई विचार नहीं किया है।

"मुझे इन लेबिलों के लगने पर दूसरी आपत्ति यह है कि सुधार का अर्थ है किसी समाज के लोगों की मानसिकता में श्रेष्ठ (और स्वस्थ) परिवर्तन लाने का। यह सभी जानते हैं कि कुछ उपनाम (प्रत्यय जैसे शर्मा, राठौर, अग्रवाल, वाल्मीकि आदि) एक विशिष्ट विचारधारा और मानसिकता के साथ इस प्रकार जुड़े हुये हैं कि वह उस व्यक्ति का दूसरे लोगों और चीजों के प्रति क्या दृष्टिकोण होगा इसका निर्धारण कर देते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र द्योतक नाम प्रत्येक हिन्दू के मन में एक विशेष धारणा से जुड़े हुए है जिसका सम्बन्ध जन्म पर आधारित भेदभाव से

है । जब तक इस प्रकार के नाम किसी व्यक्ति के नाम के साथ जुड़ते रहेंगे जिनसे उसके जन्मना ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र होने का बोध होता है, तब तक इस मानसिकता में बदलाव नहीं आ सकता। और इन वर्णों का जन्म से सम्बन्ध तोड़ा नहीं जा सकता। आवश्यक है कि हिन्दू इस मानसिकता को बिल्कुल त्याग दें। यदि लोगों में नयी मानसिकता का निर्माण करना है तो उनको जन्मगत जाति उपनाम भुला देने होंगे। इस प्रकार के उपनामों का यथावत उपयोग करते रहने से सुधार सम्भव नहीं होगा। योग्यता के आधार पर चातुर्वण्य को स्वीकार करना और साथ ही साथ व्यक्तियों के नाम के साथ जन्म पर आधारित बदबूदार लेबिल लगाना एक धोखा है। इससे आर्य समाज द्वारा वाँछित अछूतोद्धार नहीं हो सकता।

"किसी व्यक्ति की योग्यता के अनुकूल उसकी प्रतिष्ठा उस समाज के मन में आप कैसे स्थापित करेंगे जिसके मन में उसके जन्म के आधार पर उसकी प्रतिष्ठा का विचार (पहले से ही) गहराई तक पैठा हुआ हो? इसके लिए आपको इस पूरे जातीय ढांचे को तोड़ना होगा।

"चातुर्वण्य कोई नया सिद्धान्त नहीं है। यह वेदों जितना ही पुराना है। इसी कारण आर्य समाजी हमसे उसकी स्वीकृति की आशा करते हैं। यदि भूतकाल पर दृष्टि डालें तो सामाजिक संगठन, में चातुर्वण्य घोर असफल रहा है। कितनी बार ब्राह्मणों ने क्षत्रियों के बीज को नष्ट किया और कितनी बार क्षत्रियों ने ब्राह्मणों के बीज को। महाभारत और पुराण इस प्रकार के संघर्षों की घटनाओं से भरे पड़े हैं। ब्राह्मण और क्षत्रिय इस प्रकार की छोटी छोटी बातों पर भी युद्धरत होते रहे हैं कि मार्ग में मिलने पर पहले कौन किसको प्रणाम करेगा अथवा मार्ग देगा। चातुर्वण्य के रहते (इस अंतर–कलह के कारण) कभी कभी प्रजा भगवान से यह प्रार्थना करती दिखाई गई है कि वह ब्राह्मण अथवा क्षत्रियों के इस प्रकार के अत्याचारों को समाप्त करने के लिए अवतार लें।"

आर्य समाजियों के प्रति अम्बेडकर के यह विचार कुछ आर्य समाजियों के व्यक्तिगत आचरण पर आधारित होने के कारण नितांत सत्य है। स्वामी दयानन्द जन्म पर आधारित जाति वाचक उपनामों के विरुद्ध थे। इसलिये आर्य समाज द्वारा संचालित गुरुकुलों में विद्यार्थियों के नाम के साथ जाति सूचक शब्द लगाना एकदम प्रतिबन्धित है। गुरुकुल के जीवन में विद्यार्थियों को यह पता ही नहीं लगता कि जन्मना कौन किस जाति से सम्बन्धित है। वहाँ ब्राह्मण, चमार, भंगी जाति के ब्रह्मचारी अथवा ब्रह्मचारणियाँ एक साथ खाती पीती हैं। वर्षों तक चौबीस घटे साथ रहने, खेलने, कूदने, खाने पीने के बाद भी उन्हें अपने सहपाठियों की जाति का ज्ञान नहीं होता। परन्तु इस दुष्ट जन्मगत जाति प्रथा की जड़े हिन्दू समाज में बहुत गहरी हैं। गुरुकुल से निकलते ही जब इन लोगों के विवाह की बात चलती है तो लगभग सभी अभिभावक अपनी ही जाति के प्रति आकृष्ट होते हैं और उसी में शादी विवाह करते हैं। निश्चय ही कुछ अपवाद भी होते हैं परन्तु वह नगण्य ही हैं ।

यह जड़ें भारत के हिन्दुओं में ही नहीं हिन्दुओं से धर्मान्तरित मुसलमानों में और ईसाइयों में भी कम गहरी नहीं है। उदाहरण के लिये एक सैयद मुसलमान पठानों में, एक शिया सुन्नियों में शादी विवाह करने में कमोवेश उतना ही परहेज करेगा जितना एक ब्राह्मण शूद्र के साथ अथवा प्रोटेस्टेट ईसाई के साथ कोई कैथालिक परिवार। जो हिन्दू जाति मुसलमान अथवा ईसाई हो गई है वह भी अपनी पुरानी हिन्दू जाति में ही विवाह सम्बन्ध करना चाहेगी। राजपूत मुसलमान मुसलमान यादवों (गद्दियों) से अथवा जाट मुसलमानों से विवाह करना अपना अपमान समझते हैं। तथाकथित हिन्दू अछूत जातियों के लोग भी अपने अपने जन्म पर आधारित अलग अलग कठघरों में बंद हैं। एक चमार भंगी से अथवा भंगी बसोर या अन्य जातियों से रोटी बेटी का व्यवहार करने को किसी प्रकार भी तैयार नहीं होगा। बौद्ध धर्म अपनाने वाले दलितों में भी जन्म गत बंधन लगभग ज्यों के त्यों हैं। **जन्म जात जाति की यह बेड़ियाँ इतनी कठोर हैं कि इनको तोड़ने के लिये जाति बंधनों से मुक्त शिक्षा संस्थानों से उत्तम कोई दूसरा साधन अथवा विकल्प नहीं है।** माना कि आर्य समाजी एक दूसरी जाति में बेटी का व्यवहार करने में गुरुकुल शिक्षा के बावजूद असफल रहे हैं परन्तु उन्होंने रोटी का बंधन तोड़ फेंका है। इसमें क्या कोई संदेह कर सकता है और यह कोई कम उपलब्धि नहीं है। गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त माता पिता अपने बच्चों का दूसरी जाति में विवाह करने में उतना संकोच नहीं करते जितना दूसरे लोग। जहाँ एक वैश्य अपने से दूसरी उपजाति के वैश्य के साथ, एक राजपूत दूसरे राजपूत के साथ, एक ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मण के साथ भी विवाह सम्बन्ध बनाने को तैयार नहीं वहां ब्राह्मण–राजपूत, राजपूत–वैश्य, ब्राह्मण–वैश्य,भंगी–चमार, पासी–बसोर इत्यादि अंतर्जातिय विवाह फ़िलहाल सम्भव नहीं हैं। ब्राह्मण–पासी अथवा ब्राह्मण–चमार अथवा राजपूत–भंगी या वैश्य भंगी की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यदि सह–खान पान के बंधन टूट जाँय और कई पीढ़ियों तक जन्मना उपनाम न लगाये जाँय तभी समान गुणकर्म स्वभाव वाले लोगों में जाति भेद भुलाकर अंतर्जातिय विवाह सम्भव हो सकते हैं। इसके लिये आर्य पद्धति के गुरुकुलों से बेहतर दूसरा विकल्प नहीं है।

अम्बेडकर एक परम विद्वान व्यक्ति थे। परन्तु अछूत परिवार में जन्मे होने के कारण उन्होंने अपमान के जो कड़वे घूंट पिये थे उनके फलस्वरूप वह उस जाति प्रथा के उग्र और कट्टर शत्रु बन गये थे। वह अपनी विद्वता के कारण गुणों से ब्राह्मण थे और अपनी पारिवारिक परंपरा की पृष्ठभूमि के कारण उनमें क्षत्रित्व का स्वभाव था। उनकी दूसरी पत्नी एक विदुषी ब्राह्मण थीं और वह जीवन भर एक कर्मयोगी का जीवन जीते रहे। इसलिये हिन्दू समाज में जन्म पर आधारित इस वर्ण और जाति व्यवस्था को उखाड़ फेंकने के लिये वह उग्ररूप से अधीर थे। हमारा अपना मत यह है कि दयानन्द (आर्य समाजी नहीं) का और अम्बेडकर का ध्येय एक

ही था। अंतर केवल यह था कि अम्बेडकर इस महान सामाजिक सुधार को अपने जीवन काल में ही पूरा कर देना चाहते थे। इसलिये उन्होंने दो लाख दलितों के साथ बौद्धधर्म अपनाया। किन्तु जैसा आगे चल कर मालूम होगा अम्बेडकर ने जिस बौद्ध धर्म की कल्पना की थी वह बौद्ध धर्म प्रचलित बौद्ध धर्म नहीं था अपितु उसका अम्बेडकर द्वारा संस्कारित संस्करण था। महाबोधि सोसाइटी ने तो यहाँ तक कह डाला कि वह भगवान बुद्ध का धर्म नहीं था। उसे तो डा० अम्बेडकर का धर्म कहना ही उपयुक्त होगा।

वास्तव में इस वृहत कार्य को न तो दयानन्द, न अम्बेडकर एक जीवन काल में पूरा कर सकते थे न कर पाये। यह कार्य वेदों पर आधारित अंतर्जातीय शिक्षा (गुरुकुल) के माध्यम से ही संपन्न किया जा सकता है और इस में सैकड़ों वर्ष लगेंगे। किसी अमूल्य कपड़े पर धब्बा लग जाने से कपड़े को फेंक नहीं दिया जाना चाहिए। कुशल कारीगर उसे लगातार धोकर धब्बा छुड़ा कर कपड़े को सुरक्षित रखता है। इसलिये यदि वैदिक धर्म में थोड़े बहुत धब्बे समय की गति से पड़ गये है तो उसको त्यागने से काम नहीं चलेगा। बौद्ध धर्म में ही बुद्ध के पश्चात अनेक शाखायें बन गई थी। उनके अनुयाइयों में अनेक दोष उत्पन्न हो गये थे। समय की गति के साथ ऐसा होता ही है। दुर्भाग्य पूर्ण बात यह है कि न तो दयानन्द के और न अम्बेडकर के अनुयाइयों में उनकी विद्वता है न उनकी लगन न उनकी संकल्प शक्ति। इन दोनों महापुरुषों के तथाकथित अधिकांश अनुयाइयों ने जिन्होंने उनको पढ़ा तक भी नहीं है अधिकतर अपना स्वार्थ ही सिद्ध किया है।

यदि इस रोग को दूर करने के उपायों की खोज में अम्बेडकर और दयानन्द का अध्ययन किया जाय तो निश्चय ही दयानन्द द्वारा प्रस्तावित गुरुकुल की जाति बंधन मुक्त सहशिक्षा ही इसका स्थायी इलाज है।

खेल के मैदानों और क्लास रूम में सहचर्य से और छात्रावासों में बिना जाति भेद को जाने वर्षों तक साथ साथ उठने बैठने और खाने से जो आपसी प्रेम और भाई चारा उत्पन्न होता है वह अटूट होता है। उसका कोई दूसरा विकल्प नहीं हो सकता, क्योंकि उसके जैसा जोड़ने वाला सीमेंट कोई नहीं है। निश्चय ही इस कार्य और अपनी पूर्ण क्षमता और दृढ़ संकल्प द्वारा अंजाम देने में भी किसी संकल्प और इच्छा शक्ति सम्पन्न शासन को कम से कम ५०–१०० वर्ष का समय लग सकता है। परन्तु यह देखते हुए कि स्वतंत्रता के पश्चात ५० वर्ष में हमने ५०००० मदरसे लाखों मकतब और सहस्रों ईसाई स्कूल खोलने की अनुमति देकर इस घृणा, रक्तपात और समाज–विखराव को कितना बढ़ावा दे दिया है यह समय अधिक नहीं है। अम्बेडकर ने अन्यत्र कहा है कि हिन्दू समाज के विभिन्न अंगों को जोड़ने वाला ऐसा कोई सीमेंट नही है जैसा कि मुसलमानों में इस्लाम है। अम्बेडकर के प्रति अपार श्रद्धा और सम्मान रखते हुए भी हम इस सीमेंट के अभाव का कारण जाति प्रथा

अथवा चातुर्वण्य को नहीं मानते अपितु उस राष्ट्रीय शिक्षा के अभाव को मानते हैं जिसकी आधार शिला समय के अनुकूल थोड़ा फ़ेरबदल कर वेदों पर आधारित संस्कृति पर हो।

इस्लाम के भिन्न भिन्न वर्गों (जैसे पठान, शेख, जुलाहे, शिया, कादियानी इत्यादि इत्यादि में जिन्हें इस्लाम की जातियाँ कहा जा सकता है) सीमेंट है: उनकी धर्म पुस्तकों में गैर मुसलमानों से और विशेष रूप से मूर्ति और अनेक देवी–देवता पूजकों से (जो अधिकांश हिन्दू है) घोर घृणा करने के आदेश और मकतवो, मदरसों, मस्जिदों, इस्लामी स्कूलों में उन धार्मिक घृणा फैलाने वाले आदेशों का निरंतर, पीढ़ी दर पीढ़ी अध्ययन, मनन और पालन।

यह कितना ही अजीब क्यों न लगता हो सत्य यही है कि मुसलमानों की विभिन्न जातियों को जोड़ने वाली सीमेंट गैर मुसलमानों के प्रति घृणा ही है। यह तभी तक कारगर है जब तक कि इस देश में हिन्दू का अस्तित्व शेष है। मुस्लिम देशों में जहाँ गैर इस्लामी मतों के लोग शेष नहीं रह गये हैं अथवा नगण्य है यह मुस्लिम जातियाँ एक दूसरे से जिस प्रकार का खूनी बैर–भाव रखती हैं और रक्तपात करती हैं उसकी तुलना में हिन्दुओं में छुआछूत और जाति द्वेष उसका शतांश भी नहीं है। मोहम्मद साहब का मुसलमानों को आदेश है कि उनको काफिरों से इतना दूर रहना चाहिये जहाँ से काफिरों के घर का प्रकाश भी उन्हें दिखायी न दे। साधारणतया मृत्यु के उपरान्त मृत व्यक्ति के दोषों को भुला देना अच्छा समझा जाता है। परन्तु इस्लाम में गैर मुसलमानों की मृत्यु पर शोक करना अथवा उनकी आत्मा के लिए शान्ति की प्रार्थना करना भी वर्जित है। हिन्दू समाज में अपने घोर से घोर शत्रु के लिये भी मृत्योपरांत स्वर्गीय शब्द लिखना एक साधारण सी औपचारिकता समझी जाती है। इस्लाम में केवल मृत मुसलमान के लिये ही मरहूम (जिस पर अल्लाह की कृपा है) अथवा जन्नतनशीं (जिसका स्थान जन्नत में है) जैसे शब्दों का प्रयोग किया जा सकता है। इस्लाम में गैर मुसलमान के लिये कभी इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि गैर मुसलमान कितना ही नेक इंसान क्यों न हो इस्लाम में उस पर अल्लाह का रहम अथवा उसके स्वर्ग जाने की कल्पना नहीं की जा सकती। यही कारण था कि पंडित जवाहर लाल नेहरू जैसे धर्मनिरपेक्ष, मुस्लिम परस्त भारत के प्रधानमंत्री के शव पर कुरान की आयतें पढ़ने वालों के विरुद्ध कुरान को अपमानित करने का फतवा मुस्लिम विद्वानों द्वारा दिया गया। इस संदर्भ में कुरान की निम्नलिखित आयतें और इस्लाम के अनतर्राष्ट्रीय ख्याति के विद्वानों के मत दृष्टव्य हैं –

१. हम तुमसे और अल्लाह के सिवा जिसे भी तुम पूजते हो उससे अलग हैं। हम तुम्हें नहीं मानते और हमारे **और तुम्हारे बीच सदा के लिये शत्रुता और विद्वेष उभर आया है**। जब तक कि तुम अकेले अल्लाह पर ईमान न लाओ। (कुरान ६०:४)

२. ऐ ईमान लाने वालों मूर्ति पूजक तो नापाक हैं तो इस वर्ष के पश्चात यह काबे के पास फटकने न पायें। (कुरान ६:२८)

नोटः इस्लाम के आने से पहले काबा एक मूर्ति मन्दिर था। इस्लाम आने के बाद मोहम्मद साहब ने इसमें से तमाम मूर्तियों को निकालकर फेंकवा दिया था और तब से यह इस्लाम का परम पावन स्थल माना जाता है।

३. ए ईमान लाने वालों अपने बापों और अपने भाइयों को (भी) अपना मित्र न बनाओ यदि वे ईमान की अपेक्षा कुफ्र को पसन्द करें ..... (कुरान ६:२३)

४. और (ए नबी) इनमें से (काफिरों में से) जो कोई मरे तुम कभी उस पर (जनाज़े की) नमाज़ न पढ़ना और न उसकी कब्र पर खड़े होना । निस्सन्देह इन्होंने अल्लाह और उसके रसूल पर विश्वास नहीं लाया और मरे तो इस दशा में कि ये दुष्ट कर्म करने वाले थे। (कुरान ६:८४)

५. ए ईमान लाने वालों ईमान वालों के मुकाबले में काफिरों को मित्र न बनाओ .....(कुरान ४:१४४)

६. इन पर (गैर मुसलमानों पर)शैतान छा गया है.....यह शैतान की पार्टी हैं। सुन लो शैतान की पार्टी ही घाटा उठाने वाली है। (५८:१६)

७. .....ये (मुसलमान) अल्लाह की पार्टी हैं। सुन लो अल्लाह की पार्टी ही सफलता पाने वाली है। (कुरान ५८:२२)

इस विषय में जमाते इस्लामी के संस्थापक मौदूदी साहब का कहना है कि इस्लाम पूरी मानवता को दो पार्टियों में विभाजित करता हैः एक अल्लाह की पार्टी और दूसरी शैतान की पार्टी। यद्यपि शैतान की पार्टी में सिद्धान्तों और रीति रिवाजों से सम्बन्धित अलग अलग सम्प्रदाय भले ही हों कुरान उन सब को सम्मिलित मानता है क्योंकि उनका सोचने और कार्य करने का तरीका बहरहाल इस्लाम नहीं है।

मिस्र के शहीद विद्वान सैयद कुत्ब का कहना है कि मुस्लिम समाज के बनने पर उसको शीघ्र ही यह ज्ञान हो जाता है कि संसार में दो पार्टियाँ हैंः एक अल्लाह की पार्टी और दूसरी शैतान की पार्टी। अल्लाह की पार्टी में वे लोग हैं जो अल्लाह की पताका और उसके अधिचिन्ह के नीचे खड़े होते हैं और शैतान की पार्टी में वह लोग हैं जो उनके नीचे खड़े नहीं होते।

मौलाना अबुल कलाम आजाद भी मुसलमानों को अल्लाह की पार्टी मानते हैं।

इस प्रकार इस्लाम पूरी मानवता को निरंतर पारस्परिक घृणा और शत्रुता रखने वाले अल्लाह और शैतान के युद्धरत कैम्पों में विभाजित करता है।

बात केवल मानसिक घृणा पर समाप्त नहीं हो जाती। कुरान ग़ैर इस्लामी मतावलम्बियों को निःशेष कर उनके स्थान पर मुसलमानी मत और इस्लामी कानून

(शरियत) की स्थापना, गैर मुसलमानों की सम्पत्ति और लूट से प्राप्त उनकी भूमि बच्चों और स्त्रियों का अपहरण, और पुरुषों का यदि वह इस्लाम ग्रहण करने को तैयार न हों और अपमानजनक जजिया देने को भी तैयार न हों कत्ले आम की आज्ञा देता है।

१. और तुम उनसे लड़ो यहाँ तक कि मूर्ति पूजक बाकी न रहे और दीन पूरा का पूरा अल्लाह के लिये हो जाय। (कुरान ८:३६)

२. फिर जब चार पवित्र महीने बीत जाँय तो मूर्ति पूजकों को जहाँ कहीं पाओ कत्ल करो और उन्हें पकड़ो और उन्हें घेरो और हर घात की जगह उनकी ताक में बैठो .....(कुरान ६:५)

३. ऐ ईमान वालों उन काफिरों से लड़ो जो तुम्हारे आसपास हैं और चाहिये कि वे तुमसे भय खायें और जान रखो कि अल्लाह उन लोगों के साथ हैं जो (अल्लाह से) डर रखने वाले हैं। (कुरान ६:१२३)

कुछ मुस्लिम विद्वान बचाव में कहते हैं कि इस्लाम केवल अपनी सुरक्षा के लिये युद्ध की सहमति देता है। "सैयद कुत्ब (इस प्रकार के) आधुनिकतावादियों की निन्दा करते हैं जो जिहाद के विषय में यह सफ़ाई देते फिरते हैं कि वह केवल सुरक्षात्मक ही होता है। वह ऐसे लोगों को आध्यात्मिक और बौद्धिक दिवालिया करार देते हैं जो यह समझते है कि इस प्रकार के तर्क देकर वह इस्लाम की खिदमत कर रहे हैं। उनका कहना है कि जब अल्लाह ने मुसलमानों को जिहाद से कुछ समय के लिये रोका था तो वह रणनीति के तहत था सिद्धान्त पर नहीं।

डा० अली ईसा उस्मान जो वर्षों तक यू०एन०आर०डब्लू०ए० के शिक्षा-परामर्शदाता रहे हैं (द मुस्लिम माइन्ड – लांग मैन १९७६) लिखते हैं "इस्लाम का प्रसार सदैव सैनिक रहा है। इसके विषय में किसी को भी खेदसूचक होने की आवश्यकता नहीं है। कुरान कहती है कि **इस्लाम की स्थापना के लिए युद्ध करना आवश्यक है।**

कुरान के हिन्दी अनुवादकर्ता विद्वान मो० फारुक खाँ (मकतबा अलहसना८ २२४१ कूचा चेलान दरियागंज, नई दिल्ली) फ़र्माते हैं कि इस्लाम एक सम्पूर्ण जीवन व्यवस्था है। उसकी स्थापना के लिये उसकी गैर इस्लाम से रक्षा करना ही आवश्यक नहीं है। ऐसा समय भी आता है जब उसकी स्थापना के लिये उसके विरोधियों को नष्ट करना आवश्यक हो जाता है और आक्रमण आवश्यक हो जाता है।

इस्लाम का अनेक देशों में फैलने का इतिहास उपरोक्त तथ्यों की पुष्टि करता है। अरब और फिर दूसरे मुस्लिम देशों से चल कर जो मुस्लिम सेनायें सीरिया, ईराक, ईरान, मिस्र, उत्तरी अफ्रीका, स्पेन, मध्य एशिया, सिन्ध इत्यादि देशों को इस्लामी देश बनाने पहुंची उनका मुख्य उद्देश्य इन देशों में दूसरे मतों को

निःशेष कर इस्लाम और इस्लामी कानून शरियत की स्थापना ही था। इन आक्रमणों का कारण इन देशों द्वारा मुस्लिम देश के विरुद्ध कोई उत्तेजनात्मक सैनिक कार्यवाही नहीं थी। यह कोरे धार्मिक उन्माद जन्य युद्ध थे जिसमें स्त्रियां, बच्चे, बूढ़े और साधारण नागरिक सभी हिंसा के शिकार होते थे। इन युद्धों को कोरा सुरक्षात्मक युद्ध कहना नितांत असत्य है। श्री एम०आर०ए० बेग अपनी पुस्तक "द मुस्लिम डिलेमा इन इण्डिया" में स्पष्ट लिखते हैं कि : "इस्लाम और उसका समस्त तन्त्र दूसरे सभी मतों को नष्ट करने के लिये सोचा और बनाया गया है।" वह यह भी कहते हैं कि "जब मुसलमानों की संख्या कम थी तो कुरान उनको आक्रमण से रोकती थी किन्तु बाद में जब वह शक्तिशाली हो गये तो युद्ध में लूटी हुई सम्पत्ति और स्त्री वन्दनियों का विवरण है। निश्चय ही यह सुरक्षात्मक युद्ध के परिणाम तो नहीं हो सकते।"

उपरोक्त तथ्यों को देखते हुए हम डॉ० अम्बेडकर की अध्ययनशीलता और विद्वता पर मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकते। अम्बेडकर द्वारा लिखित उनकी पुस्तक पाकिस्तान के निम्नलिखित अंशों से इस्लाम के विषय में उनकी गहन जानकारी का हमको कुछ आभास हो सकता है।

मुस्लिम आक्रमणकारियों ने क्या किया ?

"भारत पर आक्रमण करने में पठान तातारियों को नष्ट करने पर कटिबद्ध थे और मंगोल तातारियों और पठानों दोनों को नष्ट करने पर आमादा थे। उनमें इस्लामी भ्रातृत्ववाद के कारण परस्पर कोई प्रेम सम्बन्ध नहीं था। वह एक दूसरे के घातक शत्रु थे और उनके आपसी युद्धों का ध्येय बहुधा एक दूसरे को जड़ मूल से नष्ट करना होता था। **किन्तु समझने योग्य महत्वपूर्ण बात यह है कि आपस में घातक युद्धरत होते हुए भी वह अपने एक समान ध्येय से संगठित थेः हिन्दू धर्म को पूर्णतया नष्ट करना।"** (पाकिस्तान : पृष्ठ ३६)

"निःसन्देह उन आक्रमणकारियों ने भारत में हिन्दुओं के विरुद्ध घृणा के गीत गाते हुए प्रवेश किया। किन्तु वह यह गीत गाकर और मार्ग में कुछ मंदिरों को तोड़ कर ही वापिस नहीं चले गये। यदि उन्होंने ऐसा किया होता तो यह एक वरदान ही होता। वह इतने से संतुष्ट नहीं हुये। उन्होंने एक महत्वपूर्ण कार्य कियाः भारत में इस्लाम रूपी वृक्ष का बीजारोपण। इस वृक्ष के बढ़ने की गति सचमुच अद्भुत है। यह कोई साधारण छोटा पौधा नहीं है। यह ओक वृक्ष की भांति विशाल और मज़बूत है।.....उसकी तुलना में प्रचलित हिन्दू और बौद्ध धर्म छोटी छोटी झाड़ियाँ मात्र हैं। सिक्ख रूपी कुल्हाड़ी भी इस ओक को काट नहीं सकी।" (पाकिस्तान पृ० ४७, ४८)

हिन्दू मुसलमानों में कुछ समान रीति रिवाज सम्मिश्रित संस्कृति के चिन्ह नहीं।

"समान रीति रिवाज़ जानबूझकर सामाजिक सद्भाव के विकास की दृष्टि

से स्वीकार नहीं किये गये हैं।.....अंशतः यह समान रीति रिवाज् अपूर्ण धर्म परिवर्तन के अवशेष मात्र हैं। (अनेक कारणों वश) हिन्दुओं का धर्मान्तरण इतना प्रभावी नहीं हुआ। धर्मान्तरितों की संख्या बहुत होने, समय और मिशनरियों की संख्या कम होने के कारण मुस्लिमों में उनके कुछ हिन्दू रीति रिवाज़ शेष रह गये।" (पाकिस्तान पृ०–१५) इन अवशेष हिन्दू रिवाजों से मुस्लिम समाज को मुक्त करने पर लाखों मिशनरी और करोड़ों रूपये लग रहे हैं।

हिन्दू–मुस्लिम सम्बन्ध

"यथार्थ वादी (हिन्दुओं) को यह बात नोट कर लेनी चाहिये कि मुसलमानों की दृष्टि में हिन्दू काफ़िर होते हैं जो रक्षा करने के स्थान पर नष्ट कर दिये जाने योग्य हैं।" (पाकिस्तान पृ०–८३)

मुस्लिम द्वार रक्षक

"यह नहीं भूलना चाहिये कि १६१६ ई० में (जब गाँधी जी के नेतृत्व में चलने वाले ख़िलाफ़त आंदोलन में हिन्दू–मुस्लिम प्रेम सम्बन्ध चरम सीमा पर थे) भारतीय मुसलमानों ने अफगानिस्तान के अमीर को भारत पर आक्रमण करने के लिये आमंत्रित किया था।" (पाकिस्तान पृ०–८३)

"मान लो अफगान अकेले अथवा दूसरे मस्लिम देशों से मिलकर भारत पर आक्रमण कर दें तो क्या हमारे यह (मुस्लिम) द्वार रक्षक उन आक्रमणकारियों को रोकेंगे अथवा उनको अंदर आने देंगे ? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसकी उपेक्षा कोई हिन्दू नहीं कर सकता। ..... (सेना में भर्ती की) यह मांग मुसलमानों द्वारा विभाजन पश्चात निश्चय ही उठाई जायेगी और मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं का विरोध किसी न किसी प्रकार सदैव सफल हो जाता है।" (पाकिस्तान पृ०–८२–८३)

".....फिर (पाकिस्तान के संदर्भ में) कौन सा विकल्प उत्तम है ? : **यह विरोध मुसलमान बाहर रहकर करें अथवा भीतर रहकर ? यह प्रश्न किसी भी समझदार व्यक्ति से पूछा जाय तो उसका एक ही उत्तर होगा : यदि मुसलमानों को सदैव हिन्दुओं का विरोध करना ही है तो उत्तम है कि वह बाहर जाकर ही विरोध करें न कि अंदर रहकर।** (पाकिस्तान पृ०–८५)

डा० अम्बेडकर की यह शंका सत्य प्रमाणित हुई। "१६४७ में विभाजन के समय सेना और पुलिस में मुसलमानों की भरमार थी,..... उनमें से अनेक अपनी वर्दी और हथियार लेकर फ़रार हो गये थे। शेष की निष्ठा संदिग्ध थी। सरकार को अन्य प्रान्तों से पुलिस और सेना बुलानी पड़ी।" (आचार्य कृपलानी : गाँधी पृ०–२६१)

पाकिस्तान में तो मुस्लिम पुलिस और सेना हिन्दू नागरिकों की लूट और रक्त पात में खुल्लम–खुल्ला शामिल हो गई थी।

हिन्दू समाज की स्थिति

"यह सत्य है कि हिन्दू संगठित हो रहे हैं।..... किन्तु इस कार्य के पूण

होने से पहले ऐसा कुछ घटित हो सकता है जिससे इस कार्य में बाधा पड़कर पूरे देश में इस दिशा में किया गया कार्य नष्ट हो जाय।" (पाकिस्तान पृ०–५५१)

देश में उभरते जातिवाद ब्राह्मणवाद और ठाकुरवाद, दलितवाद, अगड़ा पिछड़ावाद, उत्तर दक्षिणवाद, भाषा भाषी वाद, राम रावणवाद आर्य द्रविणवाद अम्बेडकर की आशंका को सिद्ध कर रहे हैं।

मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं पर किये गये अत्याचारों पर मुस्लिम प्रतिक्रिया।

"उस दशा में भी जब मुसलमान हिन्दुओं पर घोर अत्याचार के दोषी थे गाँधी जी ने उनसे जवाब तलब नहीं किया (पाकिस्तान पृ०–१४६).....मुस्लिम नेताओं ने भी इन अपराधियों की भर्त्सना नहीं की। **इसके विपरीत उनको धार्मिक शहीद कह कर उनकी प्रशंसा की गई।"** (पाकिस्तान पृ०–१४७)

आज भी क्या आपने किसी मुस्लिम नेता के मुख से मुस्लिम आतंकवादियों द्वारा काश्मीर के निर्दोष हिन्दुओं पर किये जा रहे अत्याचारों की भर्त्सना का एक भी शब्द सुना है? क्या बंबई, दिल्ली और ट्रेनों में अनेक विस्फोटों के विरुद्ध किसी मदरसे या उलमा ने फतवा दिया है जैसा कि खिलाफत के समय १२० उलेमा ने गाँधी के विरुद्ध दिया था? निश्चय ही इस प्रकार के फतवे से इस प्रकार की घटनायें ६० प्रतिशत कम हो सकती हैं।

हिन्दू मुस्लिम एकता के प्रयासों की विफलता के कारण

"हिन्दू मुस्लिम एकता के प्रयासों की विफलता का कारण इस तथ्य को न समझना है कि यह वैमनस्य केवल भौतिक कारणों से नहीं है। यह आध्यात्मिक है। इसका कारण ऐतिहासिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक वैमनस्य है। राजनीतिक वैमनस्य तो उसकी परछाई मात्र है।" (पाकिस्तान पृ०–३२४)

"इस्लाम में मानव भ्रातृत्ववाद मुसलमानों के लिए है। भाईचारा तो है परन्तु उसका लाभ उन्हीं के लिए है जो इस्लाम की सीमा रेखा के भीतर हैं। जो उसके बाहर हैं उनके लिए शत्रुता और अपमान के अतिरिक्त और कुछ नहीं है"। (पाकिस्तानः पृ०–३२५)

दलितोद्धार पर गाँधी – अम्बेडकर मतभेद

अम्बेडकर कहते हैं : "मुझे यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि वर्ण की **वैदिक थ्योरी की जिस प्रकार स्वामी दयानन्द और कुछ दूसरे लोगों द्वारा विवेचना की गयी है वह युक्तियुक्त तथा आपत्ति हीन है।** वह किसी व्यक्ति का समाज में स्थान जन्म के आधार पर निर्धारित नहीं करती। वह केवल उसकी योग्यता को ही प्रमाण मानती है। **महात्मा गाँधी के वैदिक वर्ण के विषय में विचार न केवल मूर्खतापूर्ण है अपितु उसको एक घृणित और निकृष्ट सिद्धान्त बना देते हैं**.....मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि महात्मा जी का यह सब भ्रम इस कारण है

कि वर्ण और जाति के विषय में उनमें अत्यन्त मतिभ्रम है कि वर्ण क्या है और जाति क्या है और हिन्दुत्व की रक्षा में इनमें से किसी की भी क्या उपयोगिता हो सकती है ? .....महात्मा जी इस प्रकार के भ्रम में क्यों फंसे है इसके कदाचित दो कारण हो सकते हैं। पहला कारण तो उनका स्वभाव ही है जिसके कारण प्रत्येक बात को समझने में वह बच्चों जैसी समझ बूझ और अपने को धोखा देने की प्रवृत्ति रखते हैं। एक बच्चे की भाँति वह उस किसी भी बात में विश्वास कर सकते हैं जिसमें वह विश्वास करना चाहते हैं । दूसरा कारण यह है कि वह एक साथ एक महात्मा और राजनीतिज्ञ की भूमिका निभाना चाहते हैं। महात्मा होने के नाते वह राजनीति को आध्यात्मिक बनाने का प्रयास कर रहे हैं। वे इसमें सफल हुए हों या न हुये हों राजनीति निश्चय ही उनका एक व्यापारिक वस्तु की भाँति प्रयोग करने में सफल हो गई हैं। एक राजनीतिज्ञ को यह बात समझनी चाहिये कि समाज पूर्ण सत्य को कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता। और **इसलिये राजनीतिज्ञ को पूर्ण सत्य कभी नहीं बोलना चाहिये।** यदि वह पूर्ण सत्य बोलेगा तो यह उसकी राजनीति के लिए बुरा होगा। **महात्मा जाति और वर्ण को समर्थन इसलिए दे रहे हैं कि वह डरते हैं कि यदि वह इनका विरोध करेंगे तो भारत की राजनीति में अपना स्थान खो बैठेंगे।** उनके भ्रम का कारण कुछ भी क्यों न हो उनको यह साफ तौर से बताना पड़ेगा कि वह वर्ण के नाम से जाति का प्रचार कर अपने को भी धोखा दे रहे हैं और जनता को भी।" (डा० अम्बेडकर : राइटिंग्ज़ एंड स्पीचेज़ खंड–१, पृ०– ६२–६४)

अम्बेडकर स्वयं राजनीतिज्ञ थे इसलिये उनकी अपनी स्वीकारोक्ति के पश्चात क्या उनसे पूर्ण सत्य की आशा की जा सकती है ? स्वामी दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द राजनीतिज्ञ नहीं थे। उनको राजनीति से कुछ भी लेना देना नहीं था। इसलिये अम्बेडकर और गाँधी पर तो राजनीति वश थोड़ा असत्य का सहारा लेने का संदेह किया जा सकता है दयानन्द और विवेकानन्द पर नहीं। अम्बेडकर ने स्वयं दयानन्द और श्रद्धानन्द के दलितों के प्रति प्रेम और उनके उद्धार के लिये किये गये प्रयासों की भूरि–भूरि प्रशंसा की है। क्या ही अच्छा होता यदि उनके जैसा कर्मठ और ज्ञानी नेता श्रद्धानन्द के साथ मिल कर आर्य समाज का नेतृत्व संभाल लेता ? श्रद्धानन्द के वध के बाद आर्य समाज नेतृत्व विहीन हो गया था। उस रिक्तता को अम्बेडकर अपने दो लाख अनुयाइयों के साथ आर्य जगत में प्रवेश कर भर सकते थे। उनके और दयानन्द के चिंतन में कुछ साधारण मतभेदों के बावजूद कितनी सादृष्यता है यह पाठक स्वयं अनुभव कर सकते हैं।

यहाँ प्रसंगवश यह बताना आवश्यक है कि भारत के इस्लामीकरण अथवा ईसाईकरण को अपनी धार्मिक बाध्यता समझने वाले मुसलमान और ईसाई नेतृत्व की दृष्टि सदैव हिन्दू समाज के अछूत वर्ग पर रही है। इसके लिये वह चाहते रहे हैं कि अछूत हिन्दुओं के लिए सदैव अछूत बने रहें। उनमें सामाजिक विद्वेश बना रहे।

कांग्रेस सदैव अछूतों और मुसलमान तथा ईसाई अल्पसंख्यकों को अपना वोट बैंक मानती रही है। इसलिये इस विषय में उसकी साँप छछूँदर की गति रही है। केवल उसकी ही क्यों प्रत्येक राजनीतिक पार्टी की यही गति रही है और रहेगी। कोई भी कार्यक्रम जिससे अछूतों का वास्तविक उत्कर्ष होता हो, उनमें और सवर्ण हिन्दुओं में परस्पर बराबरी और भ्रातृभाव उत्पन्न हो तथा हिन्दू समाज बलशाली बने वह कार्यक्रम कितना ही तर्कसंगत क्यों न हो इन अल्पसंख्यकों द्वारा पसंद नहीं किया जा सकेगा। और जो अल्पसंख्यकों को ना पसंद हो उसे भारत की कोई भी राजनीतिक पार्टी कार्यान्वयन करने का साहस नहीं जुटा सकती। केवल कुछ घटनाओं का उल्लेख इस बात के समर्थन में पर्याप्त होगा।

अछूतोद्धार कार्यक्रम अथवा कम से कम उसका दिखावा उनके वोट प्राप्त करने के लिये आवश्यक था। पहले तो कांग्रेस मुसलमानों के वोट खोने के भय से यह कह कर इस कार्य को टालती रही थी कि वह एक राजनीतिक संगठन होने के नाते सामाजिक सुधार का कार्य नहीं कर सकती थी। परन्तु आर्य समाज आन्दोलन जोर पकड़ रहा था। उसका विशेष ध्येय था हिन्दुओं में प्रवेश कर गये रीति रिवाजों, अन्धविश्वासों का उन्मूलन करना। इसलिये छुआछूत को मिटाकर अछूतों को वैदिक शिक्षा द्वारा हिन्दू समाज में सम्मान पूर्वक स्थान दिलाने के कार्य को आर्य समाज ने अपने कार्यक्रम में प्रथम स्थान पर रखा था। धर्मान्तरित बन्धुओं को वापिस हिन्दू धर्म में लाना (शुद्धि) इस कार्यक्रम का दूसरा महत्वपूर्ण भाग था। मुसलमान इस प्रकार के कार्यक्रमों के घोर विरोधी थे क्योंकि इससे उनकी भारत के इस्लामीकरण की योजना पर सीधा आघात होता था।

मौलाना अब्दुल वारी खिलाफत आंदोलन के प्रमुख राष्ट्रीय मुस्लिम कहे जाते थे। गाँधी जी उनको मानते थे। उन्हीं मौ० अब्दुल वारी का कहना था : "मैं स्पष्ट रूप से कह देना चाहता हूँ कि प्रत्येक विपक्षी व शत्रु से यहाँ तक कि अंग्रेजों से भी सुलह हो सकती है परन्तु इस्लाम का परित्याग करने वालों के साथ सुलह असंभव है ..... हम साँपों और बिच्छुओं के साथ रह सकते हैं किन्तु उन लोगों के साथ नहीं जो इस्लाम धर्म को छोड़ देते हैं या जो उनको इसके लिये प्रेरित करते हैं।" हिन्दू संगठन और शुद्धी आन्दोलन के संस्थापक स्वामी श्रद्धानन्द की एक मुस्लिम युवक द्वारा हत्या कर दी गयी।

आर्य समाज के बढ़ते प्रभाव से कांग्रेस को जब खतरा मालूम होने लगा तो समाज सुधार के कार्य के लिये कांग्रेस ने एक दूसरी संस्था बनाई "इण्डियन नेशनल सोशल कान्फ्रेंस।" इसका अधिवेशन कांग्रेस अधिवेशन के साथ ही रखा जाता था और कांग्रेस नेता ही इसको चलाते थे परन्तु दूसरे नाम से।

१८९९ में लखनऊ में कांग्रेस अधिवेशन हुआ। उसी अवसर पर इण्डियन नेशनल सोशल कान्फ्रेंस का भी अधिवेशन आयोजित किया गया। इस अधिवेशन में

स्व० राजा बैजनाथ अध्यक्ष थे और मार्ग निर्देशन के लिए श्री रानाडे भी उपस्थित थे। एक मुस्लिम प्रतिनिधि भी इसमें भाग ले रहे थे और वह थे बरेली के कोई मुफ्ती साहब। जब बाल विधवाओं के पुर्नविवाह का समर्थन करने वाला प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया तो मुफ्ती साहब ने बोलने की अनुमति माँगी। अध्यक्ष ने मुफ्ती साहब से कहा कि प्रस्ताव का सम्बन्ध केवल हिन्दुओं से है इसलिए उन्हें बोलने की आवश्यकता नहीं है। इस पर मुफ्ती साहब आपे से बाहर हो गये और पूछा : "तब इसका नाम नेशनल क्यूँ रखा है।" मुफ्ती साहब को अपनी बात कहने की अनुमति दी गयी। उन्होंने कहा कि हिन्दू शास्त्र पुर्नविवाह की आज्ञा नहीं देते। अतः उस पर आग्रह करना पाप है। जब उन लोगों के पुनः धर्मान्तरण का प्रस्ताव लाया गया जो ईसाई अथवा मुसलमान बन चुके थे तो मुफ्ती साहब का आग्रह था कि जब कोई व्यक्ति हिन्दू धर्म को त्याग कर विधर्मी बन जाता है तो उसे पुनरागमन की अनुमति देकर हिन्दू समाज को भ्रष्ट नहीं करने देना चाहिए। स्वामी श्रद्धानन्द जो इस सभा में उपस्थित थे लिखते हैं कि श्री रानाडे और अन्य किसी हिन्दू नेता को इसका कोई उत्तर नहीं सूझा और मुफ्ती साहब निश्चय ही चुपके–चुपके हँस रहे होंगे।

कोकनाडा के कांग्रेस अधिवेशन पर कांग्रेस अध्यक्ष मोहम्मद अली ने वन्दे मातरम् के गायन पर कठोर आपत्ति की। उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि भारत के अछूतों में से आधों को इस्लाम में दीक्षित करने की छूट मुस्लिम धर्म प्रचारकों को दे दी जाय।

१९१७ ई० में मिसेज एनी बीसेंट की अध्यक्षता में कलकत्ता में कांग्रेस अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पास किया :

"कांग्रेस भारत के नागरिकों से दलित वर्ग के लोगों पर रूढ़ाचार द्वारा लादी गई इन अपंगताओं को जो अत्यंत उत्पीड़न तथा दमन करने वाली हैं तथा जिनके कारण इस वर्ग के लोगों को अत्यधिक परेशानी और असुविधा का सामना करना पड़ता है, दूर करने की धर्म परायणता को स्वीकार करने का आग्रह करती है।"

दलित वर्ग की समस्याओं पर विचार करने और उनको दूर करने का प्रश्न कांग्रेस के जन्म से उठता रहा था। परन्तु कांग्रेस सदैव यह कह कर उससे अपना पल्ला झाड़ती रही थी कि सामाजिक सुधार कांग्रेस जैसे राजनैतिक प्रोग्राम वाले दल के कार्यक्रम में शामिल नहीं किया जा सकता। उसके लिये इसका अलग मंच होना चाहिये।

अम्बेडकर पूछते हैं: "फिर १९१७ में ऐसा क्या हुआ कि कांग्रेस उस प्रस्ताव को पास करने के लिये विवश हो गई ?" अपने प्रश्न का उत्तर देते हुए अम्बेडकर कहते हैं कि "दलितों के प्रति सहसा ही उपजी कांग्रेस की सहानुभूति का कारण दलित समाज द्वारा बम्बई में आयोजित अलग अलग अध्यक्षों की अध्यक्षता में नवम्बर

१६१७ में हुई दो सार्वजनिक सभायें थीं। एक सभा के अध्यक्ष सर नारायण चन्द्रावरकर थे। दूसरी के बापू जी नामदेव वागडे जो नान ब्राह्मण पार्टी के नेता थे। इन दोनों सभाओं में जो प्रस्ताव पास हुये थे उनमें ब्रिटिश शासन के प्रति वफ़ादारी प्रकट की गई थी और प्रशासनिक सुधारों के साथ साथ मांग की गई थी कि **वह दलितों की सख्या को देखते हुये उनके लिये उचित तथा निःशुल्क शिक्षा संस्थान खोलें जिससे दलितों के बच्चे भी शिक्षा प्राप्त कर दूसरे भारतीय नागरिकों के समकक्ष आ सकें। ***

"दूसरे प्रस्ताव द्वारा कांग्रेस से अपील की गई थी कि अपने अगले अधिवेशन में वह उस प्रकार का प्रस्ताव पास करे जो ऊपर दिया गया है।

"तीसरे प्रस्ताव द्वारा दलितों के अतिरिक्त शेष हिन्दू समाज से भी उसी प्रकार की अपील की गई थी।

"एक प्रस्ताव यह भी पास किया गया था कि जब तक दलितों को देश के प्रशासन में और विधान सभाओं में प्रभावशाली भूमिका नहीं मिलती तब तक शासन अंग्रेजों के हाथ में ही रहना चाहिये। और यदि ब्रिटिश शासन भारत के निवासियों को राजनीतिक अधिकार देना निश्चय करता है तो दलितों को अपने द्वारा चुने गये प्रतिनिधि विधान सभाओं में भेजने का अधिकार दिया जाना चाहिए।

"इन सभाओं में दलितों के जोश और उससे उत्पन्न अपनी राजनैतिक आकांक्षाओं से सम्भावित खतरे को भांपकर कांग्रेस ने सर नारायण चंद्रावरकर की सहायता ली। डिप्रेस्ड क्लासेज़ मिशन सोसाइटी के अध्यक्ष होने के नाते सर चन्द्रावरकर का दलित वर्ग में काफ़ी प्रभाव था। उनके प्रभाव और उनके प्रति आदर के कारण ही दलितों का एक वर्ग कांग्रेस–लीग स्कीम को समर्थन देने को तैयार हो गया।

"१६२२ से पहले कांग्रेस कुछ एक विद्वानों का संगठन था जिनका जन साधारण से कोई वास्ता नहीं था। १६२२ के आते आते गाँधी जी के प्रयासों से कांग्रेस की जड़ें गाँव–गाँव में फैल गईं। सामाजिक सुधार इस नई कांग्रेस का एक मुख्य प्रोग्राम था। बारदोलाई में फरवरी १६२२ में हुए अधिवेशन में कांग्रेस की वर्किंग कमेटी ने जो प्रोग्राम निश्चित किया उसमें अन्य निर्णयों के साथ साथ निम्नलिखित निर्णय लिये गये।

१. कांग्रेस के कम से कम एक करोड़ सदस्य बनाये जाँय।

२.

** दलितोद्धार की बात सभी राजनैतिक दल करते हैं परन्तु उनके वास्तविक कल्याण के लिए उत्तम शिक्षा संस्थानों में निःशुल्क शिक्षा के स्थान पर वह अम्बेडकर तथा दूसरे नेताओं की मूर्तियां स्थापित करते है, पार्क, उद्यानों, सड़कों और जनपदों का नाम उनके नाम के साथ जोड़ते हैं।*

३.

४. दलित वर्ग के लोगों को बेहतर जीवन जीने के लिये संगठिन किया जाय जिससे उनकी सामाजिक, बौद्धिक और नैतिक स्थिति में सुधार आये और वह अपने बच्चों को राष्ट्रीय स्कूलों में शिक्षा दिला कर उन सभी सुविधाओं को प्राप्त करें जो दूसरे नागरिकों को उपलब्ध हैं।

५. शराब तथा नशाबन्दी

६.

७.

८.

अम्बेडकर कहते हैं: "अब मैं बताता हूँ कि बारदोली में दलितों के संबन्ध में पास किये गये प्रस्ताव का क्या हुआ ? ६ जून १६२२ में लखनऊ में हुई वर्किंग कमेटी में इस प्रस्ताव पर यह निर्णय लिया गया–

"यह कमेटी स्वामी श्रद्धानन्द, मिसेज सरोजनी नायडू, श्री आई० के० यागनीक और जी०आर० देशपांडे की एक कमेटी नियुक्त करती है। यह कमेटी सुझायेगी कि देश भर में दलितों की दशा सुधारने के लिये क्या व्यवहारिक पग उठाये जाँय और अपने सुझाव इस कमेटी की अगली मीटिंग में पेश करेगी। इस कार्य के लिये फिलहाल २ लाख रुपया स्वीकृत किया जाता है।"

"इस प्रस्ताव को आल इंडिया कांग्रेस वर्किंग कमेटी की जून १६२२ को लखनऊ में हुई मीटिंग के समक्ष रखा गया और स्वीकृत राशि २ लाख रुपये को बढ़ाकर ५ लाख कर दिया गया।

"किन्तु इसी मीटिंग में कांग्रेस द्वारा दलितोद्वार कार्य के लिये नियुक्त कमेटी से स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा त्याग पत्र देने संबंधी उनका ८ जून १६२२ का पत्र भी पढ़ा गया और साथ ही साथ मिस्टर गंगाधर राव देशपांडे को दलितोद्वार कार्य की रूपरेखा तैयार करने के लिये बनाई गई सब कमेटी का कनवीनर नियुक्त कर दिया गया। इसी सब कमेटी को स्वामी श्रद्धानन्द के त्याग पत्र पर निर्णय लेने को कहा गया।"

डा० अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक 'व्हाट कांग्रेस एंड गाँधी हैव डन टू द अनटचेबिल्स' में स्वामी श्रद्धानन्द और कांग्रेस की वर्किंग कमेटी के सिक्रेटरी पं० मोतीलाल नेहरू के बीच हुये पूरे पत्र व्यवहार को प्रकाशित किया है जिससे स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा इस सब कमेटी से त्याग पत्र देने के वास्तविक कारणों पर प्रकाश पड़ता है। इस विषय पर विचार करते समय इस पूरे पत्र व्यवहार को पढ़ने पर डा० अम्बेडकर द्वारा लगाये गये उन आरोपों की पुष्टि होती है जो हम आगे दे रहे हैं। स्थान के अभाव के कारण इस पूरे पत्र व्यवहार का देना सम्भव नहीं है। स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने त्याग पत्र के दो मूल कारण बताये हैं:

१. दलितोद्धार सब कमेटी जब बनाई गई थी तो उसमें स्वामी श्रद्धानन्द को कनवीनर बनाने का निश्चय हुआ था परन्तु औपचारिक घोषणा में प्रस्ताव में कनवीनर की नियुक्ति का कोई जिक्र नहीं किया गया।

२. उन्होंने इस कार्य के महत्व और उसके वृहत आकार को देखते हुये दलितोद्धार कार्य की रूपरेखा बनाने के लिये जो १०००० रुपये की मांग की थी उस पर भी अगली मीटिंग में कोई निर्णय नहीं लिया गया जब कि अनेक दूसरे कार्यों के लिये जिनका महत्व दलितोद्धार कार्य से कहीं कम है अथवा बिल्कुल भी नहीं है रुपया स्वीकृत किया गया है। और देशपांडे को सब कमेटी का कनवीनर नियुक्त कर दिया गया।

स्वामी श्रद्धानन्द ने कांग्रेस और गाँधी जी की उपेक्षा से खिन्न होकर लिखा था :

"अछूतोद्धार का कार्य अत्यावश्यक है। मैं किसी भी कारणवश उसमें बिलम्ब करना नहीं चाहता। कृपया मेरा त्याग पत्र तुरन्त स्वीकार करें जिससे मैं इस महत्वूर्ण कार्य को अपने तरीके से करने के लिए स्वतंत्र हो जाऊँ।

"अमृतसर और मियावाली जेलों में मेरा अनुभव और वहाँ जो सूचनायें मुझे मिली हैं **उनसे मेरा दृढ़ विश्वास बना है कि जब तक पुरातन आर्य परम्परा के अनुकूल ब्रह्मचर्य पालन (गुरुकुल शिक्षा प्रणाली पढ़े) की श्रेष्ठता की पुनर्स्थापना और छुआछूत का कोढ़ समूल नष्ट नहीं किया जायगा कांग्रेस अथवा किसी भी दूसरे संगठनों द्वारा स्वराज्य के लिये किये गये प्रयास सफल नहीं होंगे** । एक सन्यासी होने के नाते मुझे अपना शेष जीवन इस पावन कार्य में (स्वतंत्र रूप में) लगाना चाहिये।"

डा० अम्बेडकर कहते हैं कि "**स्वामी श्रद्धानन्द दलितों के सबसे बड़े और निष्ठावान समर्थक थे। इसमें रत्तीभर भी संदेह नहीं है कि यदि वह कांग्रेस की अछूतोद्धार सब कमेटी में कार्यरत रहते तो इस कार्य के लिये बहुत विशाल (और प्रभावी) स्कीम बनाते। और कांग्रेस के (एक करोड़ तीस लाख के तिलक स्वराज्य फंड के नाम पर इकट्ठे किये गये) धन से इस कार्य के लिये एक बड़ी रकम की मांग करते।** क्या उनको इस कार्य से हटाये जाने का यही कारण नहीं था?"

उपरोक्त उद्धृत पुस्तक में डा० अम्बेडकर ने तिलक फंड से अन्य महत्वहीन और कभी कभी फर्ज़ी कार्यों के लिये धन वितरण की अनेक तालिकायें देकर अपने दृष्टिकोण को सिद्ध किया है। और स्वामी श्रद्धानन्द के स्थान पर एक ब्राह्मण (देशपांडे) को कमेटी कनवीनर नियुक्त करने के पीछे दलितोद्धार के कार्य को एक दिखावा मात्र बनाने का आरोप लगाया है जो बेबुनियाद नहीं है।

"१९३१ ई० में लंदन में संपन्न राउंड टेबिल कान्फ्रेन्स में भी गाँधी जी ने दलितों के विरुद्ध वही अड़ियल रवैया अपनाया। वह मुसलमानों और सिखों को तो

उनकी संख्या के अनुरूप अलग निर्वाचन मंडल (Electoral Constituencies) देने को तैयार थे परन्तु दलितों को नहीं। इसका कारण वह दलितों के प्रति अपनी निष्ठा जताते थे। अपने को दलितों का एक मात्र प्रतिनिधि और शुभ चिन्तक होने का दावा करते थे। उनका तर्क था कि ऐसा करने पर दलितों पर सदैव दलित रहने का ठप्पा लग जायगा।" गाँधी जी की अनेक तर्कविरुद्ध बातों में उनकी इस बात को हम गाँधी जी की सत्यनिष्ठा मान भी लें तो कांग्रेस ने अपने ५० वर्ष के शासन में दलितोद्धार के लिये क्या किया ?

अम्बेडकर और दयानन्द दोनों दलित शिक्षा पर बल देकर इसे छुआछूत और जातिभेद के कोढ़ को मिटाने का सटीक मार्ग मानते थे। श्रद्धानन्द ने इस महत्वपूर्ण कार्य के लिये गुरुकुलों की स्थापना की। कांग्रेस ने अथवा दूसरी राजनीतिक पार्टियों ने क्या किया? हिन्दू समाज का विखंडन केवल अपने राजनैतिक स्वार्थ के लिये। मूर्ति स्थापनाओं, रैलियों, पार्कों और नगर सुन्दरीकरण के नाम पर सहस्त्रों करोड़ रूपये बर्बाद करने वाले यह राजनीतिक दल सत्ता में आने पर भी क्यों नहीं विख्यात स्कूलों और कालिजों में छात्रवृत्ति देकर प्रतिभाशाली दलित बच्चों को शिक्षा दिला पाये ? धन के अभाव में लड़खड़ाते सिसकते गुरुकुलों की दशा को सुधारने के लिये थोड़ी सी आर्थिक सहायता देकर और उचित प्रशासनिक सुधारों द्वारा उनमें जाति भेदभाव रहित वातावरण में लाखों दलित बच्चों को शिक्षा देकर जाति पांति बंधन ढीले किये जा सकते थे। समाज को विखंडन से बचाया जा सकता था। परन्तु शासन किसी भी पार्टी का हो सदैव प्रभुत्वशाली लोगों का रहा है। इस प्रभुत्व को बनाये रखने के लिये जन साधारण को जिनमें दलित बहुसंख्यक हैं ज्ञान हीन बनाये रखना आवश्यक है। वह प्राथमिक शिक्षा और साक्षरता तक तो जा सकते हैं, **उस वैदिक शिक्षा को प्रोत्साहन कभी नहीं देंगे जो हिन्दुओं के विभिन्न वर्गों में जाति भेद मिटा कर उस सिमेंट का काम दे सकती है जिसकी कमी का अम्बेडकर तीव्रता से अनुभव करते हैं।** इसीलिये श्रद्धानन्द अम्बेडकर को प्रिय हैं परन्तु गाँधी की आंख की किरकिरी। इसीलिये अंत में श्रद्धानन्द को कांग्रेस से भी त्याग पत्र देना पड़ा।

अम्बेडकर लिखते हैं :

"मेरा विश्वास है कि हिन्दू समाज को नैतिक रूप से पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है। इस कार्य में देर करना बहुत खतरनाक होगा। प्रश्न यह है कि इस कार्य को कौन करे और कौन चलाये ? निश्चय ही यह कार्य वही कर सकते हैं जिनका स्वयं बौद्धिक पुनर्जीवन हो चुका है और उनमें बौद्धिक उद्धार करने की हिम्मत है और जो ईमानदारी से इस कार्य को करने के लिए तैयार हों। मेरा विचार है कि इस कसौटी पर वह हिन्दू नेता जिनका समाज में कोई प्रभाव है बिल्कुल खरे नहीं उतरते। यह कहना असम्भव है कि उनका प्रारम्भिक बौद्धिक

पुनर्जीवन हो भी चुका है या नहीं। यदि उनका बौद्धिक पुनर्जीवन हो चुका है तो उन्हें अविद्वान सर्वसाधारण की तरह भ्रमित नहीं रहना चाहिये। और न ही उनको दूसरे लोगों की अनभिज्ञता का लाभ उठाना चाहिये जैसा कि हम उनको करते हुए देखते हैं। **हिन्दू समाज की लड़खड़ाती हुई, पतन की ओर अग्रसर स्थिति के बावजूद यह नेता बिना किसी लज्जा के अपने भूतकाल की उपलब्धियों को दोहराते रहते हैं यद्यपि वह वर्तमान के लिये बेमानी हो चुकी हैं।** वह अपने विकास के समय कितनी ही लाभकारी क्यों न रही हों हमारे आधुनिक समाज का पथ प्रदर्शन नहीं कर सकतीं। निःसन्देह उन्हें एक चेतावनी के रूप में लिया जा सकता है। इस प्रकार के नेता उन पुराने रीति रिवाजों के प्रति एक रहस्यवादी आदर आज भी संजोये हुए हैं जिसके कारण वह समाज की हिलती हुई बुनियादों की न केवल उपेक्षा करते हैं अपितु इस स्थिति के कारणों की किसी भी परीक्षा का घोर विरोध करते हैं। सर्वसाधारण हिन्दू तो अपने विश्वासों के बनाने में आश्चर्यजनक रूप से लापरवाह हैं किन्तु हिन्दू नेतृत्व भी तो उनके जैसा ही है। यदि कोई इन हिन्दू नेताओं को इस प्रकार के विश्वासों से विरत करने का प्रयास करे तो वह तर्कहीन भावावेश में आ जाते हैं। महात्मा गाँधी भी इसके अपवाद नहीं हैं। ऐसा लगता है कि उनका बौद्धिकता से कोई वास्ता नहीं है। वह सन्तों के मार्ग पर चलना अधिक पसन्द करते हैं। एक रूढ़िवादी की भाँति जिसके मन में पुरातन प्रस्थापित विचारों के लिए अत्यन्त श्रद्धा हैं। उन्हें भय है कि यदि वह एक बार चिन्तन और मनन के मार्ग पर चल पड़े तो उनके बहुत से प्रिय सिद्धान्त और संस्थान ध्वस्त हो जायेंगे। वह दया के पात्र हैं। क्योंकि स्वतंत्र चिंतन और मनन सदैव ही अचल लगने वाली दुनिया के किसी भाग को खतरा बन जाते हैं। **किन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि सन्तों पर अंध–निर्भरता हमको सत्यता के दर्शन की ओर नहीं ले जा सकती।** सन्त मानव ही तो हैं। जहाँ तक कि उनके (गाँधी जी के) चिन्तन और मनन का प्रश्न है मुझे तो लगता है कि **वह अपनी बुद्धि का दुरुपयोग हिन्दू समाज के वर्तमान खोखले ढांचे को संबल देने के लिये तर्क ढूढ़ने में कर रहे हैं। (apologist) इसलिए वह उस भ्रष्ट ढांचे के अत्यधिक प्रभावी क्षमायाचक हैं। और इसलिये हिन्दू समाज के सबसे खतरनाक शत्रु हैं।**

"इसके विपरीत कुछ हिन्दू नेता केवल विश्वास करने और अनुसरण करने से सन्तुष्ट नहीं है उनमें चिन्तन और मनन का साहस है और उसके परिणाम स्वरूप आचरण करने का भी। परन्तु दुर्भाग्य वश क्या तो उनमें यथेष्ट ईमानदारी नहीं है अथवा जब समाज को सकारात्मक पथ प्रदर्शन देने का प्रश्न आता है तो वह उसके प्रति उपेक्षा बरतते हैं।

लगभग प्रत्येक ब्राह्मण ने जाति नियम का उल्लंघन किया है। उन ब्राह्मणों की संख्या जो जूते बेंचते हैं उन ब्राह्मणों से अधिक है जिन्होंने न केवल

अपने पुजारी पन के पैत्रक पेशे को छोड़कर व्यापार को अपना लिया है अपितु वह ऐसे व्यापार में भी संलग्न है जो शास्त्रों के अनुसार उनके लिए वर्जित है। **परन्तु कितने ब्राह्मण हैं जो प्रतिदिन वर्ण व्यवस्था के नियमों को तोड़ रहे हैं और फिर भी जाति और शास्त्रों के विरुद्ध बोलने का साहस करेंगे ?** यदि अपनी व्यवहारिक नैसर्गिक वृत्ति और नैतिक अंतरात्मा की पुकार पर जाति भेद और उसका विधान करने वाले शास्त्रों में विश्वास न होने के कारण उसके विरुद्ध प्रचार करने वाला एक ब्राह्मण है तो उसकी तुलना में सैकड़ों ऐसे हैं कि जो जाति और इस प्रकार की शास्त्र व्यवस्थाओं को कुचल कर प्रतिदिन व्यवहार करते हैं किन्तु जाति व्यवस्था और शास्त्रों की पुनीतता के भयानक रूप से समर्थक हैं। यह दोगलापन क्यों ? क्योंकि वह समझते हैं कि यदि सर्वसाधारण ने जाति प्रथा के बन्धनों को तोड़ कर उनसे स्वतंत्रता प्राप्त कर ली तो वह सम्पूर्ण ब्राह्मण जाति के गौरव, प्रतिष्ठा और सत्ता के लिए खतरा बन जाँएगें। इस बौद्धिक वर्ग की यह मिथ्याचारिता (बेईमानी) जो सर्वसाधारण को उनके चिन्तन और मनन के फलों से वंचित रखना चाहती है एक सर्वाधिक लज्जा जनक प्रपंच है।

"मैथ्यू आरनॉल्ड के शब्दों में : "हिन्दू दो मार्गों के मध्य भटक रहे हैं जिनमें एक मृत हो चुका है और दूसरा जन्म लेने में अशक्त है।" फिर वह क्या करें ? जिस महात्मा गाँधी की ओर वह दिशा दर्शन के लिए देखते हैं वह चिन्तन और मनन में विश्वास नहीं करता और इसलिए कोई ऐसा मार्ग सुझाने में असमर्थ है जो अनुभव की कसौटी पर खरा उतरता हो। हिन्दू जनता जिस बौद्धिक वर्ग की ओर मार्ग दर्शन के लिये देखती है वह या तो अत्यन्त बेईमान है अथवा अत्यन्त उदासीन है। सचमुच ही हम एक अत्यन्त दुखान्त दृश्य के साक्षी हैं। इस कारण हम केवल इस दुखान्त घटना पर आँसू ही बहा सकते हैं और कह सकते हैं वाह रे हिन्दुओं और उनके नेताओं।"

राउंड टेबिल कान्फ्रेंस में दलितों के प्रति गाँधी जी ने जो रवैया अपनाया उस पर डा० अम्बेडकर ने अपनी उपरोक्त पुस्तक में तीखे व्यंग और प्रहार किये हैं। दुर्भाग्यवश स्थान के अभाव में उन सबको दोहराना सम्भव नहीं है। परन्तु डा० अम्बेडकर के व्यक्तित्व के संक्षिप्त विवरण के लिये उनमें से कुछ उद्धरण देना अनिवार्य है। अम्बेडकर लिखते हैं : "प्रत्येक व्यक्ति इस कान्फ्रेंस की सफलता के लिए कांग्रेस की ओर देख रहा था। दुर्भाग्यवश कांग्रेस ने मिस्टर गाँधी को अपना प्रतिनिधि चुना। भारत के भाग्य का मार्गप्रदर्शन करने के लिए उनसे अधिक अनुपयुक्त व्यक्ति ढूढ़ना सम्भव नहीं था। एकीकरण को बल देने में वह सर्वथा अयोग्य थे। गाँधी सदैव अपने को विनम्रता का अवतार दिखाने का प्रयास करते हैं। परन्तु राउंड टेविल कान्फ्रेंस में उनका व्यवहार सिद्ध करता है कि विजय के उल्लास में गाँधी बहुत ही क्षुद्रमना हो सकते हैं। ज्ञानवान होने की दृष्टि से भी मि० गाँधी

अत्यन्त अनुपयोगी सिद्ध हुए। अनेक संवैधानिक और साम्प्रदायिक प्रश्नों के उत्तर में जिनसे कि कान्फ्रेन्स आमने सामने थी गाँधी जी के पास अनेक बेमतलब की घिसी पिटी बातें तो थीं परन्तु रचनात्मक दृष्टिकोण और सुझावों का नितान्त अभाव था। वह एक ऐसे अद्भुत व्यक्ति थे कि जो किसी भी ऐसे समझौते का विरोध करने की धमकी देते थे जो उनकी दृष्टि में सैद्धान्तिक था और दूसरों की दृष्टि में पूर्वाग्रहयुक्त, किन्तु दूसरे ही क्षण वह ऐसे मामलों में निकृष्ट समझौता करने को तैयार हो जाते थे जो दूसरों की दृष्टि में ऐसे बुनियादी सिद्धान्तों के विरुद्ध था जिन पर कोई समझौता नहीं किया जाना चाहिए। १५ सितम्बर १९३१ के अपने भाषण में उन्होंने दलितों की अवस्था सुधारने और छूआछूत को मिटाने के लिए १९२० से कांग्रेस द्वारा किए गये प्रयासों का गुणगान किया जो कि जैसा कि बारदोली प्रोग्राम के विषय में बताया जा चुका है सफेद झूँठ था। अपने भाषण में उन्होंने अछूतों द्वारा पेश की गयी मांगों पर अपने दृष्टिकोण पर कोई भी प्रकाश नहीं डाला। सिवाय यह कहने के कि कांग्रेस अछूतों की समस्या का प्रतिनिधित्व करने के लिए डा० अम्बेडकर के साथ है परन्तु वह उनको विशेष अधिकार देने का घोर विरोध करती है।

उन्होंने (गाँधी ने) ब्रिटिश शासन को साम्प्रदायिक मतभेदों के लिए ज़िम्मेदार ठहराया और कहा कि उनको इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि स्वतंत्रता की ऊष्मा के सामने साम्प्रदायिक भेद भाव की बर्फ पिघल जाएगी।" निश्चय ही गाँधी जी की यह धारणा नितांत झूंठ साबित हुई।

डा० अम्बेडकर का कहना था कि "कांग्रेस दलितों का प्रतिनिधित्व नहीं करती और यद्यपि कांग्रेस में अनेक ऐसे लोग हो सकते हैं जिनकी सहानुभूति दलित वर्ग के साथ हो परन्तु दलित वर्ग कांग्रेस में नहीं है।" ब्रिटिश प्रधान मंत्री ने ब्रिटिश सरकार का यह संकल्प दोहराया कि विभिन्न दलों द्वारा यदि कोई समझौता परक मार्ग नहीं निकल पाता तो भी सरकार भारत के शासन में इस प्रकार के सुधार करने को दृढ़ निश्चय है जो उसकी दृष्टि में उसको स्वतंत्रता के मार्ग पर आगे की ओर ले जाने में सक्षम हैं। उन्होंने यह भी कहा कि यदि आप किसी सर्व सम्मत मार्ग खोजने में असफल हैं तो हमारे मार्ग में बाधा न डालें क्योंकि यहाँ यही हो रहा है। प्रधानमंत्री के इस वक्तव्य के बाद १३ नवम्बर, १९३१ को माइनॉरिटी कमेटी की फिर मीटिंग हुई जिसमें आगा खाँ ने मुसलमानों, दलितों, एंग्लो इंडियनों, यूरोपियनों और भारतीय क्रिश्चियनों के कुछ लोगों द्वारा एक समझौता प्रस्तुत किया जो उन लोगों के बीच में सर्व सम्मति से हो पाया था। इस समझौते के साथ यह शर्त थी कि क्या तो वह पूर्ण रूप से बिना किसी संशोधन के स्वीकार किया जाएगा अथवा अस्वीकार।"यह दस्तावेज़ माइनॉरिटी पैक्ट के नाम से जाना जाता है और अम्बेडकर ने इसको अपनी पुस्तक में परिशिष्ट के रूप में दिया है। "इस दस्तावेज़ पर जो विचार विमर्श हुआ उसमें गाँधी जी उन सभी लोगों पर जमकर बरसे जिन्होंने इस दस्तावेज़ को

तैयार करने में भाग लिया था। वह विशेष रूप से इस बात से नाराज़ थे कि अछूतों को एक अलग वर्ग के रूप में स्वीकार किया गया था। **अपने संयम को खोते हुए उन्होंने यहाँ तक कह डाला कि "यदि अछूत इस्लाम या ईसाई धर्म स्वीकार करना चाहते हैं तो वह ऐसा कर सकते हैं। मैं इसे सहन करने को तैयार हूँ। परन्तु मैं इस बात को किसी प्रकार स्वीकार नहीं कर सकता कि गाँव–गाँव में इस आधार पर हिन्दू समाज का दो दलों में विभाजन हो जाए।"**

महात्मा गाँधी का अपने बचाव में कहना था कि "डा० अम्बेडकर हिन्दुओं के प्रति अविश्वास से इतने भरे हुए हैं कि वह प्रत्येक (सवर्ण) हिन्दू को अछूतों का शत्रु समझने लगे हैं। उन्हें इसके अतिरिक्त दूसरी कोई बात सूझती ही नहीं। दक्षिण अफ्रीका में यूरोपियनों के विषय में मेरा भी ऐसा ही दृष्टिकोण बन गया था। उनके क्रोध के यथेष्ट कारण हैं। किन्तु अलग निर्वाचन मंडलों से जिनकी मांग वह कर रहे हैं कोई सामाजिक सुधार होने वाला नहीं है। स्वयं उनको सत्ता और पद प्राप्ति हो सकती है परन्तु अछूतों का इस से कुछ भला होने वाला नहीं है। मैं यह बात बलपूर्वक कह सकता हूँ क्योंकि मैं अछूतों के बीच और उनके सुख दुख में शरीक रहा हूँ।"

गाँधी जी का डा० अम्बेडकर पर यह आरोप लगाना कि वह अलग निर्वाचन मंडलों की मांग इसलिए कर रहे हैं कि इसके माध्यम से उनको पद और प्रतिष्ठा प्राप्त होगी उनके स्वभाव के अनुकूल था। वह इस प्रकार के व्यक्तिगत आरोप स्वामी दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, लोकमान्य तिलक, सुभाष इत्यादि उन अनेक महापुरुषों पर लगाते रहे थे जिनका उनके हास्यास्पद राजनीतिक चिन्तन से मतभेद हो। किसी भी ईमानदार समाज सुधारक की नीयत पर शक केवल इसलिये करना कि उसके सुधार मार्ग सम्बन्धी विचार आपसे मेल नहीं खाते महापुरुषों का लक्षण नहीं है।

गाँधी जी के इस अद्‌भुत व्यवहार को विश्व विख्यात लेखक और चिंतक वरट्रेंड रसेल द्वारा लिखित पुस्तक 'रोड्स टु फ्रीडम' में दिये गये विश्लेषण से समझा जा सकता है। रसेल कहते हैं:

"इसमें संदेह की गुंजाइश बहुत कम है कि इस प्रकार की दृष्टव्य असंगतियाँ वास्तव में बिल्कुल भी पारस्परिक विरोधी नहीं हैं। किसी भी आंदोलन के जन्मदाता जिनमें एक धर्मयोद्धा वाली लगन है अधिकतर विरक्त लोग होते हैं। अपने ध्येय की प्राप्ति के लिये वह अवर्णनीय तकलीफ बरदाश्त करने और त्याग की ऊँचाइयों की पराकाष्ठा छूने को तैयार पाये जायेंगे। अपने ध्येय की पूर्ति में धन, दौलत यश और सुनहरे भविष्य को त्यागने में उन्हे क्षण भर भी सोचना नहीं पड़ेगा। अपनी राह के यह अग्रणी अपने जीवन काल में अपने द्वारा किये गये कार्यों के फलस्वरूप कारागार और निर्वासन में अपने जीवनकाल का एक अच्छा भाग व्यतीत

करने से भी नहीं हटेंगे। वह संसार के सामने एक ऐसा उदाहरण पेश करते हैं जिससे संसार को स्पष्ट हो जाता है कि उनका त्याग और तपस्या का ध्येय वैयक्तिक लाभ न होकर मानवता के कल्याण के लिये है।

"यद्यपि इस प्रकार के लोगों का प्रेरणास्रोत मानव सेवा की निस्पृह आकांक्षा ही होती है परन्तु जैसे ही वह अपने मंतव्य की प्राप्ति का मार्ग निर्धारित कर लेते हैं वह काष्ट–मस्तिष्क हो कर हठ धर्मी और मतांध हो जाते हैं। विरोध और अपने मंतव्य की प्राप्ति में, निराशा उनमें कटुता उत्पन्न करती है। उन्हें जितना दृढ़ विश्वास अपने लक्ष्य की पवित्रता में होता है उतना ही क्रोध उनको उन लोगों के प्रति आता है जो उनके मार्ग को स्वीकार नहीं करते अथवा उसका विरोध करते हैं। **वह सब को क्षमा कर सकते हैं परन्तु उनको नहीं जो उसी ध्येय की प्राप्ति के लिये जो उनका मंतव्य है कोई दूसरा मार्ग सुझाते हैं।** वह समझ ही नहीं पाते कि जो मार्ग उनको इतना सुस्पष्ट दीखता है दूसरों को क्यों नहीं दीखता।"

अम्बेडकर कहते हैं कि इसके बाद हर व्यक्ति को ऐसा अनुभव हुआ कि अछूतों का गाँधी से बढ़कर कोई कट्टर शत्रु नहीं है। गाँधी जी के मित्र भी अछूतों की मांगों के प्रति गाँधी के इस दृष्टिकोण को समझने में असमर्थ थे। उन्हें भी यह बड़ा आश्चर्य था कि वह मुसलमानों और सिखों को तो मान्यता देने को तैयार थे परन्तु अछूतों को नहीं। वह जब भी इस विषय पर गाँधी जी से तर्क करना चाहते थे तो कोई भी सन्तोषजनक उत्तर देने के स्थान पर वह आपा खो बैठते थे। गाँधी जी का अपने पक्ष में कहना यह था कि मुसलमान सदैव मुसलमान ही रहेंगे भले ही उन्हें प्रथक निर्वाचक मंडल दे दिये जाँय परन्तु क्या अछूतों को अलग निर्वाचन मण्डल दे कर हम अछूतों को सदैव अछूत रखना चाहते हैं ?

जब कोई आपसी समझौता नहीं हो पाया, तो ब्रिटिश शासन ने अपना फैसला सुनाते हुये कहा कि भारतीयों के विविध प्रतिनिधियों में कोई समझौता न होने के कारण ब्रिटिश सरकार भारत में उन संवैधानिक सुधारों को तिलांजलि नहीं दे सकती जो उसकी दृष्टि में भारत को स्वतंत्रता के मार्ग पर अग्रसर होने के लिये आवश्यक हैं। इसलिये ब्रिटिश सरकार ने मुस्लिम इत्यादि अल्पसंख्यकों के साथ साथ दलित वर्ग को भी अलग निर्वाचन मंडल देने का मन बना लिया है।

जब गाँधी जी की समझ में यह बात आ गई कि दलितों के विषय में उनके दृष्टिकोण का समर्थन करने वाले उनके भक्त कान्फ्रेन्स में नहीं हैं तो वह मुसलमानों की उन चौदह मांगों को स्वीकार करने को भी तैयार हो गये जिन्हें कांग्रेस, हिन्दू महासभा और साइमन कमीशन नकार चुके थे बशर्ते कि मुसलमान दलितों को अलग निर्वाचन मंडलों की मांग का समर्थन न करें। मुसलमान इसके लिये तैयार नहीं हुये। इस पर गाँधी समेत सभी डेलीगेटों ने प्रधान मंत्री को सर्वसम्मति से उनको पंच मानने के स्वीकार पत्र पर हस्ताक्षर कर उनके फ़ैसले को अंतिम रूप से मानने की स्वीकृति दे दी। सभी डेलीगेट स्वदेश लौट आये।

प्रधानमंत्री सर रामसे मैकडानल्ड ने पहला काम यह किया कि लॉर्ड लोथियन के नेतृत्व में एक कमेटी यह निश्चय करने के लिये बना दी कि वह ऐसे सुझाव दे कि जिनसे भारत की जनसंख्या के सभी वर्गो को प्रस्तावित विधान सभाओं में प्रतिनिधित्व मिल सके।

अम्बेडकर कहते हैं कि: "लोथयन कमेटी ने जब प्रत्येक सूबे में अछूतों की संख्या का पता लगाना प्रारम्भ किया तो हिन्दुओं द्वारा यह लज्जा जनक चाल चली गई कि उनकी संख्या कम से कम दर्शायी जाय। इस प्रकार यह कह कर कि भारत में अछूत हैं ही नहीं इस पूरी योजना को ही अप्रभावी कर दिया जाय। उदाहरणार्थ यू०पी० में १९३१ की जनगणना के अनुसार अछूतों की संख्या एक करोड़ छब्बीस लाख थी, सूबा सरकार के अनुसार ६८ लाख और सूबा कमेटी के अनुसार केवल ६ लाख। इस लज्जा जनक साज़िश का कारण यह था कि अछूतों का प्रतिनिधित्व हिन्दुओं के भाग में से ही आना था। इस प्रकार उनके प्रतिनिधित्व बढ़ने का परिणाम शेष हिन्दुओं के प्रतिनिधित्व का कम होना था।

"कहा जाता है कि लौटते समय रोम में किसी पत्रिका को दिये गये साक्षात्कार में गाँधी जी द्वारा यह कहने पर कि वह अपना सत्याग्रह आन्दोलन शुरू करने जा रहे हैं भारत पहुँचते ही उन्हें गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया।

"जेल में भी गाँधी जी के मस्तिष्क पर अछूत ही छाये रहे। उन्होंने ब्रिटिश प्रधान मंत्री को धमकी देना प्रारम्भ कर दिया कि यदि अछूतों के विषय में उनकी बात न मानी गई तो वह आमरण उपवास करेंगे।

"प्रधान मंत्री ने स्थिति को स्पष्ट करते हुये कहा कि : "शासन की योजना के अनुसार दलित वर्ग हिन्दू समुदाय का ही एक अंग बना रहेगा और यह लोग दूसरे हिन्दू मतदाताओं के साथ ही बराबरी के आधार पर मतदान करेंगे। किन्तु पहले २० वर्ष तक हिन्दू सम्प्रदाय का अंग बने रहते हुये भी उनको कुछ सीमित विशेष विधान मंडलों (Limited number of special constituencies) द्वारा ऐसा उपाय उपलब्ध करा दिया जायगा जिससे उनके उन हितों और अधिकारों की सुरक्षा हो जाय जो हमारे विश्वास के अनुसार आज की परिस्थित में उनको मिलना न्याय संगत है।

"जब यह विशेष विधान मंडल (Limited number of special constituencies) बनायी जाएंगीं दलित वर्ग के लोगों का दूसरे साधारण हिन्दू विधान मंडलों (General Hindu constituencies) में वोट करने का अधिकार छीन नहीं लिया जायगा अपितु उन्हें दो वोट देने का अधिकार देकर यह सुनिश्चित कर लिया जायगा कि उनका हिन्दू समुदाय से सम्बन्ध हानिग्रस्त न हो।

'हमने बहुत समझ बूझ कर दलित वर्ग के लिये ऐसे विधान मंडल (Communal Electorate) न बनाने का निश्चय किया है जिन्हें आप दलित वर्ग

के साम्प्रदायिक विधान मंडल कहते हैं। **हमने उनको दूसरे हिन्दू मतदाताओं का ही अंग रखा है जिससे कि उच्च हिन्दू वर्ग के सवर्ण प्रत्याशियों को दलित वर्ग के लोगों के वोट मांगने की और दलित वर्ग के प्रत्याशियों को उच्च वर्ग के हिन्दू वोट मांगने की आवश्यकता बनी रहे। इस प्रकार हिन्दू सम्प्रदाय की एकता को किसी प्रकार भी क्षति पहुंचने का भय नहीं है।**

'किन्तु हमने यह भी एहसास किया है कि सत्ता स्थानान्तरण के प्रारम्भिक काल में ६ सूबों में से ७ सूबों में दलित वर्ग के उन लोगों को जिन्हें आप के कथनानुसार भी शताब्दियों से सवर्ण हिन्दुओं द्वारा नियोजित ढंग से पददलित किया गया है स्वयं अपने द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों को विधान सभा में भेजने का अधिकार दिया जाय। इस प्रकार वह अपनी शिकायतों और मांगों को विधान सभा और शासन के सम्मुख खुल कर रख सकेंगे और अपने हितों के विरुद्ध फैसलों को बिना उनकी बात सुने पास होने से रोक सकेंगे। उनके लिये मात्र कुछ सीट सुरक्षित करने के सुझाव को हम यथेष्ट नहीं समझते क्योंकि ऐसा करने से दलितों को उच्च वर्ग के बाहुल्य हिन्दू वोटों पर निर्भर रहना पड़ेगा और इस कारण वह (इस प्रकार चुने गये दलित प्रतिनिधि) दलित वर्ग का स्वतंत्रता पूर्वक प्रतिनिधित्व नहीं कर सकेंगे।

'आपके दृष्टिकोण से मुझे ऐसा लगता है कि **आप आमरण भूख हड़ताल करने पर कटिबद्ध इसलिये नहीं हैं कि आप दलितों को दूसरे हिन्दुओं के साथ मताधिकार दिलाना चाहते हैं क्योंकि हमारी योजना में इसका पहले से ही प्राविधान है। न इसलिये कि आप दूसरे हिन्दुओं और दलितों की एकता सुनिश्चित करना चाहते हैं क्योंकि यह भी हमारी योजना का एक अंग है। आप यह आमरण उपवास केवल इस उद्देश्य से करना चाहते हैं कि दलित वर्ग जो आज अनेक भयानक असमर्थताओं का शिकार है एक सीमित संख्या में अपने द्वारा चुने गये ऐसे प्रतिनिधि विधान सभाओं में न भेज सके जो वहाँ उनके पक्ष में बोल सकें।**

'जब भारत से आये प्रतिनिधि आपस में एक मत होकर किसी निर्णय पर पहुंचने में सफल नहीं हो सके तब न चाहते हुये भी शासन को यह निर्णय लेना पड़ा है। और इसमें कोई संशोधन उसी दशा में सम्भव है जब सभी भारतीय प्रतिनिधि उसे स्वीकार करें।'

अम्बेडकर कहते हैं "जब गाँधी जी ने समझ लिया कि सरकार झुकने वाली नहीं है तो वह २० सितम्बर १९३२ से आमरण उपवास पर चले गये। परन्तु वह मरना नहीं चाहते थे। उनकी इच्छा जीने की थी।

"बात कुछ भी क्यों न रही हो उपवास ने एक समस्या तो अवश्य ही खड़ी कर दी। वह समस्या यह थी कि गाँधी जी की प्राण रक्षा कैसे की जाय? उनकी प्राणरक्षा का एक यही उपाय था कि साम्प्रदायिक पंच निर्णय (Communal Award) को बदला जाय। ब्रिटिश प्रधान मंत्री ने यह स्पष्ट कर दिया था कि उसको

तभी संशोधित किया जा सकता है जब संबंधित पार्टियां कोई पारस्परिक स्वीकार्य सुझाव पेश करें।

क्योंकि राउंड टेबिल कान्फ्रेंस में अछूतों का प्रतिनिधित्व डा० अम्बेडकर ने किया था इसलिये इस प्रकार के संयुक्त स्वीकार्य सुझाव पर उनका सहमत होना आवश्यक था। मज़े की बात यह है कि जिस डा० अम्बेडकर को गाँधी जी अछूतों का प्रतिनिधि मानने से इन्कार करते रहे थे अब उसी अम्बेडकर पर उनके प्राण बचाने का दायित्व आ पड़ा था। सब की दृष्टि उन्हीं पर लगी थी।

शायद ही कोई दूसरा व्यक्ति ऐसी दुविधाजनक स्थित में पड़ा हो। अम्बेडकर के सामने केवल दो प्रश्न थे। पहला साधारण मानवता के नाते गाँधी जी के प्राण बचाना जो आत्म हत्या की धमकी दे रहे थे और साथ ही साथ यथा सम्भव अछूतों के उन राजनीतिक अधिकारों की रक्षा करना जो प्रधान मंत्री ने उन्हें दिये थे। अम्बेडकर ने इस कठिन समस्या को सुलझाने के लिये गाँधी जी से जो समझौता किया वह पूना पैक्ट के नाम से जाना जाता है।

स्थान के अभाव के कारण यहां उस पैक्ट पर विस्तृत विचार करना सम्भव नहीं है। गाँधी जी के विचार से इस पैक्ट के द्वारा अछूतों को उससे कहीं अधिक विधान सभा सीटों पर आरक्षण मिला जितनी पर प्रधान मंत्री द्वारा दिये गये निर्णय से मिला था। अम्बेडकर ने अनेक आंकड़े दे कर सिद्ध किया है कि वास्तव में कुल लेखा जोखा मिला कर अछूत घाटे में ही रहे। इस विषय पर मतभेद हो सकते हैं परन्तु इतना तो निर्विवाद है कि–

१– पूना पैक्ट द्वारा अछूतों को १४८ सीटें मिली जब कि प्रधान मंत्री द्वारा उन्हें केवल ७८ सीटें मिली थीं। परन्तु इसके द्वारा उनका दो वोटों का अधिकार छिन गया जो अमूल्य था। इस वोट द्वारा सवर्ण प्रत्याशियों की अछूतों के वोट पर निर्भरता दो गुनी हो जाती थी। इस कारण कोई भी सवर्ण प्रत्याशी अछूतों की उपेक्षा करने का साहस नहीं कर सकता था।

२– १९३७ की अंतरिम संविधान सभाओं के लिये चुनावों में अछूतों के लिये आरक्षित १५१ सीटों में से अम्बेडकर द्वारा समर्थित ७३ प्रत्याशी विजयी हुये और कांग्रेस द्वारा समर्थित ७८ प्रत्याशी विजयी हुये।

३– अम्बेडकर दलित वर्ग के निर्विवाद नेता माने जाने लगे। कांग्रेस जैसे समृद्ध और पुराने अखिल भारतीय संगठन के विरोध में इतनी सीटें जीतना एक चमत्कार ही था।

इस चुनाव के परिणामों ने इतना तो सिद्ध कर ही दिया कि इस वर्ग में ब्राह्मण, ठाकुर प्रभुत्व वाली राजनीति के विरुद्ध भयानक आक्रोश है। उस आक्रोश को शांत करने के लिये गाँधी जी ने कुछ नहीं किया। उस आक्रोश का

लाभ तो सब राजनीतिक पार्टियां उठाती रही परन्तु वास्तविक लाभ अछूतों को बहुत कम पहुंचा क्योंकि उनमें शिक्षा की बेहद कमी थी।

अम्बेडकर कहते है : "कांग्रेस ने चुनाव लड़ने के लिये जो प्रत्याशी चुने उनमें एक विशेष बात यह थी कि ब्राह्मण प्रत्याशी सर्वोत्तम शिक्षा प्राप्त लोग थे। गैर ब्राह्मण प्रत्याशियों में शिक्षा को बहुत महत्व नहीं दिया गया था परन्तु अछूत प्रत्याशी उन लोगों को बनाया गया जो अछूतों में नितांत अशिक्षित थे अथवा बहुत कम शिक्षित थे। मैं यह नहीं कहता कि प्रत्येक प्रत्याशी के साथ ऐसा किया गया।"

अम्बेडकर के विचार में कांग्रेस ने जान बूझ कर एक विशेष प्रयोजन से ऐसा किया। अछूत विधायक यदि उत्तम शिक्षा प्राप्त होंगे तो वह बौद्धिक स्तर पर ब्राह्मण विधायकों और मंत्रियों के लिये सिर दर्द बन जायेंगे। परन्तु यदि वह बहुत कम शिक्षा प्राप्त अथवा नितांत अशिक्षित हों तो ब्राह्मणों के पिछलग्गू मात्र बन कर रह जायेंगे। मज़े की बात यह है कि गाँधी जी ने अछूत विधायकों को मंत्री बनाने से इस कारण इनकार कर दिया कि वह यथेष्ट शिक्षा प्राप्त नहीं थे जबकि इस स्थिति के लिये वह स्वयं जिम्मेदार थे क्योंकि उन्होंने यथेष्ट शिक्षा प्राप्त अछूतों को विधायक बनने ही नहीं दिया था। **अम्बेडकर चुनौती देते हुये कहते हैं कि क्या गाँधी जी में मुस्लिमों पर भी यही माप दंड लगाने का साहस है ? .....यदि यही परिपाटी चालू रही तो कांग्रेस सदैव गैर ब्राह्मण जातियों के सुशिक्षित और योग्य व्यक्तियों को विधान सभाओं में प्रवेश से रोक कर उनको वांछित शिक्षा प्राप्त न होने के बहाने मंत्रिमंडल में नहीं जाने देगी और इस प्रकार शासन की बागडोर सदैव ब्राह्मणों और उनके पिट्ठू गिने चुने गैर ब्राह्मणों के हाथ में रहेगी।**

"कांग्रेस ने अछूतों के साथ एक और अन्याय किया। उसने उनको पार्टी अनुशासन के नाम पर कांग्रेस की नीतियों का अन्धानुकरण करने पर मजबूर किया। वह कांग्रेस पार्टी प्रशासन के दमन के शिकार हो गये। वह ऐसा कोई प्रस्ताव नहीं ला सकते थे जिसे कांग्रेस का अनुमोदन प्राप्त न हो। वह ऐसा कोई कानून प्रस्तावित नहीं कर सकते थे जिस पर कांग्रेस को आपत्ति हो। वह अपनी इच्छानुसार न बोल सकते थे न वोट कर सकते थे। वह बेबस, गूंगे, बहरे पशुओं की भांति जिधर कांग्रेस चाहे हाँके जा सकते थे। विधान सभा में अछूतों को प्रवेश दिलाने का ध्येय तो यही था कि वह अपने प्रति सवर्ण हिन्दुओं द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों को वहां उजागर कर सकें और उनको दूर करने के उपाय करवा सकें। कांग्रेस ने कुटिलता पूर्वक उनको इस अधिकार से वंचित कर दिया। यदि संक्षेप में कहा जाय तो कांग्रेस ने पूना पैक्ट का सब रस चूस लिया और छिलके अछूतों पर फेंक दिये।"

२४ सितम्बर १९३२ को पूना पैक्ट पर हस्ताक्षर हुये। २५ सितम्बर १९३२ को उसके समर्थन में बंबई में हिन्दुओं की एक सार्वजनिक सभा हुई। उस सभा में यह प्रस्ताव पास किया गया:

"यह सभा पूना पैक्ट का अनुमोदन करती है और विश्वास करती है कि ब्रिटिश शासन भी इसे स्वीकार करेगा जिससे गाँधी जी का उपवास यथाशीघ्र टूट सके।

"यह सभा यह भी संकल्प करती है कि भविष्य में हिन्दू समाज में कोई भी व्यक्ति जन्म के कारण अछूत न माना जायगा। और जिनको इस प्रकार अछूत माना गया है उनको वह सभी अधिकार होंगे जो हिन्दुओं को हैं। यह अधिकार कानून द्वारा सुनिश्चित किये जायेंगे और स्वतंत्र भारत का पार्लियामेंट शीघ्रातिशीघ्र ऐसा कानून पारित करेगा।

"प्रत्येक हिन्दू नेता का यह कर्तव्य होगा कि वह विधिवत तथा शांतिपूर्ण उपायों द्वारा तथाकथित अछूतों पर रीति रिवाज़ द्वारा लादी गयी सब सामाजिक विकलांगताओं का निवारण करे। इनमें अछूतों का मंदिर–प्रवेश भी शामिल है।"

अम्बेडकर कहते हैं कि "इसके बाद हिन्दुओं में मंदिरों को हरिजनों के लिये खोलने का ज्वार सा आ गया। गाँधी जी ने अपनी पत्रिका यंग इन्डिया में प्रत्येक सप्ताह उन मंदिरों, पाठशालाओं, दुकानों तथा कुओं की फ़हरिस्त छापनी आरम्भ की जो (अछूतों को) उपलब्ध कराये गये थे।

"जब किसी मंदिर के ट्रस्टी अछूतों के प्रवेश पर आपत्ति करते थे तो हिन्दू उनके विरुद्ध सत्याग्रह करते थे। ट्रस्टियों द्वारा इस रोकथाम का सामना करने के लिये कुछ लोगों में केन्द्रीय और राज्य विधान सभाओं में कानून बनाने के लिये बिल पेश करने की होड़ सी लग गई।

"गाँधी जी १६३२ ई० से पहले मंदिरों में अछूतों के प्रवेश के विरुद्ध थे। उनके अपने शब्दों में :

'यह कैसे सम्भव हो सकता है कि अछूतों को सभी हिन्दू मंदिरों में प्रवेश का अधिकार मिल जाय ? जब तक हिन्दू धर्म में जाति और आश्रम व्यवस्था का मुख्य स्थान है यह कहना कि प्रत्येक हिन्दू को प्रत्येक मंदिर में जाने का अधिकार है आज सम्भव नहीं है।' "फिर गाँधी जी का इस मंदिर–प्रवेश आन्दोलन से जुड़ जाना एक ऐसी कलाबाज़ी है जिसका पता लगाना कठिन है। क्या यह मत परिवर्तन ईमानदारी के साथ हृदय परिवर्तन द्वारा यह विश्वास उत्पन्न होने पर हुआ कि वह अछूतों के मंदिर प्रवेश अधिकार विषय में भूल पर थे? क्या पूना पैक्ट से उन्हें सवर्ण हिन्दुओं और अछूतों में दरार पड़ने का भय उत्पन्न हो गया था जिसका उपचार वह मंदिर प्रवेश तथा दूसरे अधिकार दिला कर करना चाहते थे ? क्या वह ऐसे अधिकार दिला कर उस अधिकार को ही ध्वस्त कर देना चाहते थे जिस पर अछूतों द्वारा राजनीतिक अधिकारों की मांग टिकी थी? अथवा क्या, जैसा कि उनका स्वभाव था, वह नाम कमाने के लिये इस आंदोलन में कूद पड़े थे ? कदाचित दूसरा या तीसरा

कारण ही इन प्रश्नों का उत्तर है। गाँधी जी ने मुझसे इस आन्दोलन में शामिल होने के लिये कहा परन्तु मैंने इन्कार कर दिया।"

डा० अम्बेडकर मंदिर प्रवेश बिल को समर्थन देने से इन्कार करने का मुख्य कारण बताते हुये कहते हैं :

"पाप और अनैतिकता इस कारण सहनीय नहीं हो जाते कि समाज में उनसे जुड़े लोगों का बाहुल्य है अथवा समाज का बाहुल्य भाग उन पर आचरण करता है। यदि छुआछूत पाप है और अनैतिक है तो अछूतों के दृष्टिकोण से उसे बिना यह विचार किये कि बहुमत उसके पक्ष में है या नहीं उसे तुरन्त नष्ट कर देना चाहिये। अदालतों का दृष्टिकोण भी यही होता है।

"दूसरा प्रश्न आत्म सम्मान का है। मंदिरों के ट्रस्टी कहते है : सभी हिन्दू और सभी पशु मंदिर में जा सकते हैं परन्तु अछूत नहीं। अनेक अंग्रेज़ी क्लबों पर सूचना पट्ट लगा है कि हिन्दुस्तानियों और कुत्तों का प्रवेश वर्जित है। हिन्दुस्तानी उनमे प्रवेश का अधिकार मांगने नहीं गये। इसी प्रकार अछूत यह अधिकार मांगने क्यों जाँय? यदि आप मानवता और उत्कृष्ट आचरण में विश्वास करते हैं तो मंदिर प्रवेश की अछूतों को अनुमति दें। यदि आप मानवता और उत्कृष्टता में विश्वास करने के स्थान पर हिन्दू पन में विश्वास करते हैं तो भाड़ में जाँय। अपने मंदिरों में हमें प्रवेश करने देना या न प्रवेश करने देना आपका अपना मामला है। हम उसके लिये क्यों आंदोलन करें?

"दूसरा प्रश्न आध्यात्मिकता से संबंध रखता है। अछूतों को ऐसे धर्म की तलाश है जो उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा और बराबरी प्रदान करता हो। **यदि वह (अछूत) हिन्दू धर्म को स्वीकार करेंगे तो केवल इस शर्त पर कि हिन्दू धर्म सामाजिक समता में अपने विश्वास की घोषणा और आचरण करे। इस प्रकार के कानून बना देने मात्र से यह होने वाला नहीं है।** हिन्दू धर्म को ऐसा करने के लिये चातुर्वण्य के सिद्धान्त को त्यागना होगा। प्रश्न यह है कि गाँधी इस विषय पर किस कैम्प में हैं ?"

गाँधी जी का उत्तर था कि उनका अछूतोद्धार आन्दोलन मंदिर प्रवेश तक सीमित था जाति भेद उसमें शामिल नहीं था।

वास्तव में देखा जाय तो मंदिर प्रवेश से अछूतोद्धार का कोई भी सम्बन्ध नहीं। अछूतोद्धार का अर्थ तो है उन्हें स्कूलों, कालिजों, होटलों, यातायात साधनों, कुओं अस्पतालों इत्यादि में बिना भेदभाव के स्थान दिलाना और उनके साथ कम से कम उसी प्रकार सह भोज का आचरण करना जैसा एक सवर्ण दूसरे सवर्ण के साथ करता है। मुसलमान और ईसाई मंदिर प्रवेश नहीं करते। करना भी नहीं चाहते परन्तु उन्हें उपरोक्त सुविधाओं से वंचित नहीं किया गया है। फिर अछूतों के प्रति यह भेदभाव क्यों ? और भी आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि जैसे ही अछूत हिन्दू

धर्म त्याग कर मुसलमान या ईसाई बन जाता है सवर्ण हिन्दुओं को उसे समान अधिकार देने में कोई संकोच नहीं होता। यह दोगला पन जिसका अनिवार्य फल हिन्दू समाज का पतन है कैसे बरदाश्त किया जाता है।

मंदिर प्रवेश बिल के केन्द्रीय असेम्बली में पेश होने के साथ साथ वाइसराय ने असेम्बली भंग कर दी और देश को नये चुनाव पर ला कर खड़ा कर दिया। कांग्रेस को अब उन अधिसंख्य हिन्दू वोटों की आवश्यकता थी जो मंदिर प्रवेश के विरुद्ध थे। गाँधी जी ने कहा कि "बम्बई में हिन्दुओं की सभा जो २५ सितम्बर १६३२ को मालवीय जी की अध्यक्षता में हुई थी मात्र कांग्रेसी हिन्दुओं की सभा नहीं थीं। इसलिए कांग्रेस का नाम मंदिर प्रवेश संबंधी आन्दोलन में लेना ठीक नहीं है।" कांग्रेस ने मंदिर प्रवेश आन्दोलन को ठंडे बस्ते में डाल दिया।

अम्बेडकर व्यंग करते हुये कहते है : "मिस्टर गांधी प्रारम्भ में मंदिर प्रवेश का विरोध करते हैं। जब अछूत अपने राजनीतिक अधिकारों की मांग करते हैं तो वह मंदिर प्रवेश आंदोलन से जुड़ जाते हैं और जब सवर्ण हिन्दुओं द्वारा उनको चुनावों में हार जाने का भय होता है तो वह मंदिर प्रवेश आंदोलन को त्याग देते हैं। इसको क्या समझा जाय? निश्छल सद्भावना ? दृढ़ विश्वास ? अथवा आत्मा की छटपटाहट ? जिनकी गाँधी जी बहुधा बात करते हैं ?"

वास्तव में गाँधी जी के लिये यह कोई नई बात नहीं थी। उनकी तराजू न सत्य था न अहिंसा न न्यायप्रियता न प्रेम। जैसा कि हम उनके विषय में अनेक लोगों के मूल्यांकन द्वारा बता चुके हैं। वह अपने सत्य, अहिंसा, न्यायप्रियता और प्रेम को समय के अनुसार राजनीतिक लाभ के लिये तोड़ मरोड़ लेते थे। उनके माप दंड मुसलमानों के लिये अलग थे हिन्दुओं के लिये अलग और अछूतों के लिये अलग। उनके जीवन के क्रिया कलापों का सूक्ष्म और गहन अध्ययन करने वाले को उनका यह दोहरा चरित्र पग पग पर स्पष्ट हो जाता है।

अम्बेडकर ने दलितों को उनके नागरिक अधिकार दिलाने के किसी भी आंदोलन के लिये निम्नलिखित सुझाव दिये थे:

१– ग्राम के कुओं से पानी लेने, ग्राम के स्कूलों और सार्वजनिक स्थलों में बिना भेदभाव के प्रवेश पाने, सार्वजनिक यातायात साधनों में बिना भेदभाव यात्रा करने का अधिकार दिलाना। अम्बेडकर मंदिर प्रवेश को उतना महत्व नहीं देते थे परन्तु उपरोक्त अधिकारों के विषय में उनका कहना था कि वह न्यूनतम नागरिक अधिकार प्रत्येक नागरिक को दिलाना तो शासन का कर्तव्य है।

परन्तु अम्बेडकर का यह भी कहना था कि इसके प्रयास मात्र दलितों और सवर्णों के बीच दंगा और हिंसा को जन्म देंगे। फिर मामला पुलिस और मैजिस्ट्रेटों तक जायगा। पुलिस और मजिस्ट्रेसी सवर्ण बाहुल्य और भ्रष्ट होने के कारण दलित उनसे न्याय की आशा नहीं कर सकते।

२– दलितों को दूसरे नागरिकों की भांति समान अवसर प्राप्त कराने के विषय में उनका कहना था कि गांवों में और कहीं कहीं शहरों में भी दलित वर्ग के लोग जीवन यापन के लिये सब्जी, दूध, मक्खन इत्यादि नहीं बेंच सकते क्योंकि वह अछूत समझे जाते हैं। सवर्ण हिन्दू उन गैर–हिन्दुओं (मुसलमानों तथा ईसाइयों) से जिनमें अनेक हिन्दुओं में से ही धर्मपरिवर्तन करने से बने हैं कोई परहेज नहीं करते। इसलिये छुआछूत मिटाना प्रथम आवश्यकता है। बुनाई मिलों में काम करने का अधिकार अछूतों को दिलाने के लिये अम्बेडकर विशेष रूप से इच्छुक थे क्योंकि इससे ऐसे लोगों को बड़ी मात्रा में कार्य मिलने की संभावना थी।

३– सवर्ण और दलितों में मेलजोल और संसर्ग की स्थापना के लिये सवर्ण परिवारों में अछूतों का अतिथियों अथवा नौकरों के रूप में प्रवेश आवश्यक है। सहभोज, द्वारा यह मानसिकता बदली जा सकती है और यदि सवर्ण इस सुधार के पक्षधर हैं तो उन्हें अपने उन रिश्तेदारों का भी विरोध सहने के लिये तैयार रहना चाहिये जो अछूतोद्धार के इस प्रोग्राम का विरोध करते हैं।

और अंत में अम्बेडकर इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि **अछूतों और सवर्णों को कानून द्वारा एक साथ नहीं जोड़ा जा सकता। चुनाव सुधारों द्वारा तो बिल्कुल ही नहीं यह कार्य तो केवल प्रेम द्वारा ही सम्भव है।**

अम्बेडकर बिल्कुल भी भ्रमित नहीं हैं। सार्वजनिक कुओं, मार्गो और दूसरे स्थानों पर अछूतों को प्रवेश दिला कर सवर्ण नागरिकों के बराबर अधिकार दिलाना वह शासन का अर्थात राजनीति का विषय समझते हैं जिससे उपयुक्त कानून बना कर इस सुधार के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर किया जा सके। परन्तु अछूतों और सवर्णों में संपर्क जो इन दोनों वर्गों में सिमेंट का काम कर सके, अथवा रोटी बेटी का व्यवहार कानून का विषय नहीं है। यह प्रेम बढ़ा कर ही किया जा सकता है। दयानन्द इस प्रेम और संसर्ग को बढ़ाने को धर्म सुधार से जोड़ कर इन कुरीतियों की तथाकथित शास्त्रिय बुनियाद को ही ध्वस्त कर देते हैं। कितनी सुन्दर और सहज है दयानन्द की प्रणाली ? वेद हिन्दू धर्म के आधार हैं। सही हो या गलत अधिकांश हिन्दू वेद वाणी को अंतिम निर्णय मानते हैं। दयानन्द वेदों से ही सिद्ध करते हैं कि वेदों के पढ़ने का समान अधिकार वेदों द्वारा ही समाज के प्रत्येक व्यक्ति को दिया गया है। छुआछूत और मूर्ति पूजा का वेदों में कोई विधान नहीं। दुर्भाग्यवश अम्बेडकर के उदय के समय दयानन्द जा चुके थे। और उनके रहे सहे उत्तराधिकारियों में श्रद्धानन्द के वध के बाद वह विद्वता, साहस, त्याग और तपस्या शेष नहीं रही थी जो अछूतों और सवर्णों के बीच उगते नये सिमेंट को कठोर और स्थायी बना सकती। अम्बेडकर के राजनीति से प्रेरित अनुयाइयों ने राजनीतिक मार्ग

तो अपनाया परन्तु दलित वर्ग और सवर्ण लोगों में उस प्रेम को उत्पन्न करने का जो स्कूल के कमरों और खेत के मैदानों में ही उगता और पनपता है, कोई प्रयास नहीं किया अपितु इन दो वर्गों में घृणा और आक्रोश को ही बढ़ावा दिया जिसका लाभ देर सबेर हिन्दू धर्म को जड़ से मिटाने का संकल्प लेकर जन्मे ईसाई और इस्लाम मत को मिलना अनिवार्य है।

रिडिल्स इन हिन्दुइज्म–

डा० अम्बेडकर ने इस विवादित पुस्तक में हिन्दू धर्म की तीखी आलोचना की है। हिन्दुओं का क्षुब्ध होना स्वाभाविक है। जब कोई व्यक्ति हमारे दोष हमको दिखाता है तो हम तिलमिला उठते हैं। इस पुस्तक में अम्बेडकर हिन्दू धर्म में प्रचलित अंध विश्वासों, दूषित आचरणों ओर तर्क विरुद्ध सिद्धान्तों को उजागर करते हुये बार बार पूछते हैं कि ब्राह्मणों ने ऐसा क्यों किया? और उनका यह प्रश्न एक प्रश्न भी है और इस प्रश्न का उत्तर भी।

दूसरे विद्वानों ने भी इस प्रश्न का उत्तर खोजने का प्रयास किया है। विदेशी विद्वान हेनरी बेवरिज अपनी पुस्तक "ए काम्प्रीहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया खंड–१, पृ०–१८ पर लिखते हैं : (हिन्दू इतिहास के विषय में) जब हम भूतकाल का अवलोकन करते हैं तो युग पर युग बीतते जाते हैं यहाँ तक कि वर्षो की संख्या लाखों में पहुंच जाती है । देवताओं और अर्ध–देवताओं, सूर्य और चन्द्रमा और उनसे भी अधिक भयानक प्राणियों की जिनमें दैवी, मानव और पशुओं का अद्‌भुत सम्मिश्रण है, संततियों की कभी भी न समाप्त होने वाली कहानियाँ भरी पड़ी हैं। परन्तु सामान्य मनुष्यों और उनके द्वारा किये गये कार्य कलापों का कहीं नाम भी नहीं देखने को मिलता जैसे कि उनका (इतिहास में) कोई महत्व ही नहीं है जब तक कि इसमें कुछ अद्‌भुत और अति कल्पनात्मकता का पुट न हो। संक्षेप में कहें तो **ब्राह्मणों ने जो ज्ञान और विद्वता के एक मात्र रक्षक (Trustee) थे अपने ऊपर जनता के अगाध विश्वास के साथ घात किया। उन्होंने प्रत्येक तथ्य को तोड़ मरोड़ कर एक ऐसे मिथक में परिवर्तित कर दिया अथवा कुटिलता पूर्वक निर्माण किया जिसका स्पष्ट उद्‌देश्य उनका अपना स्वार्थ साधन था।"**

हिन्दू (ब्राह्मण) विद्वानों ने इतना ही नहीं किया उन्होंने अपने सभी ग्रंथों में जो भी उनके हाथ लगा भयानक मिलावट की। रामायण, महाभारत, मनुस्मृति इत्यादि कोई भी ग्रंथ इस मिलावट से अछूता नहीं रहा। दूसरी ओर यवन काल में पुस्तकालय जला दिये गये। जिन ब्राह्मणों के पास उनके पूर्वजों द्वारा छोड़े गये ग्रंथ सुरक्षित थे उनका पता लगने पर उन्हें कठोर दंड दिया जाने लगा। फलस्वरूप वह ग्रंथ छिपा दिये गये अथवा गंगा इत्यादि नदियों को भेंट कर दिये गये। हिन्दू विद्वता लुप्त हो गई।

यह तो हिन्दुइज़्म में रिडिल्स (पहेलियों) की विद्यमानता का एक कारण है। दूसरा कारण भी उतना ही स्पष्ट है। १३०० वर्ष के लम्बे विदेशी शासकों ने भी हमारे ग्रंथों में अपनी स्वार्थ साधना के लिए इतनी ही भयंकर मिलावट की और उनके उल्टे सीधे अंग्रेजी अनुवाद छापे जिससे अंग्रेजी पढ़े हिन्दू युवकों में अपने उन ग्रंथों के प्रति अश्रद्धा और घृणा उत्पन्न हो जाय।

अम्बेडकर जैसा विद्वान भी विदेशियों द्वारा निहित स्वार्थवश किये गये अंग्रेजी अनुवादों को पढ़कर भ्रम मुक्त न रह सका जैसा कि शासक चाहते थे। हिन्दू समाज के स्त्रियों और दलितों के प्रति प्रचलित व्यवहार ने उन अनुवादों और मिलावटों को सिद्ध कर दिया। इस कार्य के लिये निश्चय ही शासकों द्वारा हिन्दू विद्वानों को पर्याप्त धन दिया गया होगा। उदाहरण के लिये अल्लोपनिषद और अथर्वेद के कुन्ताप सूक्तों का सहज ही नाम लिया जा सकता है। यह प्रक्रिया अभी भी समाप्त नहीं हुई है। ५० वर्ष पहले किसी ने संतोषी माता नामक देवी का नाम भी नहीं सुना था। अब वह घर घर में हिन्दू महिलाओं द्वारा पूजी जाती हैं। उसके व्रत और उपवास रखे जाते हैं। एक विद्वान ब्राह्मण द्वारा मात्र २ रूपये प्रति श्लोक का पारिश्रमिक लेकर संतोषी माता पुराण की रचना भी कर ली गई बताई जाती है। स्वभाव वश और वेदशास्त्रों की सुशिक्षा के अभाव में असावधान हिन्दू समाज पर इस प्रकार का भयानक बौद्धिक आक्रमण जारी है। इस प्रकार की पुस्तकें हमें देखने को मिल रही है जिनमें उपरोक्त प्रक्षिप्त साहित्य के संदर्भ से मोहम्मद साहब को पुराणों में वर्णित कल्कि अवतार सिद्ध करने के प्रयास किये जा रहे हैं। "ओउम" को मोहम्मद साहब के दामाद और शिया मुसलमानों के इमाम अली साहब का ही नाम सिद्ध किया जा रहा है। मुसलमानों द्वारा यह भी प्रचार किया जा रहा है कि यदि अम्बेडकर आज जीवित होते तो वह दलित वर्ग को बौद्ध धर्म ग्रहण करने के स्थान पर मुसलमान होने के आदेश देते।

तीसरा कारण है वेदों की भाषा। विख्यात राजनीतिज्ञ विद्वानों का जो किसी प्रकार भी संकीर्ण हिन्दू नहीं कहे जा सकते मत है : "हिन्दू धर्म की किताबों में वेदों का और खासकर ऋग्वेद का सबसे अधिक मान है। लेकिन वेद इतनी बड़ी चीज हैं, उनकी भाषा इतनी पुरानी और अजीब है और एक एक मन्त्र के इतनी तरह से अर्थ लगाए जा सकते हैं कि बेपढ़े लोगों के लिए ही नहीं बल्कि विद्वानों के लिए भी हजारों बरस से वेद एक पहेली रहे हैं और हमेशा पहेली ही रहेंगे। वेदों का निचोड़ उपनिषदों को माना जाता है जिसमें से कई वेदों के ही भाग हैं। इसमें शक नहीं उपनिषदों, या खास खास बारह उपनिषदों को, जिनके सब असली मन्त्रों को मिलाकर दो फर्मों की एक किताब भी नहीं बनती, भलाई बुराई और पाप पुण्य के ऊँचे से ऊँचे असूलों (मारल आइडियालिज्म), बारीक से बारीक फलसफे या दर्शन (ट्रान्सेंण्डेंटल मैटाफिजिक्स), और ब्रह्म और जीव की गहरी से गहरी सचाइयों का

गूढ़ अध्यात्म (डीप स्पिरिचुएलिटी) की वजह से दुनिया की ऊँची किताबों में एक ऊँची जगह हासिल है। हज़ारों पढ़े लिखे हिन्दू ऐसे हैं जिनसे अगर किसी बहुत बड़े भयंकर तूफान या भूचाल के समय पूछा जाय कि तुम अपने किस ग्रन्थ–रत्न को आगे की दुनिया के लिये सबसे ज्यादह बचाकर रखना चाहते हो तो वे कहेंगे – "उपनिषद"। हज़ारों गैर–हिन्दू विद्वान भी इस बात में उनकी राय से इत्तफाक करेंगे।" वेदों की संस्कृत सामान्य और प्रचलित संस्कृत नहीं है। सामान्य संस्कृत व्याकरण द्वारा उसको समझा नहीं जा सकता और इस कठिनाई के साथ साथ यदि अनुवादक का ध्येय ही अनुवाद को अश्लील और घृणित बना देने का हो तो विद्वता के अभाव में पाठकों में दुष्प्रचार के लिये यह कार्य सहज हो जाता है। सायण और महीधर के भाष्य इसके जीते जागते नमूने हैं। महीधर ने तो खजुराओं और कोनार्क के मंदिरों पर उत्कीर्ण वाममार्गी मूर्तियों से प्रेरणा लेकर यजुर्वेद के कुछ मंत्रों के ऐसे अर्थ किये हैं कि विदेशियों ने अपनी मातृ भाषा को पतित करने के भय से उनका अनुवाद करने से ही इन्कार कर दिया है।

यदि दयानन्द का अविर्भाव न हुआ होता तो वेदों पर यह कलंक का टीका लगा ही रह.जाता। यदि दयानन्द को गुरु विरजानन्द न मिले होते तो शायद वेदों के अनुवाद की कुंजी ही खो गई होती।

विरजानन्द द्वारा दिये गये ज्ञान और कठिन परिश्रम के फलस्वरूप महीधर द्वारा की गई भयानक शरारत उजागर हो गई। मैक्समूलर, जो वेदों को गड़रियों के गीत और हिन्दुओं को बर्बर सिद्ध करने में लगा था, दुम दबा कर आर्य विद्वानों की श्रेष्ठता संसार में अद्वितीय होना स्वीकार करने पर बाध्य हो गया। भारत आने वाले अंग्रेजी अफसरों के समक्ष अपने भाषण में उसने कहाः "यदि मैं तमाम संसार में यह खोज करूँ कि ऐसा कौन सा देश है जिस पर प्रकृति ने अपनी समस्त, सम्पदा, शक्ति और सुन्दरता न्योछावर कर दी है यहाँ तक कि उसे पृथ्वी पर स्वर्ग की संज्ञा दी जा सकती है तो मैं भारत को ही इंगित कर सकूंगा। यदि मुझसे कोई यह पूछे कि आकाश के नीचे वह कौन सा देश है जहाँ मानव मस्तिष्क ने पूर्णरूप से प्रकृति के सभी चुने हुये उपहार विकसित कर लिये हैं, **जहाँ जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्याओं का न केवल गहन अध्ययन किया गया है अपितु उनमें से अनेक ऐसी समस्याओं का उपचार भी खोज निकाला गया है, जो प्लूटो और कैंट जैसे दार्शनिकों के दर्शन में अध्ययनरत विद्वानों को भी आकर्षित करने योग्य हैं तो मैं भारत को ही इंगित करूँगा।** और यदि मैं अपने आप से ही यह प्रश्न पूछूँ कि किस साहित्य से हम युरोप निवासी जिनका मात्र ग्रीक और रोमन चिंतन में पालन पोषण हुआ है अथवा सेमेटिक जातियों के यहूदी वह प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं जो हमारे अर्न्तजीवन को अधिक सम्पूर्ण, अधिक सुखद अधिक सार्वभौमिक और वास्तव में अधिक मानव कल्याणकारी बना सकती है, न केवल पृथ्वी पर इस

भौतिक जीवन में, अपितु उसके पश्चात के परिवर्तित नित्य जीवन में भी, तो मैं फिर भारत को ही इंगित करूँगा।"

दयानन्द के वेद भाष्य के विषय में अरविन्द लिखते हैं: "दयानन्द ने निस्संदेह वेदों की कुंजी खोज ली थी। उन्होंने वेद मंत्रों के यथार्थ अर्थ निकालने के लिये अद्वितीय मार्ग अपनाया। अब हमारा यह कर्तव्य है कि उसी कुंजी के प्रयोग द्वारा हम वैदिक ज्ञान के भंडार के तालों को खोल डालें।

"दयानन्द के इस दावे में कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं है कि वेदों में अनेक ऐसे वैज्ञानिक तथ्य छिपे पड़े हैं जहाँ अभी तक मानव बुद्धि का प्रवेश नहीं हुआ और जिनकी खोज अभी शेष है। मेरा विश्वास है कि दयानन्द ने इस तथ्य को कुछ कम ही कर के आंका है।"

(नोटः महर्षि दयानन्द विष दिये जाने से अकाल मृत्यु को प्राप्त होने के कारण केवल यजुर्वेद और ऋगवेद के कुछ अंशों का ही अनुवाद कर पाये थे।)

दयानन्द के चरण चिन्हों पर चल कर आर्य समाज के विद्वानों ने रामायण, महाभारत और मनुस्मृति जैसे ग्रंथों में प्रक्षिप्त श्लोकों को रेखांकित किया और सिद्ध किया कि दोष वेद और शास्त्रों का नहीं उनमें मिलावट करने वाले धूर्त विद्वानों का है।

परन्तु हिन्दू जाति के दुर्भाग्य का अंत नहीं हुआ है। दयानन्द ने अभी अपना महत्वपूर्ण कार्य शास्त्रों का उद्धार प्रारम्भ ही किया था कि अंग्रेजों ने दयानन्द को दुरभिसन्धि द्वारा राजपूताना में विष दिलवा कर मार डाला।

उनके तेजस्वी शिष्यों लेखराम, श्रद्धानन्द आदि विद्वानों की मुसलमानों द्वारा हत्या कर दी गई। कदाचित आर्य समाज इन दुर्घटनाओं को सह कर भी जीवित रहता। सवर्णों तथा दलितों में कटुता उत्पन्न किये बिना ही वह सामाजिक सुधार हो जाता जिसकी नीव दयानन्द ने डाली थी। और जिसके अभाव में अम्बेडकर इतने दुखी थे। गुरुकुलों में सवर्ण और दलित बच्चों की सहशिक्षा, सहभोज, और सहनिवास आमोद प्रमोद द्वारा सद्भावना का बीज उगना प्रारम्भ ही हुआ था कि भारत के राजनीतिक क्षितिज पर मोहनदास करम चन्द गाँधी का उदय हुआ। वह अपने को निष्ठावान हिन्दू कहते थे परन्तु इतिहास में किसी दूसरे व्यक्ति ने हिन्दू समाज को इतनी हानि नहीं पहुंचाई जितनी गाँधी ने अपने ३० वर्ष के उस काल में जब वह हिन्दुओं द्वारा साक्षात ईश्वर का स्वरूप माना जाता रहा। फलस्वरूप आर्य समाज समाप्त हो गया और एनी बीसेंट के शब्दों में "मुसलमानों में एक नई धर्मान्धता, कट्टरवादिता, काफिर विरोधी घृणा का जन्म हुआ।"

अम्बेडकर ने जिन हिन्दू धर्म ग्रन्थों पर "रिडिल्स इन हिन्दूइज्म' में अथवा उनके कुछ भागों पर आक्षेप किये हैं वह क्या तो वही प्रक्षिप्त अंश है जो स्वार्थी लोगों द्वारा अपना स्वार्थ सिद्ध करने के दृष्टि से उन में मिला दिये गये हैं अथवा जिनका

अशुद्ध अनुवाद जानबूझ कर अथवा पर्याप्त ज्ञान के अभाव में सायण अथवा महीधर द्वारा किया गया है। मैक्समूलर जैसे कुटिल विदेशियों ने इन्हीं सायण और महीधर के वेद भाष्यों का उपयोग वेदों को कुत्सित और हास्यास्पद सिद्ध करने के लिये किया। अम्बेडकर को भी यही अनुवाद उपलब्ध थे। निस्संदेह हिन्दू समाज में प्रचलित लज्जाजनक दलित विरोधी अमानवीय व्यवहार से असह्य मानसिक क्लेश को प्राप्त अम्बेडकर इन धर्म ग्रन्थों को ही हिन्दू समाज के दोषों का कारण समझ बैठे।

दयानन्द ने भी इन स्वार्थी लोगों द्वारा बनाये गये अथवा धर्म ग्रन्थों में मिलाये गये अंशों को देखा। किन्तु वह अपने संस्कृत ज्ञान द्वारा उनकी वास्तविकता को पहचान गये। अपनी पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश में उन्होंने इन ग्रन्थों और उनके प्रक्षिप्त अंशों पर जो टिप्पणियाँ की है उनके सामने अम्बेडकर की टिप्पणियाँ फीकी पड़ जाती हैं। परन्तु दयानन्द में और अम्बेडकर में अंतर यह है कि दयानन्द धर्म सुधारक होने के नाते उन गन्दगियों को अपने ज्ञान के प्रहार द्वारा नेस्तनाबूद कर शुद्ध वैदिक धर्म को स्थापित करते हैं। अम्बेडकर उस विकृत धर्म को छोड़ कर बौद्ध धर्म स्वीकार करते हैं, क्योंकि वह इस धर्म में जन्म लेकर भी उसमें मरना नहीं चाहते जिसने उनको पग–पग पर अपमानित किया है।

परन्तु अम्बेडकर जिस बौद्ध धर्म को स्वीकार करते हैं क्या वह भी स्वयं हिन्दू धर्म की भाँति गौतम बुद्ध की मूल शिक्षाओं में भयंकर मिलावट और दुराचार का शिकार नहीं हुआ है। समय के साथ उसमें भी अनेक कुरीतियों ने प्रवेश किया। स्वयं अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक 'बुद्ध और उनका धर्म' में भिक्षुओं द्वारा की गई मिलावट को स्वीकार किया है। इस विषय पर बौद्ध विद्वानों के विचार हम आगे यथा स्थान देंगे। वह भी विभिन्न सभ्यताओं में विभाजित हो गया। भगवान बुद्ध ने जिन संघों को समाज कल्याण के लिये स्थापित किया था वह व्यभिचार के अड्डे बन गये। राज्य द्वारा पोषित भिक्षु विहार छद्मधारी, निकम्मे, आलसी भिक्षुओं के उसी प्रकार अड्डे बन गये जिस प्रकार हिन्दुओं के आश्रम। जिस प्रकार गेरुये वस्त्र धारण कर लेने मात्र से हिन्दू सन्यासी भले ही उस आवरण में चोर, डकैत अथवा व्यभिचारी व्यक्तित्व छिपा हो हिन्दू समाज के आदर के पात्र बन जाते थे उसी प्रकार पीले वस्त्रधारी बौद्ध भिक्षु भी।

वास्तव में कोई भी मत इस बुराई से अछूता नहीं रह सकता। समय के साथ उसमें इस प्रकार की मिलावट होना अनिवार्य है। ईसाई मत की धर्म पुस्तक बाइबिल पर तो ईसाई विद्वानों द्वारा ही घोर अनैतिक बातों की मिलावट का दोष लगाया जाता है। कुछ विद्वान तो उसके अनेक अंशों को ईसा की वाणी ही नहीं मानते।

यद्यपि मुसलमान कुरान में मिलावट के आरोप पर अत्यन्त क्रुद्ध होते हैं परन्तु यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि मोहम्मद साहब की मृत्यु के समय भी कुरान अपनी वर्तमान स्थिति में संकलन नहीं हो पाया था । उसके भिन्न भिन्न संस्करण प्रचलित थे । अनेक संभ्रांतियों और विवादों को निपटा कर पैगम्बर की मृत्यु के बारह वर्ष बाद ही तीसरे खलीफा उस्मान के काल में उसका वह संस्करण बना जो आज प्रचलित है। शेष सभी संस्करण खलीफा के आदेश से जला दिये गये। मुस्लिम विद्वानों और समाज की हम प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते जिनके प्रयासों और धर्मनिष्ठा के कारण इन १४०० वर्षों में यह संस्करण बिना एक बिन्दु की मिलावट के यथा स्थिति में चला आ रहा है।

इस बिन्दु पर आकर ही दयानन्द और अम्बेडकर के मार्ग बदल जाते हैं। जैसा कि हम दयानन्द के विषय में पहले ही लिख आये हैं दयानन्द ने विशुद्ध वैदिक धर्म को उस कुशल स्वर्णकार की भाँति परखा जो किसी मिलावटी धातु में स्वर्ण की अलग पहचान कर उसमें मिली घटिया धातुओं को अलग कर देने की परख और क्षमता रखता है। वैदिक संस्कृत के अपने अथाह ज्ञान की भट्ठी में तपा कर उसने उस मिलावटी धातु में से विशुद्ध सोने को अलग कर के दिखा दिया। विदेशी विद्वानों की आंखें भी उस स्वर्ण की आभा से चकाचौंध हो गईं।

दयानन्द ने सिद्ध कर दिया कि छुआछूत और जन्मना वर्ण व्यवस्था, यज्ञों में पशुबलि, सती प्रथा जैसी कुत्सित प्रथायें हिन्दू धर्म में बाद की मिलावट हैं। इन कुरीतियों को जड़ मूल से नष्ट करने के लिये दयानन्द ने फिर से गुरुकुलों की शिक्षा का मार्ग अपनाया। अम्बेडकर ने उस खोटी धातु को त्यागने का ही संकल्प किया। उसको त्याग कर उन्होंने बौद्ध धर्म तो अपनाया परन्तु बौद्ध धर्म की जिन बातों को उनका मस्तिष्क स्वीकार नहीं कर पाया उनको उन्होंने भिक्षुओं द्वारा की गई मिलावट कहकर नकार दिया। फल क्या निकला? एक मिलावटी धर्म से दूसरे मिलावटी धर्म में प्रवेश। राजनीतिक दृष्टि से तथाकथित दलित वर्ग को उनके राजनीतिक अधिकार दिलाने का कदाचित यह एक संक्षिप्त और सुगम मार्ग भले ही लगा हो उससे सवर्ण समाज के और दलित समाज के चरित्र और पारस्परिक द्वेष में कोई सुखद परिवर्तन न होना था न हो पाया।

दयानन्द के शिक्षा मार्ग पर चलकर यद्यपि वह मार्ग थोड़ा लंबा अवश्य है, हिन्दू समाज के जाति पांति छुआछूत इत्यादि कोढ़ को जड़मूल से मिटा कर ही एक समरस, संगठित और अनुशासित हिन्दू समाज का निर्माण संभव है। अम्बेडकर इस तथ्य से अपरिचित नहीं थे। जब समाज का कोई भी वर्ग उन्हें आश्रय देने को तैयार नहीं था तब आर्य समाजियों ने ही उनहें शरण दी थी। स्वामी श्रद्धानन्द पर उनका अगाध विश्वास होने का भी कारण यही था कि वह आर्य समाज की विचारधारा के समर्थक थे। परन्तु वह अपने जीवनकाल में ही सहस्रों वर्षों से इकट्ठी हुई गन्दगी

को साफ कर जाना चाहते थे जो सम्भव नहीं था। फलस्वरूप वह एक महान विचारक और दलित वर्ग के महान शुभ चिंतक नेता के रूप में तो स्मरण किये जायेंगे परन्तु समाज सुधारक के रूप में नहीं।

अम्बेडकर अछूतों द्वारा मंदिर प्रवेश को उतना महत्व नहीं देते थे जितना कि अछूतों को सवर्णों की भांति शिक्षा, स्वास्थ्य और नागरिक अधिकार दिलाना। दयानन्द के लिये तो मूर्ति मंदिर ही अछूत थे और आर्यसमाज मंदिरों में अछूतों के प्रवेश पर अथवा उसमें पद ग्रहण करने पर कभी कोई प्रतिबन्ध ही नहीं था। इस बिन्दु पर हम फिर अम्बेडकर को दयानन्द के साथ एक ही मंच पर खड़ा पाते हैं। लंदन जाते समय लंदन से १४ नवम्बर १९३२ को एंटी–अनटचेबिलिटी लीग के जेनरल सिक्रेटरी ठक्कर को लिखे गये एक पत्र में अम्बेडकर ने लिखा : "सवर्णों और अछूतों **में एकता कानून द्वारा सम्भव नहीं है और निश्चय ही कानून द्वारा अलग निर्वाचन मण्डलों को संयुक्त निर्वाचन मंडलों में बदल कर भी नहीं? उनमें पारस्परिक प्रेम उत्पन्न करने से ही यह एकता सम्भव है।" कोई भी निष्पक्ष व्यक्ति यह आसानी से स्वीकार करेगा कि आर्य समाज के गुरुकुलों में ही यह प्रेम उत्पन्न हो सकता है और हुआ है।**

मंदिर प्रवेश के विषय में कहा गया था कि यदि मंदिर में पूजा करनेवाले लोगों का एक बाहुल्य वर्ग अछूतों के मंदिर प्रवेश से सहमत हो तो कानून द्वारा अछूतों को प्रवेश दिलाया जाय। अम्बेडकर ने इस बिल का विरोध किया। उनका कहना था कि कोई अनैतिक कार्य अथवा पाप इसलिए निर्दोष नहीं माना जा सकता कि बहुमत उसके पक्ष में है।" दयानन्द छूआछूत को और मंदिरों में होने वाली मूर्ति पूजा दोनो को ही वेदों के विरुद्ध होने के कारण अनैतिक और पाप मानते थे। इसलिये अम्बेडकर और दयानन्द दोनो ही अछूतों के मंदिर प्रवेश को कोई महत्व नहीं देते।

दलित वर्ग की राजनीति को अध्ययन करने में हम अम्बेडकर को छोड़कर कमोवेश सभी राजनीतिज्ञों यहाँ तक कि दलित वर्ग के कथित नेताओं को भी दलित वर्ग की भलाई का कम और अपना हित ही अधिक साधते पाते हैं। गाँधी जी की नीति का खुलासा अम्बेडकर के शब्दों में हम पहले ही कर चुके है। फ्रैन्चाइज कमेटी के सामने अपना अपना पक्ष प्रस्तुत करने के समय यह बात और भी स्पष्ट हो गई।

केन्द्रीय असेम्बली में एम०सी० राजाह ही अकेले दलित वर्ग के सदस्य थे। उनको अंग्रेजी शासको ने राउंड टेबिल कान्फ्रेंस में आमन्त्रित न कर अम्बेडकर को आमंत्रित किया था। कदाचित इस से रुष्ट होकर और दलितों के लिये गाँधी द्वारा संयुक्त निर्वाचन मंडल सिद्धान्त पर बल देने के कारण दलित नेता एम०सी० राजाह पहले संयुक्त निर्वाचन मंडल का विरोध करते रहे थे।

परन्तु अब उन्होंने अपनी इस मांग को त्याग कर हिन्दू महासभा के नेता डाक्टर मुंजे के साथ एक पैक्ट द्वारा संयुक्त निर्वाचन मंडल और सुरक्षित सीटों की

मांग प्रारम्भ कर दी। डा० अम्बेडकर ने भी अपना पाला बदला। साइमन कमीशन को अपनी रिपोर्ट देते समय उन्होंने संयुक्त निर्वाचन मंडल और सुरक्षित सीटों की मांग की थी और मुसलमानों की सुरक्षित सीट और अलग निर्वाचन मंडल की मांग का ज़बरदस्त विरोध किया था। परन्तु अब वह दलितों के लिये भी मुसलमानों की भांति सुरक्षित सीट और अलग निर्वाचन मण्डलों की मांग करने लगे। इस पाला बदली से एम०सी० राजाह का दलितों पर प्रभाव समाप्त प्रायः हो गया। वीर सावरकर के प्रभाव के कारण रत्नागिरि हिन्दू सभा ने अम्बेडकर द्वारा दलितों के पक्ष को विद्वतापूर्ण ढंग से पेश करने के लिये उनकी भूरि भूरि प्रशंसा की। वीर सावरकर तो अपने गुरु दयानन्द–भक्त श्याम जी कृष्ण वर्मा के प्रभाव के कारण रत्नागिरि में रहकर स्वतंत्र रूप से पहले से ही अछूतोद्धार कार्य में संलग्न थे।

डा० अम्बेडकर के प्रयासों का एक फल यह निकला कि अनेक दूसरे वर्ग जो अपने को पिछड़ा कह कर अछूतों की नाव में सवार होना चाहते थे अपनी साजिश में सफल नहीं हो सके। लोथियन कमेटी ने मत व्यक्त किया कि दलित वर्ग में केवल वही लोग सम्मिलित किये जाने चाहियें जो **हिन्दू समाज में अछूत समझे जाते हैं।** परन्तु हुआ क्या। शीघ्र सत्ता प्राप्ति के लोभ में अछूत नेताओं ने अपने को पिछड़े वर्ग और मुसलमानों के साथ भी मिला कर सत्ता हड़पने का प्रयास प्रारम्भ कर दिया। फल स्वरूप उनकी पार्टी में यादव, कुर्मी, काछी, मुसलमान और यहाँ तक कि ब्राह्मण और ठाकुर भी अछूतों को जो थोड़ा बहुत राजनीतिक दूध प्राप्त हुआ था उसकी मलाई उड़ा लेने में सफल हो गये।

अम्बेडकर और भारतीय संविधान–

अधिकांश लोग अम्बेडकर को भारतीय संविधान का निर्माता मानते हैं। उनके कुछ भाषण उन विचारों के विपरीत है जो वह कांग्रेसी शासन में पदासीन होने से पहले दृढ़तापूर्वक बार बार व्यक्त कर चुके थे। इसका कारण भी उन्होंने स्वयं ही स्वीकार कर लिया है।

संविधान सभा में संविधान पर बहस समाप्त होने के पश्चात अनेक सदस्यों ने अपने भाषण में डा० अम्बेडकर को उनकी सूझ बूझ, श्रम तथा राष्ट्र निष्ठा पर बधाई दी। उस समय मौ० सादुल्ला साहब ने जो ड्राफ्टिंग कमेटी के सदस्य भी थे एक महत्वपूर्ण रहस्य भी उद्घाटित किया। उन्होंने कहा कि ड्राफ्टिंग कमेटी अपने कार्य में स्वतंत्र नहीं रही थी। **संविधान में बहुत से प्राविधान जो जनतंत्र की भावना के विरुद्ध थे ऊपर के कुछ लोगों के दबाव में शामिल करने पड़े।**

मौ० सादुल्ला साहब के इस बयान की पुष्टि कि संविधान सभा स्वतंत्र नहीं थी अपितु वहाँ भी कुछ लोगों का अनुचित दबाव था, डा० अम्बेडकर द्वारा राज्य सभा में २ सितंबर १९५३ में दिये गये वक्तव्य से भी होती है। उन्होंने कहा था: **लोग सदैव मुझसे कहते रहते हैं कि "ओह! तुम हो (भारतीय) संविधान के निर्माता!" मेरा**

उत्तर है "मैं तो किराये का टट्टू था। मुझसे जो करने के लिए कहा गया वह मैंने अपनी इच्छा के विरुद्ध होते हुए भी किया.....महोदय मेरे मित्र (भी) कहते हैं कि मैंने संविधान की रचना की। किन्तु मैं यह कहने को बिल्कुल तैयार हूँ कि (यदि आवश्यकता पड़े अथवा यदि मेरा बस चले तो) मैं उसे जलाने वाला प्रथम व्यक्ति हूँगा।" यह तो हुई स्वतंत्र भारत के निर्माण में सदस्यों की सीमित स्वतंत्रता। वास्तव में तो गाँधी और जवाहर लाल कांग्रेस के डिक्टेटर थे। उनकी मर्जी के ख़िलाफ कुछ नहीं हो सकता था। गाँधी के अनन्य भक्त पंत जी ने सुभाष के इस्तीफे की मांग करते हुए कहा था: "फासिस्टों में मुसोलिनी की, नाजियों में हिटलर की और काम्युनिस्टों में मार्क्स की जो जगह है कांग्रेस में गाँधी जी का वही स्थान है।" इसलिए कैसी कांग्रेस, कैसी कांग्रेस कमेटी, कैसी संविधान सभा। गणतंत्र के यह सब खर्चीले और नुमाइशी आडम्बर तो थे परन्तु होना वही था जो सावरमती का संत चाहता था। उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ भी करना असम्भव था। ऐसा प्रयास करना भी राजनीतिक हाराकीरी थी। उनके बाद जवाहरलाल उनके बाद इन्दिरा और फिर राजीव के लिए कांग्रेस एक रबर स्टैम्प से अधिक कुछ नहीं रही। विरोधी बाहर कर दिये जाते थे।

फिर भी इस अवसर पर दिये गये भाषण में अम्बेडकर ने कुछ महत्वपूर्ण उद्गार व्यक्त किये थे जिनका अध्ययन वर्तमान परिस्थितियों में करना अत्यावश्यक है। उन्होंने कहा था :

१– **"कोई संविधान कितना ही उत्तम क्यों न हो यदि उसका कार्यान्वयन करने वाले लोग दुष्ट होंगे तो उसका फल हानिकारक ही निकलेगा।** यदि उसके कार्यान्वयन करने वाले व्यक्ति श्रेष्ठ होंगे तभी उसका श्रेष्ठ फल प्राप्त हो सकता है।" इसलिए **उत्तम चरित्र, ईमानदार, स्वाध्यायशील, वेदाग विद्वानों का पार्लियामेंट और विधान सभाओं में जाना कितना आवश्यक है यह बताने की आवश्यकता नहीं है।**

२– भविष्य की कल्पना करते हुये उन्होंने इस बात पर बड़ी चिन्ता जताई कि **भारत ने जब जब पहले भी अपनी स्वतंत्रता खोई थी उसका कारण उसके अपने ही लोगों द्वारा विश्वासघात था।** मोहम्मद बिन कासिम का आक्रमण इसलिये सफल हुआ कि दाहिर के (बौद्ध और मुसलमान) सेनापति उससे रिश्वत खा कर युद्ध विमुख हो गये थे। जयचन्द ने सोलंकी राजाओं को सहायता का वचन देकर मोहम्मद गौरी को भारत पर आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित किया। जब शिवाजी मुगलों से लड़ रहे थे राजपूत राजा और कुछ मराठा सरदार मुगलों की ओर से उनके विरुद्ध खड़े थे। जब अंग्रेज सिखों से लड़ रहे थे तो बहुत से सिख योद्धा चुपचाप बैठे देखते रहे। उन्होंने पूछा क्या इतिहास फिर अपने को दोहरायेगा? और कहा कि **मेरी**

चिंता इसलिये और भी बढ़ जाती है कि जाति पांति पर आधारित अनेक राजनीतिक दलों का निर्माण अब एक नये शत्रु के रूप में उभर रहा है जिनके राजनीतिक दर्शन पारस्परिक विरोधी हैं। उन्होंने गंभीर चेतावनी देते हुये भारतवासियों से अपील की कि वह राजनीतिक दलों द्वारा अपने दलीय हितों को देश हित के ऊपर स्थान देने के खतरे से सावधान रहें। और अपने रक्त की अंतिम बूंद तक अपने देश की स्वतंत्रता की रक्षा करने का प्रण लें।

३– देश में जनतंत्र को सफल बनाने के लिये उन्होंने इस बात पर बल दिया कि आगे से अपने सामाजिक और आर्थिक अधिकारों की रक्षा के लिये लोग **केवल संवैधानिक मार्ग ही अपनाये। सत्याग्रह और असहयोग जैसे हथियारों को अपनाने का अर्थ केवल अराजकता की ओर अग्रसर होना है।**

४– **उन्होंने चौथा बड़ा खतरा व्यक्ति पूजा का बताया। जॉन स्टुअर्ट का उद्धरण देते हुये उन्होंने कहा कि जनतंत्र की रक्षा के लिये यह आवश्यक है कि समाज किसी के भी चरणों में अपनी स्वतंत्रता की भेंट न चढ़ाये भले ही वह व्यक्ति कितना ही महान क्यों न हो।** देश में प्रचलित तर्कहीन अंध व्यक्ति पूजा के विरुद्ध चेतावनी देते हुये उन्होंने कहाः जीवन भर देश की सेवा करने वाले महापुरुषों के प्रति आभारी होने में कोई दोष नहीं है परन्तु इसकी भी सीमा होती है। जैसा कि आइरिश देश भक्त डैनियल ओकनेल ने कहा हैः **'किसी भी स्त्री को अपने सतीत्व की, किसी भी राष्ट्र को अपनी स्वतंत्रता की बलि नहीं देनी चाहिये।' किसी भी दूसरे देश की तुलना में यह चेतावनी भारत के लिये अधिक महत्वपूर्ण है। क्योंकि भारत में राजनीति में भक्ति का महत्व किसी भी दूसरे देश से अधिक है।** (इसका एक कारण यह है कि हिन्दू संसार की किसी भी जाति और धर्म के लोगों से अधिक खुशामद पसंद है और वह अपने शुखामदियों को दूसरे अधिक योग्य उन व्यक्तियों पर वरीयता देते हैं जो उनकी खुशामद नहीं करते। दूसरा कारण हिन्दू का घोर अंध विश्वासी होना है जिसके कारण वह पत्थरों, नदियों, वृक्षों, भूतप्रेतों, हिन्दुओं पर घोर अत्याचार, कत्ल और बलात् करने वाले सूफियों की मज़ारों इत्यादि की पूजा करने में संकोच नहीं करता (ऐसे व्यक्ति को किसी जीवित मनुष्य की अंधभक्ति करने में क्या संकोच हो सकता है जिससे उसे कुछ लाभ की आशा हो ? – लेखक) आत्मा के निर्वाण के लिये भक्ति भले ही एक मार्ग हो परन्तु राजनीति में भक्ति मार्ग अवनति और अंत में अधिनायक वाद की ओर ले जाने वाला है।

५– **जनतंत्र की रक्षा के लिये तीसरी बात जो आवश्यक है वह यह है कि राजनीतिक जनतंत्र के साथ साथ सामाजिक और आर्थिक जनतंत्र भी**

हो। यदि सामाजिक और आर्थिक जनतंत्र न होगे तो राजनीतिक जनतंत्र पनप नहीं पायेगा। सामाजिक जनतंत्र का अर्थ है जीवनचर्या में स्वतंत्रता, समानता और पारस्परिक सद्भाव का होना। यह तीन सिद्धान्त अविभाज्य हैं। समानता के बिना स्वतंत्रता कुछ गिने चुने लोगों को बहुजन समाज पर सत्तारूढ़ करा देगी। बिना स्वतंत्रता के समानता वैयक्तिक उपक्रम शीलता और आगे बढ़कर सार्थक कदम उठाने के उत्साह (initiative) का गला घोंट देगी। सद्भावना के अभाव में स्वतंत्रता और समानता स्वयं जीवन के स्वाभाविक आधार नहीं बन सकते। हम को सच्चे मन से यह स्वीकार करना चाहिये कि भारतीय जीवन में दो चीजों का नितांत अभाव है–सामाजिक और आर्थिक समानता का।

उन्होंने गम्भीर चेतावनी देते हुये कहा देश एक पारस्परिक विरोधी जीवन काल में प्रवेश कर रहा है। हम राजनीतिक समानता का एलान कर रहे हैं परन्तु हमारे सामाजिक और आर्थिक जीवन इस समानता से कोसों दूर है। यदि इस विरोधाभास को शीघ्र ही न मिटाया गया तो जो लोग इस समानता से वंचित रखे जाते रहे हैं वह इस राजनीतिक जनतंत्र की धज्जियाँ उड़ा देंगे जिसका इस सभा ने इतने श्रम पूर्वक निर्माण करने का प्रयास किया है।

४० मिनट के इस भाषण को संविधान सभा ने दत्तचित्त होकर सुना। बार बार करतल ध्वनि द्वारा इसके अनेक अंशों का स्वागत किया गया। सभी नेताओं और प्रमुख समाचार पत्रों ने इसकी भूरि भूरि प्रशंसा की। परन्तु क्या इनमें से एक भी चेतावनी का किसी भी राजनीतिक दल की कार्यशैली पर कोई प्रभाव पड़ा ? स्वयं अम्बेडकर का नाम लेने वाली पार्टियाँ भी अम्बेडकर की शिक्षा और राजनीतिक दर्शन का कितना अनुसरण कर पाईं वह इन दलों और नेताओं को स्वयं आत्म निरीक्षण द्वारा सोचना चाहिए।

अम्बेडकर की यह सभी विद्वतापूर्ण श्रमसाध्य चेतावनियों का समाज पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि समाज में वैयक्तिक चरित्र का नितांत अभाव हो गया है। प्रत्येक व्यक्ति का अपने स्वार्थ को ही देखने का स्वभाव बन गया है क्योंकि ऐसी कोई राष्ट्रीय शिक्षा ही नहीं है जो बचपन से राष्ट्र हित को वैयक्तिक स्वार्थ से ऊपर रखने की प्रेरणा दे कर व्यक्ति व्यक्ति का निर्माण करे।

संविधान सभा के कार्य से छुट्टी पाने के पश्चात अम्बेडकर ने अपनी पूर्ण शक्ति हिन्दू कोड बिल की तैयारी में लगा दी। इस प्रकार के सुधारों का जैसा विरोध कुछ वर्गो द्वारा होता है वैसा ही इस बिल का भी हुआ। हिन्दू समाज इसके समर्थकों और विरोधियों में बंट गया। हिन्दू कोड बिल से हिन्दू समाज को कितना लाभ हुआ और कितनी हानि पहुंची यह हमारा विषय नहीं है। अम्बेडकर ने अपने पक्ष में कहा कि सम्पूर्ण हिन्दू समाज में समान नागरिक कानून लागू करना संविधान

द्वारा सम्पूर्ण भारतवासियों की एक ही नागरिक संहिता के नीचे लाने की दिशा में पहला पग है। उन्होंने कहा कि इस बिल के प्राविधान हिन्दू शास्त्रों और स्मृतियों द्वारा निषिद्ध नहीं हैं। उदाहरण स्वरूप कौटिल्य और पाराशर तलाक के समर्थक हैं और स्त्रियों का सम्पत्ति में अधिकार का वृहस्पति स्मृति समर्थन करती है।

अम्बेडकर इस समय अपनी ख्याति के चरम बिन्दु पर थे। जस्टिस छागला, जस्टिस नियोगी, संविधान सभा के अध्यक्ष, आर०के० सिधवा इत्यादि के सभापतित्व में अनेक बड़ी सभाओं में इन और दूसरे महानुभावों ने अम्बेडकर की भूरि–भूरि प्रशंसा की।

२५ मार्च १९५० को अम्बेडकर अपनी पत्नी और सचिव राजभोज के साथ कोलम्बों में होने वाली बुद्धिस्ट कान्फ्रेन्स के निमंत्रण पर कोलम्बो गये। कैन्डी की एक सभा में उन्होंने कान्फ्रेन्स द्वारा पास कुछ प्रस्तावों का भी विरोध किया।

भारत से बुद्धिज्म के लोप हो जाने के जो कारण उन्होंने बताये वह इस प्रकार थे : (१) बौद्ध धर्म के अनेक सिद्धांत और रीति रिवाज वैष्णव और शैव मतों द्वारा अपना लिये जाने के फलस्वरूप बौद्ध धर्म का पृथक अस्तित्व समाप्त हो गया। (२) विहार पर मुस्लिम आक्रमण के समय लाखों बौद्ध भिक्षुओं की हत्या कर दी गई और अधिकांश तिब्बत, चीन और नेपाल भाग गये।

अम्बेडकर ने काठमांडू में अपने एक भाषण में कहा था कि बौद्ध धर्म ग्रन्थों में सम्पत्ति को ही दुख कहा गया है। इससे उनका अर्थ कदाचित यह था कि सम्पत्ति ही दुख का कारण है। यह बात वैदिक विचारधारा के विपरीत है। महाभारत में यक्ष प्रश्नों का उत्तर देते समय युधिष्ठिर ने दरिद्रता को सबसे भयानक दुख बताया है जो यक्ष ने स्वीकार किया था।

धार्मिक आचरण के लिये भी वैशेषिक/दर्शन में कहा गया है धर्म वह है जिसके द्वारा इहलौकिक और पारलौकिक सिद्धि प्राप्त हो सके। (यथोभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्म) इहलौकिक सिद्धि के लिये धन कितना आवश्यक है यह बताना आवश्यक नहीं। इसलिये सम्पत्ति दुख है और सम्पत्ति ही सुख है यह दोनों ही कथन असत्य हैं और इन मतों के पीछे चलने के कारण ही इस देश की अथवा दूसरे देशों की दुर्दशा हुई है अथवा वह दुर्दशा के मार्ग पर अग्रसर हैं।

वास्तव में देखा जाय तो अथाह सम्पत्ति के स्वामी मठाधीष और तथाकथित साधु, संत और फ़कीर . बाबा ही सम्पत्ति को दुख काकारण बताते और प्रचार करते हैं। निर्धन ही धन सम्पत्ति के महत्व का अनुभव करता है।

यजुर्वेद का विश्व विख्यात मंत्र ही निवृत्ति और प्रवृत्ति के बीच का मार्ग जो सुख की ओर ले जाता है भौतिक साधनों के भोग का निषेध नहीं करता न उनके उपार्जन का। उसका कहना है इस संसार में कोई भी जड़ अथवा चेतन वस्तु नहीं है जिसके कण–कण में ईश्वर का निवास न हो। जो तुझे न्यायपूर्वक प्राप्त हुआ है

उसका भोग कर परन्तु दूसरे की सम्पत्ति पर गृध दृष्टि मत डाल। (यजुर्वेद ४०:१)

अम्बेडकर की पुस्तक "बुद्ध और उनका धर्म" उनके निधन के पश्चात प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक के द्वारा हमें अम्बेडकर के उस धर्म के दर्शन होते हैं जिसे अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म कह कर समझा और जाना है और जिसको वह अपने अनुयाइयों द्वारा स्वीकार किया जाना चाहते थे। परन्तु वह प्रचलित बौद्ध धर्म के कितना नजदीक अथवा विपरीत था यह बौद्ध धर्म के विद्वानों द्वारा उस पुस्तक की समीक्षा से ही पता लग जाता है।

भारत की विख्यात और प्रमाणित (Authentic) बौद्ध पत्रिका "महाबोधि" का कहना था कि अम्बेडकर की पुस्तक "बुद्ध और उनका धर्म" एक खतरनाक पुस्तक है। उनका बौद्ध धर्म के कर्म और अहिंसा सिद्धांत की (Interpretation) व्याख्या और उनका यह मत कि बौद्ध धर्म केवल एक सामाजिक संरचना (Social system) है बौद्ध धर्म की यथार्थ व्याख्या (Interpretation) नहीं है अपितु एक नई चीज है। वास्तव में यह पूरी की पूरी पुस्तक उस घृणा और आक्रामकता के कारणों को उजागर करती है जो नव बौद्धों द्वारा उपजाई गई है और उनके व्यवहार में झलकती है जब कि बुद्ध के धर्म का आधार दया है। उसमें घृणा और आक्रामकता का नाम भी नहीं है। यह अत्यावश्यक है कि अम्बेडकर की पुस्तक में दिये गये बौद्ध धर्म को बुद्ध का धर्म स्वीकार करने में अत्यंत सावधानी बरती जाय।"

समीक्षा में कहा गया है कि पुस्तक का नाम "बुद्ध का धर्म" न होकर "अम्बेडकर का धर्म" होना चाहिये क्योंकि अम्बेडकर ने राजनीतिक और सामाजिक सुधार की प्राप्ति के लिये **एक नवधर्म को बौद्ध धर्म सिद्ध करने की** चेष्टा की है।"

रंगून के "द लाइट ऑफ धम्म" ने लिखा कि यद्यपि यह पुस्तक एक महापुरुष की कृति है, दुर्भाग्यवश और कितना बड़ा दुर्भाग्य है कि यह पुस्तक उस श्रेणी में नहीं रखी जा सकती। उसका लेखक अनेक गुणों का अधिकारी भले ही हो इस पुस्तक को लिखने का अधिकारी नहीं था। लेखक ने मूल धर्म के साथ खिलवाड़ की है और जहाँ जहाँ बौद्ध धर्म के सिद्धांत उसके अपने विचारों से मेल नहीं खाते थे वहाँ वहाँ उसने उन सिद्धान्तों को बाद के भिक्षुओं द्वारा बौद्ध धर्म में की गई मिलावट कह कर नकार दिया है।"

उपरोक्त समीक्षाओं में यदि हम अम्बेडकर के नाम के स्थान पर दयानन्द का नाम और "बौद्ध धर्म" के स्थान पर हिन्दू धर्म लिख दें तो इन टिप्पणियों का एक–एक शब्द उन्हीं टिप्पणियों का शब्द दिखाई देगा जो दयानन्द के विरोधियों द्वारा दयानन्द द्वारा प्रतिपादित वैदिक धर्म के विषय में लिखी जाती रही हैं।

यह प्रश्न अम्बेडकर से भी अनेक बार पूछा गया था कि वह हिन्दू धर्म को त्याग कर बौद्ध धर्म को क्यों स्वीकार कर रहे हैं? इन बार बार पूछे गये प्रश्नों के उत्तरों में अम्बेडकर का पूरा व्यक्तित्व छिपा हुआ है।

१४ अक्टूबर १६५६ को विजय दशमी के दिन प्रातःकाल ८:३० बजे उन्होंने नागपुर के श्रद्धानन्द पेठ में बौद्ध धर्म की दीक्षा ली थी। इस दीक्षा के साथ भी दयानन्द के मुख्य शिष्य श्रद्धानन्द का नाम जुड़ना भी एक संयोग था।

१३ अक्टूबर १६५६ को प्रेस साक्षात्कार में एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा था: "मानव केवल रोटी खा कर ही जीवित नहीं रक सकता। उसके मस्तिष्क को भी विचाररूपी खुराक चाहिए।

"धर्म मनुष्य में आशा का संचार करता है और उसे कर्म करने के लिये उत्साहित करता है। (प्रचलित) हिन्दू धर्म दलितों के उत्साह पर पानी फेरने का कार्य करता है।" अम्बेडकर के इस कथन से कौन इन्कार कर सकता है। भारत वर्ष के करोड़ों गेरुये वस्त्रधारी तथाकथित साधु सन्यासियों में कितने हैं जो अपने समय का थोड़ा सा भाग भी समाज के उत्थान के कार्य करने में लगाते हैं ? वास्तव में वह बैठ कर अपने अनुयाइयों को भी निठल्ले बनने की प्रेरणा देते हैं। अपने विश्वास के अनुसार लोगों को पूजा अर्चना अथवा भजन कीर्तन में थोड़ा समय व्यतीत कर फिर ईमानदारी के साथ अपने नियमित कार्य पर निष्ठापूर्वक परिश्रम में लग जाना चाहिये। किन्तु यह हिन्दू धर्म के अधिकांश गुरु संसार में रह कर हिन्दू ग्रहस्थों की गाढ़ी कमाई के बल पर बड़े बड़े आश्रमों के वातानुकूलित कमरों में पड़े मौज मस्ती करते हैं।

शाम सबेरे लाखों भक्तों को संसार को मिथ्या, अनित्य और माया बता कर उससे विरत रहने का उपदेश यह धर्मगुरु, भगवान, संत युगपुरुष और न जाने किन किन उपाधियों से अपने को अलंकृत करने वाले साधु सन्यासी ब्रह्मचारी देते हैं। परन्तु स्वयं उसी मिथ्या, माया, अनित्य जगत में बिना श्रमपूर्वक एक पैसा कमाये भोग विलास में आकंठ डूबे हुये हैं।

भोग विलास के कारण उनमें से अनेकों को डायबिटीज, रक्तचाप, पक्षाघात और दूसरे रोग घेरे रहते हैं। अपने प्रवचनों की मोटी मोटी फीस लेकर और अपनी यात्रा भोजन इत्यादि का संपूर्ण सुखद इंतजाम सुनिश्चित हो जाने के बाद ही वह इन सत्संगों में आने को तैयार होते हैं। अपना व्यक्तिगत प्रभाव और अनुयाइयों की संख्या बढ़ाने के लिए वह किसी राजनेता अथवा अभिनेता से कम आतुर नहीं होते। लोगों द्वारा चरण स्पर्श मानो उनके लिये टानिक का कार्य करता है। परन्तु क्या उनके यह सत्संग, यह प्रवचन उनके भक्तों के अंध विश्वास के अंधेरे को दूर करने में कोई सहायता करते हैं ? उनमें व्याप्त अंध विश्वास, दहेज, भ्रष्ट आचरण, जैसी सामाजिक कुप्रथाओं से विरत करने में सफल होना तो दूर सहायक भी होते हैं ? वेद कहता है तमसो मा ज्योतिर्गमय। प्रभो ! मुझे अंधेरे से प्रकाश की ओर ले चल। क्या आधुनिक हिन्दू और बौद्ध सन्यासियों ने अपने इस उत्तरदायित्व को वैदिक काल के ऋषियों तथा उसके पश्चात के कौटिल्य, आदिशंकर, समर्थ गुरु रामदास,

गुरु गोविन्द सिंह अथवा दयानन्द की भाँति निभाया ? नहीं। उन्होंने अपने निजी स्वार्थवश धर्म और संस्कृति को विकृत ही किया और अब भी कर रहे हैं। और जब दयानन्द अथवा अम्बेडकर जैसे उत्कट विद्वान उन मिलावटों की छानबीन करते हैं तो वह उनकी निन्दा करते हैं।

अम्बेडकर ने उपरोक्त प्रेस वार्ता में यह भी कहा कि यदि हिन्दुओं ने अछूतों को हथियारों के उपयोग की स्वतंत्रता दी होती तो देश विदेशियों द्वारा पदाक्रांत न होता। उन्होंने इस मत की भी स्थापना की है कि हिन्दू अछूत वास्तव में पहले बौद्ध थे।

अम्बेडकर ने किस भावना के वश यह बात दीक्षा की पूर्व संध्या को कही यह कहना कठिन है। अम्बेडकर जैसे विद्वान को निश्चय ही यह मालूम था कि कम से कम यह दोष हिन्दुओं पर नहीं मढ़ा जा सकता।

अम्बेडकर ने इस ऐतिहासिक सत्य को स्वीकार किया है कि आठ–दस बार मुस्लिम आक्रमण के विरुद्ध लोहा लेकर अजेय सिंध ने जब दाहिर के काल में अपनी सेना की कमान और अपने सीमांत के दुर्गों की रक्षा बौद्ध कमांडरों को सौंप दी तभी मुसलसमान, सिंध को विजय कर पाये। उन बौद्ध कमांडरों ने रक्त पात को बौद्ध धर्म में निषिद्ध होने का बहाना बना कर बिना युद्ध किये अपने दुर्गों के द्वार यवन सेनाओं के लिये खोल दिये। उनकी छावनियों में गौ मांस के ढेर लगा कर उनके प्रिय भोजन की पूर्ण व्यवस्था की और इस प्रकार अपने देश और स्वामी के साथ विश्वासघात किया। इस दुर्घटना का जिम्मेदार पतित ब्राह्मण दाहिर भी था जिसके पिता ने अपने क्षत्रिय स्वामी राणा की व्यभिचारिणी महारानी से अवैध सम्बन्ध स्थापित कर उसकी हत्या कर राज्य सत्ता छीनी थी। जिसने स्वयं ब्राह्मणों की इस भविष्यवाणी का विश्वास करने के कारण कि उसकी सहोदर छोटी बहन का पति चक्रवर्ती राजा होगा उससे बलात विवाह किया था। इस का जिम्मेदार वह भिक्षुओं द्वारा विकृत बौद्ध धर्म भी था जिसके अनुयायी दाहिर के बौद्ध सेनापति और दुर्ग रक्षक थे। (जिन विकृतियों को अम्बेडकर इंगित करते हैं।)

बौद्ध धर्म के पतन का दोष हिन्दुओं पर अथवा ब्राह्मणों के सिर मढ़ना न्यायोचित नहीं है। हिन्दू धर्म की भाँति ही समय की गति से बौद्ध धर्म अनुयाई इतने पतित हो गये थे कि वह अपने ही पतन से नष्ट हो गये। राज्य द्वारा बौद्ध भिक्षुओं को संरक्षण, मुफ्त भोजन और भोग विलास की व्यवस्था ने उनको निकम्मा और कायर बना दिया था। जिस प्रकार सोमनाथ मंदिर के पतित अंध विश्वासी हिन्दू पुजारियों को जो सोमनाथ के सामने पृथ्वी पर लोट लोट कर रो रो कर रक्षा की प्रार्थना कर रहे थे महमूद गजनवी की सेना ने गाजर मूली की तरह काट कर रख दिया था और वहाँ की देव दासियाँ मुस्लिम सैनिकों द्वारा उठा ली गईं थीं, उसी प्रकार बिहार के बौद्ध विहारों में पड़े निठल्ले भोग विलास रत बुद्धं शरणं गच्छामि का

राग अलापते भिक्षुओं को बख्त्यार खिलजी ने काट कर रख दिया था और उनकी सुंदर भिक्षुणियाँ उसके योद्धाओं की शिकार बनी।

मौहम्मद साहब ने अपने अनुयाइयों को गेरुये, केसरी और पीले कपड़े पहनना ही निषिद्ध घोषित कर दिया था। उनके धार्मिक नेता कपड़े रंग कर धर्माचार्य नहीं बन जाते। पीढ़ी दर पीढ़ी बीसियों वर्षो तक मदरसों में इस्लाम के धर्म ग्रन्थों, साहित्य और इतिहास का गहन अध्ययन कर लेने पर ही उनको इस्लाम धर्म के विषय में कुछ भी प्रवचन देने का अधिकार प्राप्त होता है। ईसाई मत में भी लगभग ऐसा ही नियम है। उनके अतिरिक्त दूसरा कोई भी मुसलमान अथवा ईसाई आपसे इस्लाम धर्म पर वार्ता करने को अथवा प्रवचन देने को तैयार नहीं होगा।

अम्बेडकर हिन्दू धर्म के सुधार के पक्षधर थे। उसके शत्रु नहीं थे। उसमें ब्राह्मणों द्वारा जो कुरीतियां विशेष रूप से छुआछूत प्रवेश कर गई थी उसका उन्मूलन चाहते थे। परन्तु इस सुधार को अपनी शक्ति से परे समझ कर वह उसे त्यागकर बौद्ध मत में चले गये जो स्वयं किसी समय विकृत वैदिक धर्म में विकृति आने की प्रतिक्रिया स्वरूप बुद्ध द्वारा प्रचारित किया गया था।

इसी अवसर पर पत्रकार वार्ता में उन्होंने कहा थाः "मैंने धर्म परिवर्तन कर वह मार्ग चुना है जिससे **देश को कम से कम हानि पहुँचे क्योंकि बौद्ध धर्म भारतीय संस्कृति का ही एक अंग है। मैंने सावधानी बरती है कि मेरे बौद्ध धर्म अपनाने से देश की संस्कृति, परम्परा और इतिहास पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।**"

अम्बेडकर ने आशा व्यक्त की थी कि थोड़े से ही समय में भारत फिर बौद्ध देश बन जायगा। ब्राह्मण सबसे अंत में बौद्ध बनेंगे।

अम्बेडकर की राजनीतिक सूझ बूझ पर अभी बहुत कुछ लिखा जा सकता है। परन्तु इससे पुस्तक का आकार बढ़ाना उचित नहीं है फिर भी उनकी अध्ययनशीलता जनित दूर दृष्टि का उनके द्वारा इस्लाम की की गयी व्याख्या के अतिरिक्त और कोई उदाहरण चाहिये तो वह जवाहर लाल को चीनी नेताओं के वास्तविक इरादों से बार–बार सावधान करना था। दुर्भाग्यवश उनकी चेतावनियों पर आज तक ध्यान नहीं दिया गया। तथा कथित दलित नेताओं ने तो सत्ता में आने पर इस महापुरुष द्वारा बताये गये राष्ट्रीय महत्व के कार्यों की घोर उपेक्षा की।

अम्बेडकर की मृत्यु सोते सोते ५–६ दिसम्बर १९५६ की रात्रि में किसी समय हुई। सोने से पहले वह कबीर का गीत "चल कबीर तेरा भवसागर डेरा" गुनगुनाते सुने गये थे।

५ दिसम्बर १९५६ को प्रातः काल सबसे पहले उनकी दूसरी पत्नी डा० सविता अम्बेडकर ने उनको अपने विस्तर में मृत पाया।

डा० अम्बेडकर और स्वामी दयानन्द ने वृहत हिन्दू समाज की जो सेवा की है और उसे उन्नति का जो मार्ग दिखाया है वही एक मार्ग है जिससे यह समाज

अपनी कुरीतियों और विकृतियों को त्याग कर फिर अपने पुरानी वैदिक प्रतिष्ठा को प्राप्त कर सकता है।

हम अम्बेडकर को हिन्दुओं का शत्रु नहीं मानते। वह संस्कृत के विद्वान नहीं थे। उनके द्वारा की गई वैदिक धर्म की कटु आलोचना म्यौर, कीथ, व्हिटनी, विलियम्स, मैक्समूलर जैसे उन विद्वानों द्वारा किये गये अंग्रेजी अनुवादों पर आधारित है जो उनके सीमित संस्कृत ज्ञान और राजनीतिक ध्येय पर आधारित होने के कारण त्रुटिहीन नहीं कहे जा सकते।

जिस प्रकार अम्बेडकर ने प्रचलित बौद्ध धर्म में अनेक बातों को बाद की मिलावट कह कर नकार दिया उसी प्रकार यदि वह प्रचलित हिन्दू धर्म की बाद की मिलावटों को नकार कर दयानन्द द्वारा दिखाये गये शुद्ध वैदिक धर्म को स्वीकार कर लेते तो वह केवल दलित वर्ग के नेता न रहकर पूरे हिन्दू समाज के नेता माने जाते। परन्तु दलितोद्धार के साथ साथ जो उनका मिशन था उनकी राजनीतिक आकांक्षायें भी थी। उन आकांक्षाओं के होते वह अपने ही कथनानुसार पूर्ण सत्य नहीं बोल सकते थे। इसलिए उन्होंने जो कहा, लिखा अथवा किया उसे राजनीति से नितांत अछूता नहीं माना जा सकता। साथ ही साथ उनकी राजनीतिक समझ बूझ, अध्ययनशीलता देश और भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठा से इन्कार भी नहीं किया जा सकता।

संदर्भ

१. डा० बाबा साहेब अम्बेडकर : राइटिंग्स एंड स्पीचेज।
२. धनंजय कीर : डा० अम्बेडकर लाइफ एंड मिशन
३. डब्ल्यू०एन० कुबेर : अम्बेडकर ए क्रिटिकल स्टडी
४. अरुण शोरी : वर्शिपिंग फाल्स गॉड्स।

उपसंहार

पाठकगण ! आधुनिक भारत के अनेक निर्माताओं में से चार प्रमुख महापुरुषों के जीवन चरित्र और उनके जीवन दर्शन का अध्ययन पूरा हुआ। अब आप अपने निष्कर्ष स्वयं निकाल सकते हैं। आप से विदा लेने से पहले दो चार शब्द कह कर हम इस विषय की इतिश्री करेंगे।

आप में से कुछ लोगों को किसी संस्था, किसी ट्रस्ट, किसी संगठन से जुड़े रहने, उनके प्रारम्भ करने अथवा अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ होगा। क्या आपने ऐसी कोई संस्था, कोई संगठन, देखा है जिसका संविधान न हो ? कोई भी संस्था, संगठन, ट्रस्ट अथवा आन्दोलन प्रारम्भ करने से पहले उसके संगठन का विचार करने वाले लोग मिल बैठकर उसका संविधान बनाते हैं। प्रस्तावित संगठन के ध्येय लिखे जाते हैं। उन ध्येयों की पूर्ति करने के उपायों का विवरण लिखा जाता है। उनको प्राप्त करने के साधनों को जुटाने के लिये क्या करना है यह भी विस्तार से लिखा जाता है। प्रस्तावित संस्था की सदस्यता ग्रहण करने वाले व्यक्ति को इस प्रकार निर्मित संविधान के प्रति वफादारी की शपथ औपचारिक अथवा अनौपचारिक रूप से लेनी पड़ती है। संविधान के नियमों को तोड़ने वाला व्यक्ति संस्था का सदस्य नहीं रहता। यदि वह स्वेच्छा से उससे नाता न तोड़ ले तो संस्था उसको वहिष्कृत कर देती है। यह औपचारिक भी हो सकता और अनौपचारिक भी।

मज़हब भी एक संगठन ही है। अंतर केवल यह है कि धर्मान्तरण को छोड़ कर मज़हब की सदस्यता जन्म से ही होती है। अर्थात् जन्म लेने वाला व्यक्ति अपने माता पिता द्वारा निर्धारित मज़हब का सदस्य जन्म से ही बन जाता है। परन्तु साधारण संस्थाओं के सदस्यता नियमों के विपरीत उसको अपने मज़हब के नियमों की जानकारी शनैः–शनैः बाद में होती है और उसी प्रकार उन पर आचरण करना भी बाद में ही सीखता हैः कभी–कभी स्वयं अपने चारों ओर के वातावरण को देखकर और कभी–कभी माता–पिता और समाज द्वारा विविध प्रकार से शिक्षा द्वारा।

सेमेटिक मत अपनी धर्म पुस्तकों को अपना संविधान मानते हैं। ईसाई और कुछ मुस्लिम देशों ने अपनी धर्म पुस्तकों की शिक्षाओं को दृष्टि में रखते हुए आधुनिक काल की आवश्यकताओं के अनुरूप संविधान विकसित किये हैं। परन्तु तथाकथित आतंकवादी मुस्लिम संगठन इस प्रकार के आंशिक परिवर्तन से भी सहमत नहीं हैं। वह बिल्कुल कुरान और हदीस तथा मदरसों में धार्मिक शिक्षा प्राप्त धर्मनिष्ठ विद्वानों द्वारा उनकी व्याख्या के अनुरूप ही जिसे शरियत कहा जाता है शासन चलाना चाहते हैं। यही इस्लामी आतंकवाद का मुख्य कारण है। सभी ईसाई और मुस्लिम देशों में व्लासफ़ेमी (धर्मनिन्दा) की कानूनी व्यवस्था है जिसके अनुसार उनकी निन्दा करने वाले को मृत्यु दंड तक दिया जा सकता है।

हिन्दू धर्म में जब तक वेद और वैदिक ऋषियों द्वारा उनकी व्याख्या के अनुरूप शासन व्यवस्था रही और वेद विरोधी मतों का कठोरता पूर्वक दमन किया

जाता रहा तब तक हिन्दू समाज बलशाली रहा। इस अनुशासन में ढिलाई के कारण हिन्दू धर्म में मत मतान्तरों, विविध देवी देवताओं, पूजा पद्धतियों का उदय होता गया और यह देखने वाला कोई न रहा कि यह नये मत वैदिक व्यवस्था के विरोधी तो नहीं हैं, और हैं तो उनका कठोरता पूर्वक दमन किया जाय। यही अनुशासनहीनता हिन्दू धर्म के ह्रास का कारण बनी।

कुछ पाठक कहेंगे "यह तो धार्मिक फासिज़्म है।" प्रत्येक संविधान में कुछ मूल नियम होते हैं जिनमें संशोधन नहीं किया जा सकता। यह उस संविधान के Fundamentals कहलाते हैं। उदाहरणार्थ हमारे संविधान के भाग–३ में दिये गये Fundamental Rights में परिवर्तन नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार वेदों में परिवर्तन नहीं किया जा सकता। वेदों में ऐसा कोई प्राविधान नहीं है जो नैतिकता अथवा मानवता विरोधी हो। स्मृतियाँ सामयिक परिस्थितियों के अनुसार बदल सकती हैं बदलती रही हैं। धर्मानुसार आचरण के लिए आवश्यक है कि वह श्रुति (वेद) के (अर्थात वैदिक fundamentals के) विरुद्ध न हो। स्मृति अर्थात उस देश और काल के कानून के विरुद्ध न हो, समाज जिसे दुराचार समझता हो व न हो और अपनी आत्मा जिसे स्वीकार न करे वह भी न हो।

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहु साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।।
मनुः १३१ (२१२) ६८

इतना ही नही–

आर्ष धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राऽविरोधिना।
स्तर्केणानुसंधत्ते सः धर्म वेद नेतरः।।
मनु रू १०६ (५७)

वेद शास्त्र के अनुकूल जो तर्कसंगत है वही धर्म है। जो तर्क विरुद्ध है वह धर्म नहीं है। बताइये इससे अधिक लचीलापन और क्या हो सकता है ? क्या फासिज़्म में तर्क का कोई स्थान है ? परन्तु साथ ही साथ क्या प्रत्येक मनुष्य को जो किसी मज़हब का सदस्य है अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार उस मज़हब के नियमों की मनमानी व्याख्या करने की और उस व्याख्या के अनुसार आचरण करने की अनुमति दी जा सकती है ? इस प्रकार की अनुमति देने से जो अनुशासनहीनता उत्पन्न होगी उससे तो वह मज़हबी समाज ही बिखर जायगा। यह विसंगति हिन्दू मत के मानने वाले अथवा अपने को हिन्दू कहने वाले समाज में स्पष्ट है।

हिन्दू समाज में आज जो विघटन होता जा रहा है वह इसी कारण है कि हम अपने संविधान (वेद–स्मृति–सदाचार–प्रियात्मना) को भुला बैठे हैं।

इस्लामी देश अपने शासन का आधार कुरान को बताने में संकोच नहीं करते। वह तो उसमें तर्क की भी अनुमति नहीं देते। कुरान में गैर–मुस्लिमों को अनिवार्य भौतिक आवश्यकताओं की तो बात ही छोड़ दीजिये जीने का भी अधिकार नहीं है। मर कर भी उनकी यंत्रणा से मुक्ति संभव नहीं है। ईसाई देश यद्यपि इतने

खुले रूप से ऐसा प्रचार नहीं करते परंतु उनकी धर्मपुस्तक बाइबिल भी इससे मिलते जुलते ही प्राविधान करती है। इन मतों के अनुसार गैर धर्मावलम्बियों के लिये न तो इस जगत में न मरणोपरान्त ही शान्ति संभव है भले ही उनके कर्म किसी भी दुराचारी, चोर और व्यभिचारी मुसलमान अथवा ईसाई से बेहतर क्यों न हो।

८० करोड़ हिन्दुओं का भारत इस प्रकार के दोषों से सर्वथा मुक्त वैदिक संविधान (श्रुति स्मृति–सदाचार, स्वस्य प्रियात्मना एवं तर्क सम्मत) को अपनाकर अपने को हिन्दू राष्ट्र घोषित करने में क्यों शर्माता है ?

लोग कहते हैं कि जो सब बातें आप हिन्दू राष्ट्र के पक्ष में कहते हैं वैसे समान राजनीतिक अधिकार इत्यादि तो सब हमारे संविधान में पहले से ही समाविष्ट हैं। फिर आप उसे हिन्दू राष्ट्र नाम देकर नाहक ही क्यों साम्प्रदायिकता का कलंक मोल लेना चाहते हैं ? हम इस प्रश्न के उत्तर में उन लोगों से भी एक प्रश्न पूछना चाहते हैं। सभी संपन्न ईसाई और मुस्लिम देश अपने को मुस्लिम और ईसाई राज्य कहने में संकोच नहीं करते ? उन मतों की सुरक्षा के लिये कानून की दीवारें क्यों खड़ी की गयी हैं ? यह नियम क्यों बनाया गया है कि राज्याध्यक्ष उन्हीं के धर्म का अनुयायी होगा और उस विशेष मतदर्शन की सुरक्षा की जिम्मेदारी भी उसकी ही होगी ? सउदी अरब, पाकिस्तान, टर्की, बंगलादेश, मलेशिया, इण्डोनेशिया, मिस्र इत्यादि मुस्लिम देश अपने को मुस्लिम देश कहते लज्जा नहीं अनुभव करते। इसी प्रकार ब्रिटेन में प्रधानमंत्री और शासक प्रोटेस्टेन्ट क्रिश्चियन ही हो सकते हैं। अमेरिका में राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर से १९८३ के वर्ष को बाइबिल का वर्ष घोषित करने में संकोच नहीं करते। यह सभी देश अपने अपने इन कट्टर हिन्दू विरोधी मतों के प्रचार और धर्मान्तरण के लिए करोड़ों डालर प्रतिवर्ष भारत भेजकर भी धर्म निरपेक्षता का बिल्ला लगाये घूमने में और भारत को धर्मनिरपेक्षता का पाठ पढ़ाने में किंचित मात्र भी लज्जा अनुभव नहीं करते। और एक हम हैं जो इन सभी एक दूसरे के विरोधी कैथालिक, प्रोटेस्टेंट क्रिश्चियन्स, शिया, सुन्नी, कादियानी इत्यादि मुसलमानों को अपने बराबर और कभी–कभी अपने श्रेष्ठतर अधिक मानवतावादी धर्मावलम्बियों से अधिक अधिकार देकर तथा **हिन्दुओं को सब प्रकार से अपने अपने मतों में धर्मपरिवर्तन करने का बुनियादी अधिकार देकर भी अपनी धर्मनिरपेक्षता सिद्ध करने के लिए विश्व के समक्ष कठघरे में खड़े रहते हैं। अपनी मृत्यु के वारंट पर स्वयं हस्ताक्षर करने वाला ऐसा कोई दूसरा समाज कहां मिलेगा ?**

दूसरा प्रश्न पूछा जाता है : अच्छा मान लीजिये भारत हिन्दू राष्ट्र घोषित कर दिया जाय तो इस घोषणा मात्र से लाभ क्या होगा ? हमारा सीधा सा उत्तर है कि इसका लाभ मुख्यतः मनोवैज्ञानिक होगा। हिन्दुओं के इस्लामीकरण और ईसाई करण की प्रक्रिया स्वतः धीमी पड़ेगी और राज्य ऐसी गतिविधियों पर अंकुश लगा सकेगा।* हम निडर होकर कह सकेंगे यह हिन्दू राष्ट्र है। यदि हिन्दू धर्म की रक्षा

---

* नोट– *इस विषय पर लेखक ने अपनी पुस्तक "हिन्दू के अस्तित्व का प्रश्न" में विस्तार पूर्वक लिखा है। अग्रिम मूल्य रु० ४० तथा डाक खर्च।*

यह राष्ट्र नहीं करेगा तो क्या मुस्लिम और ईसाई राष्ट्र उसकी रक्षा करेंगे ? अल्प मतावलम्बियों से हम कह सकेंगे जिस प्रकार आप अपने मतावलम्बी राष्ट्रों में हिन्दुओं को अपने मत के पालन के सीमित अधिकार देते हैं उससे अधिक अधिकारों की अपेक्षा आप हमसे कैसे कर सकते हैं ? **आप अपने मत को घोषित करने और उस पर आचरण करने को पूर्णतः स्वतंत्र हैं। परंतु आप अपने मत के अतिरिक्त दूसरे मतों के प्रति घृणा का प्रचार नहीं कर सकते। आप उन मतों को मूर्खतापूर्ण मानते हैं मानते रहे परन्तु हिन्दू राष्ट्र में रहते हुये आप अपने बच्चों को जो वहाँ जन्म लेने के कारण इस हिन्दू राष्ट्र के नागरिक और भविष्य के नेता हैं धर्म के नाम पर हिन्दू को घृणा करने का पाठ पढ़ा कर हमारी व्यवस्था में व्यवधान डालने की अनुमति नहीं पा सकतें। ज़रा ध्यान तो दें सऊदी अरब में नियमानुकूल पासपोर्ट पर जाने वाला हिन्दू तो केवल अपनी धर्म पुस्तक अपने सामान में पाये जाने के अपराध में जेल में डाल दिया जाय और हिन्दू भारत के ५०,००० मदरसों, लाखों मकतवों और लाखों मस्जिदों में उनको जो इस राष्ट्र के नागरिक होने की सौगंध खाते हैं आप यह शिक्षा देने के लिये स्वतंत्र हों कि एक चोर और व्यभिचारी मुसलमान भी एक सर्वोत्कृष्ट चरित्रवाले हिन्दू से श्रेष्ठ है। (सही मुस्लिम–१७१) क्या इस प्रकार की अनेकता को उत्पन्न कर आप हिन्दू मुस्लिम एकता स्थापित कर सकते हैं ?**

तीसरा प्रश्न पूछा जाता है कि आप हिन्दुओं के अतिरिक्त शेष २० करोड़ गैर हिन्दुओं का क्या करेंगे ? अथवा हिन्दुओं में गिने जाने वाले अनेक दूसरे सम्प्रदायों का क्या करेंगे जो वैदिक व्यवस्था और मनु व्यवस्था को केवल मानते ही नहीं उसको अनेक सामाजिक बुराइयों का मूल कारण ही मानते हैं। पहली बात तो यह है कि जो दोष इस प्रकार के लोग वेदों अथवा मनु पर लगाते हैं वह दोष वेदों में नहीं है और मनुस्मृति के केवल उन अंशों में हैं जो बाद में स्वार्थी लोगों द्वारा उसमें मिला दिये गये हैं।

हिन्दू समाज को विखंडित करने के अनेक कारणों में जन्म से वर्ण व्यवस्था और जाति व्यवस्था तथा छुआछूत मुख्य हैं। यद्यपि छुआछूत हमारे संविधान में कानून द्वारा दंडित कर दी गई है परन्तु सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिये कानून को सामाजिक सुधारकों की और सामाजिक सुधारकों को कानून की आवश्यकता होती है। यद्यपि इस सामाजिक बुराई को विचाराधीन चारों महापुरुषों ने अपनी अपनी भाषा में इंगित किया है परंतु उससे समाज को छुटकारा दिलाने में ठोस मार्ग दर्शन केवल दयानंद द्वारा ही किया गया है।

अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म अपना कर जहाँ कुछ लोगों को इस बीमारी से प्रत्यक्ष रूप से भले ही मुक्त कर दिखाया हो परन्तु धर्मान्तरण द्वारा साधारण अछूतों के रहन सहन अथवा सामाजिक प्रतिष्ठा में कोई अंतर आया हो यह देखने में नहीं आया। वह दलित के दलित ही बने रहे ? पहले हिन्दू दलित के नाम पर आरक्षण मांगते थे तो अब दलित ईसाई, दलित मुसलमान और दलित बौद्ध के नाम पर।

स्वामी विवेकानन्द ने और गाँधी ने दलितों की दुरावस्था पर ढेरों आंसू बहाये हैं। विवेकानन्द मार्मिक शब्दों में लिखते हैं : "यदि तुमने (हिन्दुओं ने) सावधानता न बरती तो तुम्हारा (हिन्दुओं के) पांचवा हो सकता है आधा भाग ईसाई बन जायगा। मैंने जो कुछ मद्रास में देखा क्या उससे अधिक मूर्खतापूर्ण कोई बात हो सकती है। बेचारा पैरियाह (मद्रास में पंचम कहे जाने वाले हिन्दू दलित) उस मार्ग का उपयोग नहीं कर सकता जिसका उपयोग सवर्ण लोग करते हैं। परन्तु यदि वह अपना (मत बदल कर) अंग्रेजों से मिलता जुलता कोई नाम रख लेता है तो सब ठीक हो जाता है (सबको कोई आपत्ति नहीं रहती)।"

सचमुच ही स्वामी विवेकानन्द के यह मार्मिक वाक्य हृदय को छूने वाले हैं। हम उनकी निष्ठा में अविश्वास नहीं करते। परन्तु इन शब्दों और उपदेशों से आगे चल कर उन्होंने, उनके शिष्यों ने अथवा उनके रामकृष्ण मिशन ने उनकी दशा सुधारने के लिये क्या कोई आन्दोलन चलाया ? अथवा क्या उसके कार्यक्रम की कोई ठोस, तर्कसंगत समझी बूझी योजना बनाई ? नहीं।

अब गाँधी जी के विचार देखिये : "यदि तथाकथित दलित वर्ग तथाकथित सवर्ण हिन्दुओं से इतना तंग आ चुका है कि वह (इन) हिन्दुओं और उनके धर्म से बिल्कुल कट जाना चाहता है और अपना अलग एक वर्ग बनाना चाहता है अथवा (धर्म परिवर्तन द्वारा) कोई दूसरा मत अपनाना चाहता है, तो वह यह मार्ग अपना सकते हैं यदि तथाकथित सवर्ण हिन्दू हरिजनों को अपने भाई बन्धु स्वीकार कर अपना प्रारम्भिक कर्तव्य नहीं निभाते।"

फिर वही राजनीति बयानबाजी। यदि वह वर्ग अपना अलग धार्मिक सम्प्रदाय बना लें या धर्म परिवर्तन कर लें तो पूरे हिन्दू समाज के वोट बंट जायेंगे या दूसरे खेमें में चले जायेंगे। बस यही राजनीतिक भय ? और क्या ? भाषणों से प्रभावित होकर या आमरण उपवास की धमकी से सत्ता प्राप्त सवर्ण किस प्रकार अपने विशेष अधिकारों को छोड़ने को तैयार हो जायेंगे ? छुआछूत उन्मूलन करने के लिये कानून भी बना दें और कड़ी सजा भी निर्धारित कर दें, सरकारी नौकरियों में आरक्षण भी दे दे तो क्या इससे सत्ता प्राप्त सवर्ण वर्ग उन्हें प्रेम पूर्वक अपना सकेगा ?

याद कीजिये मैक्सूमूलर ने क्या कहा था। "वेद भारत के हिन्दू मत मतान्तरों के स्रोत हैं। उनकी जान हैं। वह ऐसे अपरिवर्तनीय संविधान हैं जिसके बाहर रहने की कोई हिन्दू कल्पना भी नहीं कर सकता। इसलिये यदि वेदों का इस प्रकार का अनुवाद हिन्दुओं को उपलब्ध करा दिया जाय जिससे हम उन्हें गड़रियों के गीत और अनेक बुराइयों (छुआछूत, सती प्रथा, जाति प्रथा) का जनक सिद्ध कर सके तो उनके विश्वास की बुनियाद ही ध्वस्त हो जायगी।" मैक्समूलर ने ठीक सोचा था। अपने लेखों, व्याख्यानों और पुस्तकों द्वारा उसने और दूसरे ईसाई विद्वानों ने सचमुच ही वेदों के इस प्रकार के बेसिर पैर के कुत्सित अनुवाद किये जिससे उनकी यह

कामना सिद्ध हो सके। इसका पर्याप्त प्रभाव भी स्पष्ट देखा जा सकता है। अनेक अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त हिन्दू इस कारण ईसाई अथवा अहिन्दू हो गये।

दयानन्द की इन महापुरुषों की तुलना में विशेषता यह है कि उसने वेदों के अर्थ निकालने की व्याकरण रूपी कुंजी खोल कर हमें दी। मैक्समूलर समेत बौद्धिक जगत को स्वीकार करना पड़ा कि वेद गड़रियों के गीत नहीं है। वह वाम मार्गियों और तांत्रिकों के मृष्ट आचार की संहितायें भी नहीं हैं। वह और वेदांत (वेदों के अंत के भाग) तो समस्त सत्य विद्याओं की पुस्तक हैं। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना समस्त मानव समाज की आध्यात्मिक और भौतिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है। सहस्रों वर्षों से उनकी उपेक्षा के कारण हिन्दू समाज में पैठे निंदनीय रीति रिवाज (सती, घुआछूत, अंधविश्वास) वेद शिक्षा के अभाव से उत्पन्न हुये हैं। इन दुष्ट रीति रिवाजों और अनुष्ठानों के उन्मूलन का एक ही इलाज है " Go Back to Vedas" वेदों की ओर लौटो। संसार में सर्वश्रेष्ठ संविधान, सर्वश्रेष्ठ आध्यात्मिक ज्ञान, अपार सुख और शांतिमय जीवन की कुंजी की ओर लौटो।

इस प्रकार की मैक्समूलर की नीति को उलट कर स्वीकार कराने से दयानन्द ने एक ही बार में हिन्दू समाज की उन बुराइयों, कुरीतियों और रीति रिवाजों की जड़ ही खोद डाली। कोई भी सवर्ण हिन्दू यह विश्वास हो जाने पर कि छुआछूत वेदों में नहीं है, तथाकथित दलित भी वेदों का अध्ययन कर ब्राह्मण और उससे भी श्रेष्ठ ऋषि की पदवी प्राप्त करने के अधिकारी है, ऐसे वेदों के विद्वान उन पर आचरण करने वाले उन्हें अपना सर्वोपरि संविधान मानने वाले तथाकथित दलितों से प्रेम और आदर किये बिना कैसे रह सकता है। यहां कुरीतियों को कानून से नहीं ज्ञान से उखाड़ फेंका गया है। दयानन्द और उसके आर्य समाज ने केवल इन बुराइयों को इंगित ही नहीं किया उनको दूर करने का ऐसा मार्ग सुझाया जो वर्ग–घृणा नहीं वर्ग–प्रेम और आदर उत्पन्न करने वाला है। इतना ही नहीं दयानन्द ने उंगली पकड़ कर हिन्दू समाज को इस मार्ग पर चलकर भी दिखाया। सहस्रों दलित युवक और कन्यायें आर्य गुरुकुलों से वेदाचार्य और पंडित बन कर निकले। उनमें और सवर्ण हिन्दुओं के आर्य समाजियों में परस्पर घृणा नहीं थी प्रेम था। इससे उनमें आत्मविश्वास और आत्म सम्मान लौट आया क्योंकि सवर्ण बच्चे उनके चरणों में बैठ कर विद्याध्ययन करने में गौरव समझते हैं।

इसलिये यद्यपि हमारे अध्ययन के विषय चारों महापुरुष ही वंदनीय हैं परन्तु अकेले दयानंद ही हिन्दू राष्ट्र के पतन और क्षरण को रोक कर हर क्षेत्र में उन्नति के शिखर पर ले जाने का संपूर्ण ब्लू प्रिंट हमें देने में सफल हुये हैं। वैदिक धर्म उस ब्लू प्रिंट में तर्क संगत समयानुकूल परंतु सदाचार पूर्ण और प्रियआत्मनाः संशोधन करने से हमें रोकता नहीं अपितु अनुमति देता है। इसलिये दयानन्द ही आज के युग में निर्विवाद रूप से प्रासंगिक हैं।

पुरुषोत्तम द्वारा लिखित पुस्तकों की सूची

१.	मुस्लिम राजनीतिक चिन्तन और आकांक्षायें (दूसरा संस्करण) पृष्ठ २२० पेपर बैक	रु०	९०.००
	हार्ड बैक	रु०	१०५.००
२.	भारतीय संविधान और शरीयः	रु०	२०.००
३.	मुस्लिम एण्ड हिन्दू फन्डामेन्टलिज्म (संविधान सभा में बहस के उद्धरण)	रु०	५.००
४.	विचित्र धर्मनिरपेक्षता	रु०	३.००
५.	एक बीबी की तलाश (ऐतिहासिक और सामाजिक कहानियाँ)	रु०	१५.००
६.	अनुभव	रु०	१५.००
७.	भारत के इस्लामीकरण के चार चरण (पेपर बैक)	रु०	९०.००
८.	भारतीय मुसलमानों के हिन्दू पूर्वज (मुसलमान कैसे बने)	रु०	२०.००
९.	हिन्दू के अस्तित्व का प्रश्न	रु०	४०.००
१०.	आधुनिक भारत के चार निर्माता दयानन्द, विवेकानन्द, गाँधी और अम्बेडकर	रु०	९०.००
1.	Hindu Muslim Problems	Rs.	12.00
2.	National Integration and Muslim Minoriry (Collection of articles appearing in Organiser Delhi) 3rd Edition	Rs.	14.00
3.	Political Islam	Rs.	5.00
4.	Muslim and Hindu Fundamentalism (with Relevant excepts from Constituent Assembly Debate)	Rs.	5-00
5.	Must India Go Islamic	Rs.	90.00
6.	Awaken to Realities	Rs.	8.00

मूल्य : ९० रु०

प्रकाशक एवं मुद्रक

पी०एस० योग

ध्यानगंगा, ५३८/६४ क, मौसमबाग, सीतापुर रोड,

लखनऊ-२२६.०२०, भारत

फोन : ०५२२-३७३६३१